प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद ।
मुद्रक : सजीवन प्रिंटिंग प्रेस, ६६ ए, बाबाजी का बाग़ कर्नलगंज, प्रयाग ।

मास्को-प्रवास के साथी (सहयोगी)

ज्ञोए अन्सारो,

पूर्ण सोमसुन्दरम्,

भीष्म साहनी

और

नारायण दास खन्ना

को—

फ़्० मि० दोस्तोयेव्स्की

दोस्तोयेव्स्की का जीवन मानवता की यातनाओं में डूबी, एक महान् आत्मा की दुखभरी कहानी है। उसकी प्रतिभा ने समाज की बुराइयों पर से, इन्सान के दुख-दर्द के ऊपर से भारी पर्दा उठाया, मगर इसमें इतनी ताक़त लगी कि प्रतिभा खुद ही टूट गई—तार-तार हो गई। ✓

फ़्योद्र-मिखाइलविच-दोस्तोयेव्स्की (१८२१-१८८१) का जन्म मास्को में हुआ। उसके पिता शहर के खैराती-अस्तपताल में डॉक्टर थे। उसने खुद संत-पीतर्सबुर्ग-सैनिक-संस्थान में दीक्षा ली, और इंजीनियरिंग-मंत्रालय के डिज़ाइन-विभाग में प्रवेश किया। पर, पेशे ने सन्तोष न दिया तो १८४४ में इस्तीफ़ा दे दिया और साहित्यिक जीवन आरम्भ किया।

'वेदनीये-ल्यूदी' —'वे बेचारे'—उसका पहिला उपन्यास रहा, और इससे उसका काफ़ी नाम हुआ।

यह कृति समाज के दलित-वर्ग को समर्पित है, और इस वर्ग के सदस्यों का वर्णन लेखक ने बड़ी ही सरगर्मी और हमदर्दी से किया है। मुख्य चरित्र मकार-अलेक्सेयेइच-देवुश्किन एक दफ़्तर में क्लर्क है। वह ग़रीब है, सबकी निगाहों में गिरा हुआ है, और जीवन से ऐसा चूर-चूर है कि अपने को दुखी मानने में भी डरता है।

उपन्यास पत्रों की शैली में है, और लेखक अपनी ओर से कहीं कोई राय नहीं देता। इससे वह नायक के अन्तर्मन में प्रवेश कर सकता है, और इस अन्तर्मन पर अक्सर ही हँसी आती है।···

गोगोल और बेलीन्स्की का यह शिष्य दोस्तोयेव्स्की आरम्भ से ही ✓ श्रेष्ठतम साहित्यिक परम्पराओं का समर्थक रहा। पर, उसके आत्मिक ✓ विकास को बुरी तरह दबाया और रौंदा गया। उस पर एक विशेष

प्रगतिशील राजनीतिक-वर्ग से सम्बद्ध रहने के आरोप में मुक़दमा चलाया गया, और उसे मौत की सज़ा दे दी गई। परन्तु, नकली फाँसी की यंत्रणा के बाद इस सज़ा को देशनिकाले में बदल दिया गया।

फिर, वह दस वर्ष बाद लौटा। लेकिन, इस बीच वह बिल्कुल ही बदल गया। मानव-स्वभाव में ही उसकी आस्था न रह गई। फलतः उसने धर्म की शरण ली।

यानी, 'बेदनीये-ल्यूदी'—'वे बेचारे'—का लेखक ईसाइयों के प्रेम-पंथ का अनुयायी हो गया। ईसाइयों के इस प्रेम की चर्चा करते हुए ए० आई० हेरज़ेन ने लिखा है—'यह निष्क्रिय-प्रेम बड़ा सशक्त हो सकता है…निष्क्रिय प्रेमी रो सकता है, तरह-तरह की बातें कर सकता है, और पलकें पोंछ सकता है; पर, संकट यह है कि वह ठोस कुछ नहीं कर सकता।'

इस प्रकार मानवता के प्रति आस्थाहीन होने के बाद दोस्तोयेव्स्की ने जहाँ सामाजिक अन्यान्य का पर्दाफ़ाश किया, वहीं प्रतिक्रियावादी विचार भी कम सामने नहीं रक्खे, और समाज को पीछे ले जाने की भी कोशिश कुछ कम नहीं की। इस पर भी, उसके कृतित्व में जो कुछ सत्य है, वह आज भी जीता है…अजर-अमर है।

हास्य उत्पन्न करना और साथ ही साथ पाठक का हृदय छू लेना—आँसुओं के बीच भी उसे गुदगुदा देना...कैसी चातुरी है...कैसी प्रतिभा का कार्य है !

व० बेलीन्स्की—

अप्रैल ८

मेरी प्यारी-प्यारी वारवरा-अलक्सयेवना,

कल रात मुझे वहुत ख़ुशी हुई····सचमुच बहुत ख़ुशी हुई कि ज़िन्दगी में एक बार तो तुमने मेरा कहा किया।··· तुम तो जानती हो कि मैं काम के वाद हल्की झपकी लेने का आदी हूँ····सो, रात को कोई आठ वजे मेरी आँख खुली····बस, तो मैं उठा, मोमबत्ती ले आया, काग़ज़ात फैला लिये और क़लम की नोक बनाने लगा कि मेरी निगाहें एकबएक ऊपर उठीं····उफ़, मेरा दिल ख़ुशी से किस तरह उछलने लगा !····यानी तुमने मेरे मन की बात समझ ली····मेरे दिल की हसरत पढ़ ली····और जिस तरह मैंने कहा था, उसी तरह अपने पर्दे का कोना गुलमेंहदी के गमले में खोंस दिया··· मुझे तो यहाँ तक लगा कि तुम्हारा मोहक चेहरा खिड़की पर चमक रहा है, तुम झाँक रही हो और मेरे ख्याल में डूबी हुई हो !··· और, मेरी नन्हीं-मुन्नी सोनचिरैया, मैं कितना दुखी था कि तुम्हारा चेहरा साफ़ नज़र नहीं आया····उफ़, एक ज़माना था कि मेरी निगाहें खूब काम करती थीं··· बात यह है कि बुढ़ापा कोई नेमत तो होता नहीं, हर चीज धुंधली दीखने लगती है, और शाम को थोड़ा-सा भी काम कर लेने के वाद सुबह आँखों से इस तरह पानी गिरता है कि किसी अजनबी के सामने जाने में शर्म आती है।····लेकिन, मेरी नन्हीं-देवदूत, तुम्हारी मुस्कान से मेरे दिमाग़ में जैसे प्रकाश छिटक गया··· तुम्हारी हल्की मुस्कान सचमुच कितनी मधुर थी और मुझे वैसा ही लगा, जैसा कभी तुम्हें चूमते समय लगा था····याद है तुम्हें ? मुझे तो यह भी लगा कि तुम

उँगली के इशारे से मुझे डाँट रही हो…ठीक बताना, डाँटा था क्या ? अपने अगले पत्र में उसका ज़िक्र ज़रूर करना।…

हाँ, जरा यह बताओ, रानी, कि पर्दे के सहारे हमने जो शरारत की, उसके बारे में तुम्हारा अपना क्या ख़याल है। खूब रही…है न ? मैं काम करूँ, सोऊँ या जागूँ, मेरा ध्यान बरबस उधर ही खिंच जाता है और मुझे लगता है कि तुम कहाँ खड़ी हो, मेरी याद में खोई हुई हो और बिल्कुल ठीकठाक हो… ख़ुशी से खिली हुई हो !…यानी, पर्दा गिरने का मतलब है—'दोब्रनोची[1] , मकार-अलेक्सेयेविच !' और उठने का अर्थ है—दोब्रऊतरा[2], मकार-अलेक्सेयेविच, रात आराम से कटी न !…या, कैसे हो मकार-अलेक्सेयेविच ? जहाँ तक मेरी बात है, मैं तो स्वस्थ हूँ, ठीक हूँ, ईश्वर का लाख-लाख शुक्र !…देखा न, प्रियतमे, इस पर्दे ने क्या कमाल कर दिखाया। यानी, पत्र तक जरूरी नहीं रह गये। रहा न अक़्ल का करिश्मा ? और, यह तरकीब मुझे अपने आप सूझी ! ऐसे मामलों में उस्ताद हूँ मैं…क्या राय है ?

और हाँ, मेरी प्यारी वारवरा-अलेक्सेयेवना, लगे हाथों यह भी बता दूँ कि उम्मीद नहीं थी, मगर कल रात घोड़े बेचकर सोया…बड़ा ही अच्छा लगा… वैसे जगह नई हो तो नींद जरा मुश्किल से ही आती है और एक-न-एक उलझन बनी ही रहती है।… तो, सुबह उठा तो ऐसी ख़ुशी और ताज़गी महसूस की, जैसे कि मैं कोई लवा-पंछी हूँ।…और, मेरी जान, सुबह भी कैसी थी। खिड़की पूरी खुली थी…सूरज चमचमा रहा था…चिड़ियाँ गा रही थीं… में बहार की गमक थी…पूरी प्रकृति में जैसे जान पड़ गई थी… और, हर तार ऐसे स्वर में था जैसे कि सचमुच वसन्त आ गया हो !… ऐसे में कुछ मीठे से ख़याल भी दिमाग़ में आये, लेकिन वे ले-देकर, बस, तुम्हारे चारों ओर चक्कर काटते रहे।

---

[1]गुड-नाइट; [2]गुड-मॉर्निङ्ग

मैंने तुम्हारी तुलना आसमान में पर तोलती एक ऐसी चिड़िया से की, जिसकी रचना आदमी के सुख और सन्तोष के लिये ही की गई है····और जो प्रकृति का शृङ्गार है····इसके साथ ही, वारेन्का, मुझे यह लगा कि हम चिन्ता-परेशानियों से घिरे इन्सानों को आसमान की इन बेफ़िक्र, भोली भाली चिड़ियों से डाह करनी चाहिये····इसी तरह और भी जाने क्या-क्या सोचता रहा और धुंधले-धुंधले से प्यारे-प्यारे से निष्कर्ष निकालता रहा····वारेन्का, मेरे पास एक किताब है····इस किताब में तुम्हें ऐसी ही ऐसी हज़ारों बातें मिलेंगी और विस्तार में मिलेंगी····मेरी रानी, मैं जाने क्या-क्या सपने देखता हूँ, और मजबूर हूँ कि उनके बारे में तुम्हें लिखे बिना रह नहीं सकता··· आजकल वसन्त है न, तो हम इन सपनों में नई चमक और नई मोहिनी जाग गई है··· इनकी कोमलता बढ़ गई है····इन सभी के होंठ गुलाबी छलका रहे हैं··· यही कारण है कि मैं इस तरह का पत्र तुम्हें लिख रहा हूँ····लेकिन, सच पूछो, तो यह सब किताबी-विद्या है। लेखक का मन भी कुछ मेरी ही तरह उड़ता है और कविता में उतरता है—

'काश कि मैं पंछी बन जाता—
आसमान की ऊँचाई को अपने गीतों से सहलाता'—

और बात आगे बढ़ती है····यही नहीं, ऐसे ही जाने कितने विचार हैं उसमें ! ख़ैर छोड़ो··· ज़रा यह बतलाओ कि आज सुबह तुम कहाँ गई थीं ?··· मैं तो काम पर जाने को तैयार भी न हो पाया था कि तुम अपने कमरे से चहकती, ख़ुशी लुटाती चली आईं ·· तबीयत खिल उठी तुम्हें देखकर····उफ़; वारेन्का··· दुखी रहना बन्द करो··· इन आँसुओं से क्या होगा !····मेरी रानी, विश्वास करो, मेरा अनुभव है कि आँसू बहाने भर से कोई बात नहीं बनती।····फिर, आजकल तो तुम चैन से हो और तुम्हारा स्वास्थ्य भी अच्छा है !····और 'हाँ' फ़ेदोरा के क्या हाल-चाल हैं ? क्या शानदार औरत है वह ! लिखना कि तुम्हारी उससे कैसी बनती

है ! मज़े में चलता है न ? फ़ेदोरा थोड़ी भुनभुनिया है····लेकिन ख़ैर···· औरत अच्छी है····ईश्वर उसे सुखी रक्खे !····

मैं तेरेज़ा के विषय में तुम्हें पहिले ही लिख चुका हूँ··· वह भी नेक और ईमानदार औरत है····मैं तो बड़ी फ़िक्र में था कि मेरे पत्र तुम्हें और तुम्हारे पत्र मुझे कैसे मिलेंगे ?····लेकिन ईश्वर ने चिन्ता हर ली और हमारे लिये तेरेज़ा को भेज दिया····औरत बड़ी मोहब्बती, सीधी और काम की है ! पर, हमारी मकानमालकिन बिल्कुल बेरहम है। उससे इतना काम लेती है कि वह बेचारी चूर होकर रह जाती है।····

बारबरा-अलेक्सेयेवना, सचमुच कहाँ आकर रहने लगा हूँ मैं !···· बिल्कुल गंदी बस्ती है। कैसी-कैसी कोठरियाँ हैं ! तुम तो जानती हो कि मैं तो बिल्कुल फ़क़ीराना-ज़िंदगी बिताता रहा हूँ। कितनी शान्ति रहती रही है, मगर इस पर भी मक्खी की भनभनाहट सुनाई पड़ती रही है; और, यहाँ है महज़ शोरगुल और तूफ़ान ! लेकिन, मैंने तुम्हें यह तो बताया ही नहीं कि यह जगह है क्या और कैसी ! कल्पना करो कि एक लम्बे अँधेरे, गंदे बरामदे की दाईं ओर है एक नंगी दीवार, और बाईं ओर है होटल के कमरों के दरवाज़ों की क़तार कि हर कमरे को एक-एक या दो-दो या तीन-तीन लोगों ने किराये पर ले रक्खा हो····यानी, हर कमरा कि भेड़ बकरियों का बाड़ा ! लेकिन, इन कमरों में रहनेवाले लोग नेक, शरीफ़ और पढ़े-लिखे मालूम पड़ते हैं ! इनमें से एक है एक क्लर्क····जैसे-तैसे साहित्य में सम्बन्धित है····होमर आदि के बारे में जाने कितना जानता है····आमतौर पर हर चीज़ के बारे में जाने कितना जानता है···· आदमी ज़हीन है। इस क्लर्क के अलावा दो फ़ौजी अफ़सर हैं, एक नौ-सैनिक अधिकारी है और एक अंग्रेज़ी-शिक्षक है। फ़ौजी-अफ़सर हमेशा ताश पीटते रहते हैं। वैसे, प्रियतमे, अगले पत्र की प्रतीक्षा करो। उसमें विस्तार से इनका बयान करूँगा, और अपने बयान के लिये व्यंग्यों का सहारा लूँगा !····घर की मालकिन नाटे क़द की मैली-कुचैली बुढ़िया है····

दिन भर गाउन और स्लीपर पहिने इधर-उधर टहलती और तेरेज़ा पर चीखती चिल्लाती रहती है।....हमारा ववर्चीखाना बहुत बड़ा साफ़-सुथरा और रोशनी से जगमग है। इसमें तीन खिड़कियाँ हैं और इसे बीच से बाँट दिया गया है। इस तरह एक कमरा बन गया है और मैं बावर्चीखाने के इसी कमरे में रहता हूँ। मोटी तौर पर सभी तरह की सुख-सुविधा है। लेकिन, मेरी प्रिये, बावर्चीखाने के इस कमरे की बात पढ़कर कोई अन-चाहा अर्थ न लगाने लगना। मेरे इस हिस्से में शान्ति रहती है। मैं चैन से, आराम से रह सकता हूँ। जहाँ तक फ़र्नीचर का सवाल है, यहाँ एक पलंग, एक मेज, एक दराज़ोंवाली आलमारी और दो कुर्सियाँ हैं। यह एक देव-मूर्त्ति यहाँ लाकर मैंने रख दी है....यों यह ठीक है कि मुझे कमरे शायद इससे बेहतर और कहीं बेहतर भी मिल सकते हैं, मगर सबसे बड़ी बात है आराम। सो, उसका सरंजाम मैंने कर लिया है, और लगता है कि इससे अधिक और कुछ मुझे चाहिये नहीं। फिर, आँगन के उस पार-तुम्हारी खिड़की है और आँगन सँकरा है....नतीजा यह कि तुम्हें आते-जाते देख लेता हूँ। अकेले रहनेवाले आदमी के लिये इससे बड़ी ख़ुशी की बात भला और क्या हो सकती है।

यहाँ के सबसे महँगे कमरे का किराया पैंतीस रूबल है। इसमें नाश्ता और खाना शामिल है। मगर, इतना ख़र्च कर सकना मेरे बस की बात नहीं है। मेरे कमरे का किराया साढ़े चौबीस रूबल है, और इसमें भी नाश्ते और खाने का खर्च जुड़ा हुआ है! इसके पहिले मैं तीस रूबल देता था और फिर भी जाने कितनी चीज़ों से महरूम रह जाना पड़ता था। यानी, पहिले चाय आकाश-कुसुम थी, मगर अब मैं चाय और चीनी दोनों ही खरीद सकता हूँ। पता नहीं क्यों, चाय न पिऊँ तो कुछ शर्म-सी महसूस होती है। यहाँ सभी लोग सम्भ्रान्त हैं और बिना चाय के कुछ बड़ा अटपटा-अटपटा-सा लगता है।....मेरी प्रियतमे, इसलिये पी जाती है चाय; यानी, दूसरों के दिखाने के लिये और ज़रा रोब-दाब के लिये पी जाती है

चाय ! यह न हो तो मैं ज़र्रा बराबर फ़िक्र न करूँ ! यह न हो तो वक़्त-ज़रूरत के लिये, जूतों के लिये, कपड़ों के लिये थोड़ा-बहुत बचा ही लिया जाये। मगर, फ़िलहाल तो पूरी तनख्वाह इसी में चली जाती है। वैसे मुझे कोई शिकायत नहीं। आखिर सालों से इसी तनख्वाह में काम चलता रहा है। फिर, तनख्वाह के आलावा कभी-कभी बोनस भी तो मिलते हैं।

अच्छा, दोस्विदानिया† मेरी अप्सरा ! अरे हाँ, सस्ते मिल गये तो मैं तुम्हारे लिये गुलमेंहदी और जिरेनियम के थोड़े से गमले ले आया ! शायद तुम्हें मिगनोनैत का बड़ा शौक़ है··· है न ? लोगों के पास मिगनोनैत भी है। तुम लिख भर दो। यह भी ले आऊँगा। मगर, हर बात ज़रा और समझाकर लिखो; और देखो, मेरे इस कमरे को लेकर कुछ गलत मत समझना। मैंने महज़ आराम और सहूलियत के ख्याल से यह कमरा किराये पर लिया है।···मेरी रानी, मैं थोड़ा बहुत बचा रहा हूँ कि समय आने पर आशियाने में तिनके तो बिछा सकूं। शायद मैं कुछ ऐसा लगता हूँ कि कोई फूंक दे और मैं उड़ जाऊँ ! मगर, गहराई से सोचो तो ऐसी बात है नहीं है। मैं अपनी मंजिल जानता हूँ। मेरा चरित्र दृढ़ और आत्मा गम्भीर है··· अलविदा, मेरी सलोनी देवदूती ·· यह पत्र तो सचमुच इतना लम्बा हो गया··· काम पर समय से नहीं जा सका, सो अलग !···· तुम्हारी नन्हीं-नन्हीं उँगलियों को मेरे अनेक चुम्बन।

मैं हूँ तुम्हारा विनीत-दास,
और सच्चा मित्र
मकार देवुश्किन

पुनश्च—क्षमा करना··· अनुरोध है कि जो लिखना, विस्तार से लिखना।··· वारेन्का, मैं तुम्हारे लिये आधा किलो मिठाई भेज रहा हूँ। आशा है, तुम्हें खूब पसन्द आयेगी।··· और, देखो ईश्वर के लिये मेरी चिन्ता न करना··· बस, तो एक बार और अलविदा, मेरी मधुरे !

---

†गुडबाई-अलविदा।

अप्रैल ८

प्रिय मकार-अलेक्सेयेविच,

मुझे लगता है कि तुमसे झगड़ना पड़ेगा। मकार-अलेक्सेयेविच, तुम बहुत ही अच्छे हो⋯मगर, मैं यह मिठाई रख नहीं सकती। मैं तो जानती हूँ कि यह तुम्हें कितनी महँगी पड़ी होगी, और तुम्हें क्या-क्या क़ुरबान करना पड़ा होगा इसके लिये, जाने कितनी तकलीफ़ देनी पड़ी होगी अपने आप को⋯मैंने तुमसे कितनी बार कहा कि मुझे कुछ नहीं चाहिये⋯बिल्कुल कुछ नहीं चाहिये⋯मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं। अब ये फूल ही भला तुमने क्यों भेज दिये? गुलमेंहदी की एक शाख होती, तब भी एक बात थी; लेकिन, यह तमाम के तमाम जिरेनियम भेज दिये तुमने⋯भला क्यों? मैंने कहीं यों ही लापरवाही में जिरेनियम का नाम ले लिया और आप कि दौड़ पड़े ख़रीदने को! जाने कितने महँगे पड़े होंगे ये! वैसे हैं बहुत ही ख़ुशनुमा, नन्हें-नन्हें, लाल-लाल फूलों की आड़ी-सीधी क़तारों के क्या कहने हैं! ये तुम्हें आख़िर मिले कहाँ? मैंने इन्हें खिड़की की सबसे शानदार जगह पर सजा कर रख दिया है।⋯मैं नीचे एक बेंच रक्खूँगी और उसपर भी गमले सजा दूँगी⋯मगर थोड़ा रुक जाओ⋯जेब गरम हो जाये ज़रा⋯फ़ेदोरा तो इन फूलों को देखते थकती ही नहीं⋯इन दिनों यहाँ तो जैसे स्वर्ग उतर आया है⋯हर चीज़ झलाझल है⋯चमचम कर रही है। लेकिन, यह मिठाई आख़िर किसलिये? तुम्हारे पत्र से लगता है कि कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई गड़बड़ी है⋯स्वर्ग, बहार, भीनी-भीनी महक और चिड़ियों

के गीत····कुछ ज्यादा मालूम होते हैं····मेरा तो पूरा विश्वास था कि पत्र के साथ कविता भी आयेगी ही····कुछ पंक्तियाँ तो भेजी ही होतीं, मकार अलेक्सेयेविच····बाक़ी तो सब कुछ पत्र में है ही-कोमल-भावनायें हैं, गुलाबी कल्पनायें हैं और भला क्या नहीं है ? जहाँ तक पर्दे का सवाल है, मेरा तो उधर ध्यान ही नहीं गया, शायद गमले रखते समय पर्दा अनजाने ही फँस गया है। सच्चाई यह है।····

उफ़, मकार-अलेक्सेयेविच···मकार-अलेक्सेयेविच, तुम मुझे चाहे जितना यक़ीन दिलाओ, मगर मैं यह मानने से रही कि तुम सारी कमाई अपने ऊपर खर्च करते हो····तुम मुझसे कुछ भी छिपा नहीं सकते ! मैं अच्छी तरह समझती हूँ कि मेरे कारण तुम रोज़मर्रा की ज़रूरतों की भी फ़िक्र नहीं करते····आखिर तुमने ऐसा कमरा किराये पर क्यों लिया !····तमाम तरह की तकलीफें हैं यहाँ····नतीजा यह है कि तुम बराबर परेशान और खीझे रहते हो····फिर यह कि तुम्हें एकान्त चाहिये, और यह तुम्हें वहाँ मिलने से रहा ! यों तुम्हारी तनख़्वाह इतनी है कि तुम कहीं क़ायदे से और कहीं आराम से रह सकते हो। फ़ेदोरा का कहना है कि पहिले तुम कहीं ठाठ से रहते रहे हो ! शायद तुमने पूरी जिन्दगी अकेले अभावों के अँधेरे में काटी है····शायद स्नेह के दो बोल तुमने कभी नहीं सुने हैं····अजनबियों से किराये पर ले लेकर उल्टे-सीधे कोनों में घुटते रहे हो ! मेरे मेहरबान, मेरा दिल तुम्हारे लिये किस तरह टीसता है कम से कम ठीक-ठाक तो रहो, मकार अलेक्सेयेविच ! अब देखो न, तुम्हारी आँखे मोमबत्ती की रोशनी में लिखने से दुखती हैं···· फिर भला तुम क्यों लिखते हो मोमबत्ती की रोशनी में ?··· मैं समझती हूँ, कि तुम्हारे मालिक अच्छी तरह जानते हैं कि तुम मेहनती हो ! और, सो तो तुम हो।

हाँ, मैं तुमसे एक बार फिर अनुरोध करती हूँ····मुझ पर इतना खर्च न किया करो····बड़ी कृपा होगी····मैं जानती हूँ कि तुम मुझे प्यार

करते हो, लेकिन तुम रईस तो नहीं ही हो न ! आज सबेरे सोकर उठी तो तबीयत बड़ी उमंग में रही····मन खुशी से खिला रहा··· फेदोरा बहुत देर तक काम पर रही है, और मेरे लिये भी काम ले आई है।···· मजा आ गया····मैं फ़ौरन जाकर थोड़ी-सी सिल्क खरीद लाई····और फिर लौटकर काम पर बैठ गई····सारी सुबह मन फूल-सा हल्का रहा···· रह-रहकर मुस्कराता रहा····लेकिन इस समय फिर मन पर बोझ आ गया है, और चारों ओर से उदासी घिरी आ रही है।

आखिर मेरा क्या होगा ? भविष्य के गर्भ में मेरे लिए क्या है ? अनिश्चय की परिस्थिति में जीना किसी तरह की कोई सम्भावना सामने न देखना, और भविष्य की दूर-दूर तक कोई कल्पना न कर पाना, सचमुच कितना दुखदाई है ! और, अतीत की बात करो, तो वह भी इतना भयानक रहा है कि सोचने-मात्र से कलेजा टूक-टूक होने लगता है। कुछ बदमाश लोगों ने जिस तरह मेरी ज़िन्दगी बरबाद कर दी है, उसके कारण लगता है कि ज़िन्दगी के आखिरी दिन तक आँसू बहाने पड़ेंगे।····

लेकिन, अँधेरा बढ़ रहा है और अब मुझे काम लेकर बैठ जाना चाहिये।····मैं तो जाने कितना लिखती, मगर समय जो नहीं है। काम ज़रूरी है, और जल्दी करना है। पत्र लिखना वैसे बुरा नहीं है, आदमी को अकेलापन महसूस नहीं होता····लेकिन, तुम कभी यहाँ आते क्यों नही ? सचमुच यहाँ आते क्यों नहीं, मकार-अलेक्सेयेविच····जगह दूर नहीं है, और समय भी निकाला ही जा सकता है। देखो, ज़रूर आओ यहाँ किसी-न-किसी दिन।····

हाँ तुम्हारी तेरेज़ा से अभी-अभी भेंट हुई थी। लड़की इतनी बीमार लगी कि मुझे बहुत ही तकलीफ़ हुई और मैंने उसे बीस कोपेक दे दिया।

और हाँ, मैं तो भूल ही गई····तुम मुझे विस्तार में लिखो कि तुम कैसे समय काटते हो, किस तरह जीते हो, तुम्हारे साथ-रहनेवाले कैसे हैं, और तुम्हारी उनसे कैसी बनती है ? मैं सभी कुछ जानना चाहती हूँ।

और तुम चिन्ता से हर बात समझ कर लिखना। आज रात को मैं तुम्हारे लिये पर्दा खास तौर पर खोंस दूंगी। देखो, जल्दी सो जाया करो। कल तो कोई आधी रात तक तुम्हारी मोमबत्ती जलती रही।....

इस समय मैं बहुत थका-थका-सा अनुभव कर रही हूँ....उदासी हर ओर से घेर रही है....अकेलापन काट रहा है। और, आज की तरह ही दिन पहिले भी बीते हैं। खैर....दोस्विदानिया।

तुम्हारी, स्नेहमयी,
वारवरा दोब्रोस्योलोवा

अप्रैल ८

प्रिय वारवरा-अलेक्सेयेवना,

हाँ, मेरी रानी, मेरी क़िस्मत में यह दिन भी देखना बदा था। तुमने मेरा यानी एक बूढ़े का अच्छा-खासा मज़ाक बनाया है, वारवराअलेक्से-येवना। लेकिन, इसमें क़ुसूर मेरा है और सिर्फ़ मेरा है। बाल सफ़ेद हो गये हैं, और इने-गिने ही बाक़ी रह गये हैं; मगर मैं हूँ कि ज़वानी से खेलता हूँ, भावुकताभरी बातें करता हूँ। इस पर भी, प्रियतमे, सुनो—यह आदमी नाम का जानवर कभी-कभी अजीब-अजीब काम करता है! ऐसी भयानक बकवास उछालता है, और इतनी दूर तक बढ़ जाता है कि हे भगवान! और, इस सबका परिणाम क्या होता है....नतीजा क्या निकलता है? कुछ नहीं, महज़ गंदगी....और सचमुच भगवान बचाये इस गंदगी से....मैं तुमसे नाराज़ नहीं हूँ....सिर्फ़ मन में खीझ है कि मैंने तुम्हें इतने बुद्धूपन की बातें ऐसी गुलकारी के साथ क्यों लिखी?....पर आज

मैं बिल्कुल राजा की तरह काम पर गया...मेरी आत्मा जैसे प्रकाश का पर्व मना रही थी। क़िस्सा-कोता यह कि तबीयत बड़ी उमंग में रही। शुरू-शुरू में कागज़ात पर ऐसे ज़ोर-शोर से टूटा कि क्या कहो! मगर, फिर बाद में जी पहिले की तरह ही गिरने लगा, और तबीयत रहे-रहे उचाट हो गई। स्याही के धब्बे वही रहे, मेज और कागज़ात वही रहे, और मैं भी वही रहा...मगर, फिर भी...सवाल है कि फिर चित्त में यह खुशी कहाँ की फट पड़ी थी? आखिर मैंने यह सब किया क्योंकर जबाब है, यह सब हुआ क्योंकि मेरे अन्तर में सूरज उग आया और आसमान नीलम से नहा उठा। ईश्वर ही जानता है कि हमारी खिड़कियों के नीचे आँगन में क्या-क्या होता है...फिर, यह दिलफ़रेब महकें कहाँ से उड़ती चली आई। शायद मेरी मूर्ख कल्पना ने अपनी क़रामात दिखलाई कि आदमी अपने को पूरी तरह भूल गया और बुद्धिहीनता की रौ में, बहता चला गया...पर, शाम को घर लौटा तो मैंने रास्ता तय नहीं किया जैसे-तैसे अपने को घसीटा। फिर जाने क्यों, सिर दर्द करने लगा, सो ऊपर से! मुसीबत के मानी ही हैं कि एक के बाद दूसरी आती चली जाये! शायद मुझे सर्दी लग गई...बात यह है कि बहार का ऐसा नशा मुझ पर चढ़ा कि मैं एक पतला कोट पहिन कर ही बाहर चला गया।...

मेरा ख्याल है कि तुमने मेरी भावनाओं को सही ढंग से समझा नहीं...बिल्कुल ग़लत ढङ्ग से समझा। मेरा स्नेह तो बिलकुल पितृसुलभ है, वारवरा अलेक्सेयेवना! तुम अकेली हो, अनाथ हो, और इसीलिए मैंने तुम्हारे पिता की जगह ले ली है।...मैं यह बात पूरी ईमानदारी के साथ कह रहा हूँ। आखिर मैं दूर का तुम्हारा रिश्तेदार तो हूँ ही...है न? ...हाँ...हाँ, दूर का, बहुत दूर का सही, मगर हमारा आपस में रिश्ता तो है ही। और, इसे भी छोड़ो...फ़िलहाल तो मैंने अपने को तुम्हारा निकटतम सम्बन्धी और संरक्षक मान लिया है, क्योंकि

मदद और पनाह की जगह तुम्हें अब तक धोखा और अपमान ही मिला है !....जहाँ तक कविता का सवाल है, मेरी उम्र के किसी आदमी का काव्य-रचना-वचना में उलझना सम्भव नहीं ! यों कविता मानी गलीज़....और, इन दिनों छोटे-छोटे लड़के इसके कारण स्कूलों में डंडे खाते हैं—यह है मेरी अपनी राय इस मामले में, प्रिये।

और, यह आराम, चैन और सुख की इतनी चिन्ता तुमने क्यों कर डाली, वारवरा-अलेक्सेयेवना ? मुझे वनावटी जिन्दगी पसंद नहीं, और मेरी जरूरतें भी ऐसी कोई वहुत नहीं। फिर इन दिनों मैं जितना सम्पन्न हूँ, इतना जीवन में कभी नहीं रहा। वैसे बुढ़ापे में इतनी चिन्ता-फिक्र भी आखिर क्यों की जाये ! खाने-पीने भर को रहता ही है .. थोड़े-बहुत कपड़े जूते वगैरह हैं ही....ऐसे में खर्च के सवाल को लेकर इस तरह की परेशानी क्यों ? मैं कोई राजकुमार तो हूँ नहीं... न ही मेरे पिता कहीं के राजा-महराजा थे....उनकी आमदनी तो मुझसे भी कम थी, और इस पर भी वे पूरा परिवार चलाते थे। दूसरी ओर, मुझमें किसी तरह की कोई उमंग न हो, ऐसा नहीं है। इसके वावजूद सच यह है कि मेरा पिछला घर इससे कहीं अच्छा था ! मेरी मुन्नी-रानी, वहाँ मैं कहीं ज्यादा सुख-चैन अनुभव करता था। मेरा यह कमरा अच्छा-खासा है। कुछ मानों में उससे कहीं शानदार और जानदार भी है....इसके खिलाफ़ मुझे कुछ नहीं कहना। मगर, इस पर भी, मैं अपने पिछले कमरे के लिये रह-रहकर हुड़क उठता हूँ। हम पुराने लोग यानी बड़ी उम्र के लोग चीज़ों से वैंध जाते हैं। ... तुम तो जानती हो कि वह कमरा छोटा था और दीवारें.... दीवारें वैसी ही थीं जैसी दीवारें होती है ! ...फिर दीवारों का महत्व भी क्या ! यह तो वहाँ से जुड़ी यादें हैं जो मन में उदासी घोल जाती हैं.. अजीब बात है कि इतनी प्यारी होने के कारण ही वे मुझे इतना दुख देती रहती हैं। यानी जो चीजें कभी खटकती थीं और मन में खीझ पैदा करती थीं, वे भी अब अच्छी और पवित्रता से घुली लगती हैं। हम वहाँ

बड़ी ही शान्ति से रहते थे•••हम से मेरा मतलब है मैं और वह बूढ़ी महिला•••बूढ़ी महिला बेचारी मर गई•••उसका ध्यान आने से भी मन भारी हो जाता है•••औरत भली थी, और कमरों का किराया वाजिब ही वाजिब लेती थी । लम्बी-लम्बी सुइयों से रज़ाइयों में प्योंदे लगाती रहती थी । मोमबत्ती एक ही रहती थी, इसलिये काम हम दोनों एक ही मेज़ पर करते थे ।

उसकी नातिन माशा का मुझे पूरी तरह ध्यान है•••उस समय तो वह छोटी बच्ची थी, मगर अब होगी कोई तेरह साल की । कैसी शरारती थी ! उसे हर समय कुछ-न-कुछ सूझता ही रहता था । हम दोनों को हँसाती ही रहती थी । इस तरह हँसते-बोलते हम दोनों की ज़िन्दगी एक साथ कटती जा रही थी । जाड़ों में रातें लम्बी होतीं तो हम गोलमेज़ पर चाय पीते, और फिर अपने-अपने काम में जुट जाते । बुढ़िया बच्ची को बहलाने और शैतानी से दूर रखने के लिए तरह-तरह की कहानियाँ सुनाती ! और, कैसी-कैसी कहानियाँ सुनाती ! बच्चा क्या, कोई सयाना समझदार आदमी भी उन्हें सुनता तो उनमें खो जाता । और तो और, मैं खुद अपना सारा काम-काज भूल जाता । पाइप से धुआँ उड़ाता और कहानियां सुनता रहता । वह मासूम बच्ची, वह शैतान की जड़ अपना गुलाबी चेहरा अपनी नन्हीं-नन्हीं हथेली पर टिका लेती । उसका प्यारा-प्यारा-सा मुँह आश्चर्य से खुला रहता । अगर कहानी में कहीं कोई बात बहुत डर की होती, तो वह नानी से बिल्कुल सट जाती । उस समय उसे देखना इतना प्यारा लगता कि बस ! और, हमें मोमबत्ती के टिमटिमाने तक का होश न रहता । अहाते में हवा सरसराती रहती और मैदान में बर्फ़ सर्राटे भरती रहती ।•••हाँ, वह ज़िन्दगी खासी मज़े की रही, और हम कोई बीस वर्ष तक इसी तरह साथ-साथ रहते गये । लेकिन, फिर मैं कि कटकर दूर चला आया । शायद इन सारी बातों में

तुम्हें कोई दिलचस्पी नहीं; और, ख़ास तौर पर आज मुझे भी यह कोई बहुत सुख नहीं देती।....मुन्नी, अँधेरा बढ़ता जा रहा है ...तेरेज़ा किसी चीज़ को लेकर इधर-उधर कर रही है। मेरा सिर दर्द कर रहा है.... पीठ में भी थोड़ी-थोड़ी तकलीफ़ है...और, मेरे विचार भी जैसे किसी पीड़ा से ऐंठे जा रहे हैं....आज मेरा मन बहुत ही उदास है, मेरी रानी !

लेकिन, प्रिये, यह तुमने क्या लिखा ? मैं तुम्हारे यहाँ कैसे आ सकता हूँ ? लोग क्या कहेंगे ? मैंने तुम्हारे अहाते में क़दम रक्खा कि लोगों की ज़बानें कतरनी की तरह चलनी शुरू हुई ...फिर, तो क्या-क्या सवाल किये जायेंगे, किस-किस तरह की बातें की जायँगी, और कैसी-कैसी बेपर की हाँकी जायेंगीं ! लोग हज़ार तरह की ग़लत बातें करेंगे। नहीं, मेरी नन्हीं देवदूती, मैं कल शाम को तुमसे बेसपर्स में मिलूंगा.... वही अच्छा रहेगा...हमारी भावना को कहीं से कोई चोट भी न पहुँचेगी.... और हाँ, कृपया ऐसा पत्र लिखने के लिये मुझे क्षमा कर देना....स्वयं पत्र पढ़ता हूं तो लगता है कि आदि से अन्त तक तमाम क़िस्म की अटपटी और बेसिर-पैर की बातें भरी हैं इसमें !....मेरी मुन्नी, मैं बूढ़ा आदमी हूं ...बहुत-सी बातें जानता भी नहीं...जवान था तो सीखा बहुत कम, और अब बूढ़ा हूं तो दिमाग़ में कुछ ठहरता नहीं.......दुबारा शुरू करने से ही क्या हो जायेगा ? ....मैं कोई अच्छा क़िस्सागो नहीं....और कोई बताये-न बताये, मुझ पर हँसे, न हँसे, मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि मैं जब भी ख़ूबसूरती से, बातें सजाकर रखने की कोशिश करता हूँ, बकवास होकर रह जाती है।....आज मैंने तुम्हें झिलमिली गिराते खिड़की पर देखा था....दोस्विदानिया....दोस्विदानिया....ईश्वर तुम्हें लम्बी उम्र दें....दोस्विदानिया, वारवरा- अलेक्सेयेवना।

तुम्हारा अनन्य मित्र,

मकार-देवुश्किन

पुनश्च—प्रियतमे, मैं अब किसी का वर्णन व्यंग्यात्मक ढङ्ग से नहीं कर सकता। किसी पर छींटाकशी करने या किसी की खिल्ली उड़ाने का मेरा ज़माना लद गया। अगर मैं आज भी ऐसा करूँगा तो लोग मेरी हँसी उड़ायँगे और अपनी रूसी-कहावत दोहरायेंगे—कहावत है कि जो अपने पड़ोसियों के लिये गढ़ा खोदता है, वह पहिले अपने लिये गढ़ा खोदता है।

अप्रैल ६

मेरे प्रिय मकार-अलेक्सेयेविच,

ऐसी भावुकता-भरी, व्यर्थ की बातें करते हो तुम··· तुम्हें शर्म नहीं आती, मेरे मित्र ! मेरे त्राता ! तुम्हें मेरी बातों से तकलीफ़ पहुँची ?···· यह तो मैं जानती हूँ कि मैं अक़्सर ही दिमाग़ से काम नहीं लेती, लेकिन यह मैंने कभी नही सोचा था कि तुम्हें इस तरह की ग़लतफ़हमी होगी ····मैंने तुम्हारा मज़ाक बनाने की कोशिश कभी नहीं की··· विश्वास करो कि मैं तुम्हारी उम्र या तुम्हारे चरित्र की हँसी कभी उड़ा नहीं सकती···हाँ, मेरी नासमझी ज़रूर हो सकती है··· और उससे भी बड़ी बात यह है कि हो सकता है कि मन की ऊब के कारण कुछ उल्टा-सीधा लिख दिया हो। आदमी ऊब से घबड़ाकर क्या नहीं कर-बैठता···· सच बताऊँ मैंने तुम्हारा पत्र पढ़ा तो लगा कि तुमने मेरा मज़ाक बनाया है····और, तुम्हें दुःखी देखकर मेरा मन एकदम भारी हो उठा। मेरे मित्र मेरे सहायक, मेरे साथी, तुम मुझे भावनाहीन या कृतघ्न समझोगे तो मेरे साथ सचमुच बड़ा अन्याय करोगे।··· मैं अच्छी तरह समझती हूँ कि तुमने मुझे दुश्मनों से बचाकर, नफ़रत और अत्याचार से मेरी रक्षा कर मुझ पर सचमुच कितना बड़ा उपकार किया है। मैं ईश्वर से तुम्हारे सुख-शान्ति के लिये प्रार्थना करती रहती हूँ; और, अगर ईश्वर मेरी सुनता होगा तो तुम अवश्य ही सुखी और प्रसन्न रहोगे।····

आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है। रह-रहकर कँपकँपी छूटती है और चेहरा तमतमा उठता है। फ़ेदोरा परेशान है। और हाँ, तुम्हें यहाँ आने और मुझसे मिलने में किसी तरह का कोई संकोच नहीं होना चाहिये, मकार अलेक्सेयेविच ! लोग पहिले अपनी चिंता करें फिर हमारी करेंगे।....हम एक दूसरे से अच्छी तरह परिचित हैं... है न ?....बस तो दोस्विदानिया, मकार-अलेक्सेयेविच....मेरे पास जो कुछ कहने-लिखने को था, कह लिख दिया, अधिक की मेरी हिम्मत नहीं, तबीयत साथ नहीं दे रही है।....फिर अनुरोध है कि मुझसे नाराज न होना। मैं तुम्हारा सदा-सदा इसी प्रकार आदर और सम्मान करूँगी।

तुम्हारी, अनन्य विनय सहित
वारवरा दोब्रोस्योलोवा

अप्रैल १२

मेरी प्रियतमा, वारवरा-अलेक्सेयेवना,

आखिर बात क्या है, क्या गड़बड़ी है कि तुम इस तरह डराती रहती हो ? मैं अपने हर पत्र में तुमसे आग्रह करता हूँ, अनुरोध करता हूँ कि ज़रा सावधानी से रहा करो, कपड़े-लत्ते क़ायदे से पहिने रहा करो, बुरे मौसम में घर में ही रहा करो, और हर मामले में ज़रा अक्ल से काम किया करो। मैं तो जानता हूँ कि तुम दूब की पत्ती की तरह दुबली-पतली हो और ज़रा-सी भी लापरवाही से ठंड खा जाती हो। मेरी प्राण ! यह नहीं चलेगा, तुम्हें अपनी परवाह करनी पड़ेगी, अपने मामले में चिन्ता बरतनी पड़ेगी और हर तरह के खतरे से दूर ही दूर रहना पड़ेगा। तभी तो तुम्हारे हितचिन्तक, तुम्हारे स्नेही तुम्हारी ओर से निश्चिंत रह सकेंगे वरना तो दुखदर्द है ही।....

तुमने मेरी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी और वातावरण के बारे में विस्तार से सभी कुछ जानना चाहा है। तो ठीक, सुनो...मुझे तुम्हें सभी कुछ बतलाने में बड़ी ख़ुशी होगी...लेकिन बात शुरू से ही उठाऊँ... घर की सामने वाली खास सीढ़ी बड़ी शानदार है...साफ़-सुथरी है...चमाचम करती रहती है... और, काफ़ी चौड़ी है...दोनों ओर के जंगले महोगनी लकड़ी के हैं और उन पर धातु का काम है....लेकिन पीछे वाली सीढ़ी की बात छोड़ो....उसका ज़िक्र जितना कम किया जाये, उतना ही अच्छा। भूला है बिल्कुल...हर तरफ़ नमी और अंधेरा है... पास की दीवारें ऐसी फुसफुसी हैं कि उँगलियाँ धँस-धँस जाती हैं। सीढ़ी के हर मोड़ पर बक्सों, कुर्सियों और कपड़े की पुरानी आलमारियों के अम्बार हैं।....गंदे कपड़ों की क़तारों की क़तारें हैं... अधिकतर खिड़कियाँ टूटी हुई हैं....जगह-जगह गर्द-धूल, कूड़ा-कर्कट, अण्डों, के छिल्कों और मछलियों की आँतों से ऊपर तक गजागज टब हैं....ऐसी बदबू आती है कि नाक सड़ जाये।...सारांश यह कि कुछ ठीकठाक है नहीं।

....जहाँ तक कमरों का सवाल है, उनकी चर्चा तो पहिले भी कर चुका हूँ। ख़ासे आरामदेह हैं....मगर ज़रा छोटे हैं और घुटन से भरे हैं....मेरा यह मतलब नहीं कि उनसे बदबू आती है, मगर यह समझो कि उनसे ऐसी बू ज़रूर आती है कि जो सूँघे सो चारपाई पकड़ ले। उस पर पहिले तो ग़ुस्सा आता है, मगर फिर कुछ मिनटों में ही आदत पड़ जाती है, क्योंकि यहाँ तो कपड़े और हाथ तक गंधाते हैं... लेकिन, कनेर-चिड़ियाँ ज़रूर मर जाती हैं। यहाँ रहने वाला जहाज़ी-अफ़सर पाँचवीं कनेर लाया है....वे यहाँ की हवा सह ही नहीं पातीं !...सुबह गोश्त और मछली पकती है, तो बावर्चीख़ाना गीला रहता है और भभका-सा उठता रहता है....शाम को ज़रूर आनन्द रहता है।....बावर्चीख़ाना काफ़ी रौशन है और बड़ा है.... अन्दर हर तरफ़ गंदे कपड़े सूखते रहते हैं....नतीजा यह

है कि मुझे खासी परेशानी होती रहती है··· मेरा कमरा बिल्कुल बगल में जो है। लेकिन छोड़ो, रहते-रहते, थोड़े समय बाद उसकी भी आदत पड़ ही जायेगी····।

घर में सुबह तड़के से ही हलचल शुरू हो जाती है। लोग सो-सोकर उठते, चहलक़दमी करते और पैर पटकते रहते हैं। कुछ लोगों को काम पर जाना होता है····सो, सबसे पहिले हम लोग चाय पीते हैं····ज़्यादातर समोवार मकान मालकिन के हैं और जो हैं, वे भी इने-गिने ही है···· इस-लिए हर एक को अपनी-अपनी पारी की राह जोहनी पड़ती है। अगर कोई क़तार तोड़कर आगे बढ़ जाता है तो बाक़ी लोग उस पर टूट-से पड़ते हैं। पहिले मेरी भी यही दुर्गति हुई····मगर, छोड़ो, यह कोई चर्चा का विषय नहीं। परन्तु, यह सच है कि इस चाय के समय ही मेरी सभी लोगों से मुलाक़ात हुई उनमें भी सबसे पहिले मेरी भेंट जहाज़ी-अफ़सर से हुई आदमी विश्वास के योग्य है। उसने अपने पिता, माँ, बहिन और अपने कोन्स्दात नगर के बारे में मुझे तमाम बातें बताई। उसकी बहिन का विवाह तुला के एक अधिकारी से हुआ है।····तो, उस जहाज़ी-अफ़सर ने मुझे फ़ौरन ही अपनी बाँहों का सहारा दिया और चाय की दावत दी।···वह जिस कमरे में रहता है, उसमें ताश बराबर पिटता रहता है। बस, तो मुझे भी न्योता मिला और मैं वहाँ जा बैठा। पता चला कि वे लोग सारी रात ताश खेलते रहे हैं। कमरा भरा अनुभव हुआ ताश की फेंटाई और खड़िया की घिसाई की आवाज़ से और तम्बाकू के भभके से।····मगर मैंने जुआ खेलने से इन्कार कर दिया। उस पर मुझसे कहा गया—'ठीक है तो दर्शन यहाँ न बघारो!' और, इसके बाद किसी ने मुझसे बात तक न की।··· सच पूछो तो मैंने इसका बुरा भी नहीं माना। मैं अब दुबारा वहाँ कभी नहीं जाऊँगा। वे सब तो जुआरी हैं, पक्के जुआरी।····वैसे लेखक

भी अपने कमरे में पार्टियाँ देता है। लेकिन, यहाँ हर ओर मर्यादा है, कोमलता है, भोलापन है। हर चीज़ का स्तर ज़रा ऊँचा है।

वारेन्का लगे हाथों तुम्हें यह भी बता दूँ कि हमारी मकान-मालकिन बड़ी लालची औरत है। पूरी चुड़ैल है!····तुमने तेरेज़ा को तो देखा ही है। बेचारी कितनी दुबली है! परनोचे-चूज़े-सी लगती है।··· यानी, नौकर वहाँ दो ही हैं—तेरेज़ा और फ़ाल्दोनी। शायद फ़ाल्दोनी का नाम कुछ दूसरा है, मगर इस नाम से पुकारने पर भी वाक़ायदा जवाब देता है। फलतः उसे सब फ़ाल्दोनी ही कहते हैं। आदमी के सिर के वाल लाल हैं, और नाक बैठी हुई है। पक्का उजड्ड है, तेरेज़ा से हमेशा उलझता रहता है। अक़्सर ही मारपीट तक की नौवत आ जाती है!····कहने का मतलब यह कि यहाँ की ज़िन्दगी ऐसी कोई खास अच्छी नहीं।····यहाँ के सारे के सारे लोग रात में सोते नहीं। कुछ लोग ताश खेलते रहते हैं तो कुछ लोग कुछ ऐसे गंदे काम करते हैं कि उनका ज़िक्र करने में भी मुझे शर्म महसूस होती है। मुझे तो इस वातावरण में रहने का अभ्यास हो गया है, मगर ताज्जुब है कि कुछ परिवार वाले लोग भी इस पाग़लखाने में रहते हैं, और यहाँ का सभी कुछ बर्दाश्त करते हैं।····हॉल के दूसरी तरफ़ के एक कमरे में एक परिवार है····कमरा थोड़ा अलग-थलग है···· वहाँ रहने वाले शान्त स्वभाव के हैं, मुश्किल से ही नज़र आते हैं, और पर्दे के पीछे चुपचाप रहते हैं। परिवार के बड़े बुज़ुर्ग का नाम गोर्शकोव है। आजकल वेकार है, कभी क्लर्क था और सात साल पहिले किसी अपराध में निकाल दिया गया था। आदमी के सिर के वाल सन हो चुके हैं और ऐसा फटेहाल है कि देखकर तकलीफ़ होती है। उसकी वास्कट मेरी वास्क़ट से भी ज़्यादा गई-बीती है।····गोर्शकोव से अक़सर बरामदे में भेंट होती है। उसके घुटने थरथराते हैं, और हाथ और सिर भी काँपते हैं। भगवान जाने किस बीमारी का अंजाम है यह! व्यक्ति कुछ ऐसा

है कि दूसरों से घबड़ाता है, किसी से भी मिलने में संकोच-सा अनुभव करता है, और अपने आप में ही खोया रहता है। कभी ऐसा ही घिनौना मैं भी हो सकता हूँ… मगर, उसकी तो हालत कहीं बदतर है। उसकी पत्नी तो है ही, तीन बच्चे भी हैं। सबसे बड़ा लड़का बाप की तरह ही सींक-सलाई है। बीवी मजे की है…खंडहर बता रहे हैं कि (कभी) इमारत अज़ीम थी।…बेचारी चिथड़े पहिने रहती है।…सुना है कि परिवार पर काफ़ी किराया बाक़ी है और मकान-मालकिन का व्यवहार इन लोगों के साथ अच्छा नहीं है।…सुना तो यहां तक है कि गोर्शकोव की नौकरी मुक़दमेबाज़ी या किसी खास जाँच ने ले ली। जो भी हो, ठीक-ठीक पता नहीं। पर परिवार ग़रीब है…भगवान ही जानता है कि सचमुच कितना ग़रीब है! गोर्शकोव के कमरे से किसी तरह की कोई आवाज नहीं आती, जैसे कि वहाँ कोई रहता ही नहीं। बच्चों तक की बोली सुनाई नहीं पड़ती। मैंने उन्हें कभी भी खेलते-कूदते नहीं देखा। इससे बुरा और भला क्या हो सकता है!… हाँ, एक दिन शाम को मैं उधर से गुज़रा कि मैंने किसी को सिसकते, किसी को फुसफुसाते और किसी को फिर सिसकते सुना। कोई ऐसे दबे स्वरों में रोने लगा कि मेरा मन कचोट-कचोट उठा। मैं सारी रात सो नहीं सका और इस परिवार के बारे में ही सोचता रहा…।

खैर, दोस्विदानिया, मेरी वारेन्का, मेरी अनमोल-नन्हीं गुड़िया! मैंने भरसक हर चीज़ को अच्छे से अच्छे ढंग से तुम्हारे सामने रखने की कोशिश की है।…मैं सारे दिन तुम्हारे बारे में सोचता रहा हूँ, और तुम्हारे सिवाय किसी और का ख्याल तक नहीं आया है।…रानी, तुम्हारी बड़ी चिंता रहती है मुझे! मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि तुम्हें एक गरम कोट चाहिये…आखिर यह पीतर्सबुर्ग है और यह पीतर्सबुर्ग की बहार के दिन हैं…कैसी हवायें चलती हैं, कैसी वर्षा होती है,

और कैसी बर्फ़ पड़ती है ! यह सारी अलामतें तो हमारी जान लेकर छोड़ेंगी ! इस अटपटे मौसम में भगवान ही हमारी रक्षा करे तो करे....! मेरे लिखने के ढंग पर नाराज़ न होना, मेरी प्राण ! मुझे लिखने का तरीक़ा नहीं आता और बिलकुल नहीं आता ! काश कि मैं थोड़ा बहुत लिख पाता ! मैं तो तुम्हें ख़ुश करने के लिये जो जी में आता है, वही लिख देता हूँ। हाँ, अगर थोड़ा भी पढ़ा-लिखा होता तो दूसरी ही बात होती। वैसे पढ़ा-लिखा है मैंने....मगर क्या ख़ाक पढ़ा-लिखा है ! एक कोपेक क़ीमत नहीं है आज उसकी।

तुम्हारा चिरंतन स्नेही,
मकार-देवुश्किन

अप्रैल २५

मेरे प्यारे मकार-अलेक्सेयेविच,

आज मेरी भेंट सहसा ही चचेरी-बहिन साशा से हो गई ! भयानक रहा। वह तो लगता है कि, बरबाद होकर रहेगी।....अफ़वाह मैंने भी सुनी है कि अन्ना-फ़्योदोरोवना इधर मेरे बारे में भी पूछ-तांछ करती रही हैं ! वे कभी मुझे चैन की सांस भी लेने देंगी या नहीं ? सुना है कि वे मुझे माफ़ कर देना चाहती हैं, बीती बातों को भुला देना चाहती हैं, और जल्दी ही मेरे यहाँ आने वाली हैं ! उनका कहना है कि तुम मेरे कोई नहीं, उनका रिश्ता ज्यादा नज़दीकी है, तुम्हें हमारे घरेलू-मामलों में पड़ने का कोई अधिकार नहीं, और मुझे शर्म आनी चाहिये कि मैं तुम्हारी उदारता और सहायता के सहारे पेट पाल रही हूँ। उनके हिसाब से मैं उनके सारे उपकार भूल गई हूँ....भूल गई हूँ कि उन्होंने मेरी माँ को और मुझे कभी भूखों मरने से बचाया था... ढाई वर्ष तक हमारे खाने-पीने पर जाने कितना ख़र्च किया था....और, इससे भी बड़ी बात

यह है कि वे क़र्ज़ की रक़म छोड़ देने तक को तैयार है !…हो न हो उन्होंने मेरी माँ तक को नहीं बख्शा ! काश मेरी माँ जान सकतीं कि इन लोगों ने मेरे साथ कैसा-कैसा व्यवहार किया हैं ! लेकिन, ईश्वर सभी कुछ देखता है।…अन्ना-फ़्योदोरोवना कहती हैं कि अगर मैं सुखी नहीं रह सकी तो यह दोष मेरा है…उन्होंने ने तो रास्ता दिखलाया…अब उनका क्या कुसूर कि मैं अपनी इज़्ज़त बचा न सकी, और शायद आगे भी बचा न सकूँ !…हे भगवान, सवाल है कि क़ुसूर उनका नहीं, तो फिर किसका है ?…अन्ना-फ़्योदोरोवना के अनुसार गस्पदीन* वाईकोव ने बिलकुल ठीक किया है, और आशा नहीं की जा सकती कि कोई भी आदमी उस औरत से शादी करेगा जो…लेकिन, मैं पूछती हूँ कि यह सब लिखने से फ़ायदा ? ऐसी अनीति कोई कैसे सहन कर सकता है, मकार अलेक्सेयेविच !…मैं नहीं जानती कि मुझे क्या हो रहा है !…मैं बैठी हूँ…मेरा पूरा शरीर काँप रहा है…आँसू जारी हैं…पूरे दो घन्टे लगे हैं मुझे यह पत्र लिखने में !…मेरा पूरा विश्वास था कि अन्ना-फ़्योदोरोवना कम से कम यह स्वीकार करेंगी और मानेंगी ही कि उन्होंने मुझे बड़ा नुकसान पहुँचाया है !…लेकिन, ख़ैर, जाने दो उन्हें…तुम तो हो ! और तुम चिन्ता न करना, मेरे एक मात्र हितैषी और त्राता !… फ़ेदोरा हमेशा बात बढ़ा चढ़ाकर कहती है…मैं बीमार नहीं हूँ…सिर्फ़ इतना है कि कल वोल्कोवो की प्रार्थना में गई तो हल्की-सी सर्दी लग गई…मैंने तो तुमसे इतना आग्रह किया था।…तुम भला साथ चले क्यों नहीं ?…उफ़ - मेरी माँ… मेरी प्यारी-प्यारी माँ, काश कि तुम अपनी क़ब्र से बाहर निकल आतीं…काश कि देखतीं कि इन लोगों ने तुम्हारी बेटी को क्या से क्या कर दिया है !

वा० दो०

---

* श्री

मई २०

वारेन्का, मेरी सोनचिरैया,

मैं थोड़े से अंगूर भेज रहा हूँ तुम्हारे लिये, मेरी प्राण! अंगूर बीमारी में बहुत फ़ायदा करते हैं। डॉक्टर अक़्सर प्यास लगने पर अंगूर खाने को कहते हैं।....कल तुमने 'फूलर' चाहे थे। सो, वे भी थोड़े से भेज दिये।....तुम्हें भूख तो क़ायदे से लगती है, प्रिये ?....यह सब से बड़ी बात है।....ईश्वर का बड़ा-बड़ा अनुग्रह कि हमारी मुसीबतें खत्म होने-होने को आ रही हैं। .. जहाँ तक किताबों का सवाल है, अभी तक मैं मँगा नहीं सका हूँ! कहते हैं कि एक किताब यहाँ बहुत ही अच्छी है....खूब लिखी है! सचमुच ही प्यारी किताब है! मैंने तो अभी तक उसे नहीं पढ़ा, पर सभी लोग उसकी तारीफ़ करते हैं....मुझे मिल जाये शायद....तुम पढ़ना पसंद करोगी ? पर, तुम्हारी पसंद बहुत अच्छी है.... कौन जाने तुम्हें वह पसंद भी आयेगी या नहीं....शायद तुम कविता जैसी कोई चीज़ चाहती हो....शायद कोई ऐसी रचना चाहती हो जिसमें आहें, हों, प्यार हो!... कोई बात नहीं, कोई ऐसी ही कृति प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा। यहाँ के लोगों के पास एक ऐसी नोटबुक है, जिसमें दूसरों की कवितायें उतार ली गई हैं।....

....मेरी क्या....मैं बिलकुल ठीक-ठाक हूँ। इसलिये मेरी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं, मेरी मधुरे....और, फ़ेदोरा की बातों को भी बहुत महत्त्व देने की ज़रूरत नहीं। लम्बी हांकना उसकी कोई आज की आदत तो है नहीं! मैंने अपना नया सूट बेचा नहीं है; और मैं उसे बेचूंगा भी क्यों....आख़िर किसलिये बेचूंगा ? मुझे इस बार कोई चालीस रूबल तनख्वाह ज़्यादा मिलेगी। ऐसे में सूट बेचने का सवाल ही कहाँ उठता है! इसलिये तुम बेकार परेशान न हो! तुम तो जानती हो कि फ़ेदोरा बहुत पंचायती है, और पल भर में ही घबड़ा जाती है। सिर्फ़ तुम अच्छी

हो जाओ····दिन अब फिरने ही वाले हैं····ईश्वर के लिये स्वस्थ हो जाओ। मेरे जैसे बूढ़े आदमी का दिल न तोड़ो!····तुमसे किसने कहा कि इधर मैं भटक गया हूँ? यह भी गप है····बकवास है····मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ और इतना तन्दुरुस्त हो गया हूँ कि शर्म महसूस करने लगा हूँ। यानी, यह कि मैं हर तरह सुख से हूँ····चिन्ता केवल तुम्हारी है—काश कि तुम स्वस्थ हो जातीं! अच्छा अलविदा, मेरी देवदूती! तुम्हारी नन्हीं-नन्हीं उंगलियों को मेरा प्यार!

तुम्हारा, सदैव,
मकार-देवुश्किन

पुनश्च: लेकिन, मेरी रानी, यह तुमने क्या लिखा? कुछ तो समझ से काम लो! मैं तुम्हारे यहाँ अक्सर ही कैसे आ सकता हूँ? ऐसी ग़लती मुझसे कैसे हो सकती है? फिर रात के अँधेरे में मेरे आने की तो शायद तुम आशा भी नहीं करतीं, ठीक है न? उस पर, इन दिनों रात के समय अँधेरा भी कितना होता है! वैसे जब तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं रही, और तुम्हारा दिमाग़ इधर-उधर भागता रहा, तब तो मैं तुम्हारे सिरहाने लगभग बराबर ही रहा। आज सोचता हूँ तो समझ में नहीं आता कि मैंने इतना भी किया तो किया कैसे? लेकिन, लोगों की जबानों के डर से आखिर को तो मुझे वहाँ से हटना ही पड़ा। इस पर भी लोग मनमानी उड़ाने से बाज़ कहाँ आये?····मैं तेरेज़ा का पूरा विश्वास करता हूँ····वह बकबकिया नहीं है। लेकिन, क्षणभर को सोचो कि अगर लोग हमारे बारे में कुछ ज्यादा जान जायँ तो क्या कहेंगे, क्या सोचेंगे!····धीरज से काम लो, मेरी रानी····पहिले अच्छी हो जाओ····फिर देखा जायेगा····हम कहीं-न-कहीं जरूर मिलेंगे।····

जून ६

आदरणीय मकार-अलेक्सेयेविच,

तुम्हारे स्नेह के कारण, तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैंने इस सीमा तक

कुछ-न-कुछ करने का निश्चय किया कि अपनी मेज़ की तमाम की तमाम दराज़ें छान-मारीं। इस तरह जो काँपी हाथ लगी, उसे तुम्हारे पास भेज रही हूँ। इसमें लिखना मैंने तब शुरू किया था जब दिन हँसी-ख़ुशी के थे। फिर तो बीच-बीच में जो-सो लिखती रही····तुमने अक़सर ही मेरे बीते दिनों, मेरी माँ, पोक्रोवस्की, और अन्ना-फ़्योदोरोवना के साथ बीती ज़िन्दगी के बारे में मुझसे····तरह-तरह के सवाल किये हैं। तुम यह डायरी पढ़ने को बहुत ही उत्सुक रहे हो। ईश्वर ही जानता है कि जाने क्यों, जब भी समय मिला, मैंने इसमें अतीत की घटनायें शब्दों में बाँध दीं। मेरा पूरा विश्वास है कि ये बातें तुम्हें पसन्द आयेंगी। वैसे, मैं तो जब भी इन्हें पढ़ती हूँ, मेरा दिल रहे-रहे भारी हो जाता है और अन्तिम, पंक्तियाँ लिखते समय की मेरी उम्र एकदम दुगुनी हो उठती है।····अलविदा मकार-अलेक्सेयेविच··· मैं बड़ी थकान और बड़ा अकेलापन अनुभव कर रही हूँ··· रातों को नींद नहीं आती। बीमारी के बाद चारपाई से उठते-उठते भी आदमी किस तरह चूर हो जाता है!

वा० दो०

मेरे पिता का देहान्त हुआ तो मैं चौदह साल की थी। बचपन ऐसे सुख से बीता था कि क्या कहो! मेरे पिता त० के जागीरदार के राजकुमार प० के कारिन्दा थे। वहीं यहाँ से काफ़ी दूर एक गाँव में हम चैन से रहते थे। किसी बात का दुःख न था। मैं बहुत ही चंचल थी और बाग़ों, चरागाहों और जंगलों में भागती-फिरती थी। पिता हमेशा जागीर के काम में उलझे रहते थे और मैं भी हमेशा घर के काम में बझी रहती थी। नतीजा यह कि मैं पूरी तरह आज़ाद रहती थी। कोई पढ़ाने-लिखाने वाला न था; और इससे मुझे और भी ख़ुशी होती थी। यानी, सुबह होते ही तालाब या कुँज में जा पहुँचती या घास काटनेवालों और फ़सल काटनेवालों के बीच जा-धमकती। कभी दिमाग़ में भी न आता कि धूप बहुत तेज़ है, या घर से बहुत दूर निकल आई हूँ। कभी महसूस

ही न होता कि कटीली झाड़ियों से हाथ और चेहरा छिल गया है या कपड़े तार-तार हो गये हैं। घर लौटने पर डांट खाने की भी फ़िक्र न होती थी।

मेरा बस चलता तो मैं तो अपनी पूरी की पूरी ज़िन्दगी उसी गाँव में खुश-खुश बिता देती। मगर, कर्त्ता के मन में तो कुछ और ही था। यानो, मैं अभी बारह वर्ष की बच्ची ही थी कि हम सब पीतर्सबुर्ग आ गये। आज भी दिल भर आता है जब सोचती हूँ कि हमने कैसे-कैसे सफ़र की तैयारी की, कैसे मैंने रोते-रोते हर चीज़ से विदा ली, और कैसे पिता की गर्दन में झूल गई कि ! सुनिये, दो-चार दिन और रुक जाइये।....मगर, पिता ने एक नहीं सुनी, बहुत बिगड़े। मुझ पर बहुत चीखे-चिल्लाये। माँ ने हिचकियाँ भरते हुये कहा—'तुम्हारे पापा के सामने काम का ऐसा सवाल है कि हमें यहाँ से जाना ही पड़ेगा। कोई और, चारा नहीं....!' बात यह है कि राजकुमार प० का देहान्त हो चुका था, और उनके वारिसों ने मेरे पिता को नौकरी से अलग कर दिया था। पिता ने संत-पीतर्सबुर्ग में कई लोगों के साझे में कुछ रक़म लगा रक्खी थी। उन्हें विश्वास था कि राजधानी में जा-बसने से हालत सुधर जायेगी।....यह राज़ माँ ने मुझे बाद में बताया....सो, राजधानी में हम पीतर्सबुर्ग स्तोरोना में रहे; और, फिर पिता की मौत के समय तक वहीं बने रहे।....

नये जीवन के साँचे में अपने-आपको ढालने में बड़ी मुश्किल पड़ी.... पीतर्सबुर्ग हम पतझर के समय पहुँचे। पर, जिस दिन हमने गाँव छोड़ा, उस दिन धूप सोना बरसा रही थी। हर तरफ़ मज़ा था....हर चीज़ खुशी से खिली-खिली पड़ती थी....खेतों का काम लगभग खत्म हो चुका था.... खलिहानों में अनाज की टालें लगी थीं और चिड़ियां चहचहाते हुये इधर-उधर उड़ती फिरती थीं....पर, पीतर्सबुर्ग में कुछ दूसरा ही मंजर

था कि हर ओर पानी, कीचड़, दलदल, नमी, सीलन···और, आसमान कि हर समय उदास, हर समय सँवराया-सँवराया-सा···लोगों का मेला···मगर, सबके सब कि अजनबी, किसी की बात न पूछने वाले और मन से टूटे-टूटे से !···इस पर भी काफ़ी शोर-शराबे और, खासी परेशानी के बाद हम बस गये। अब पापा अक़्सर बाहर रहते, और माँ घर के काम-काज में लगी रहतीं। मेरा जैसे किसी को ध्यान ही न आता।··· और, वहाँ की पहिली सुबह कितनी उदासी से भरी रही !···हमारी खिड़की के पार पीली बाड़ दीखती और नीचे का गली का कीचड़ तो सूखने का नाम ही न जानता। उधर से इने-गिने लोग ही निकलते; और, जो निकलते वे भी हवा को बचाने की कोशिश में गठरी से बने रहते।

हमारे-अपने घर में काफ़ी घुटन और मनहूसियत रहती। न कोई सगा-सम्बन्धी कभी आता और न कोई इष्ट-मित्र। अन्ना-फ़्योदोरोवना से पिता की बोल-चाल न होती···उनके ऊपर अन्ना का क़र्ज़ था···सो अक्सर ही घर आने वालों में होते सिर्फ़ पिता के रोज़गार के साथी···वे भी आते तो लड़ते-झगड़ते, बहस मुबाहिसे करते और चीखते-चिल्लाते, नतीजा यह होता कि उनके आने के बाद पिता खीझे रहते, बिना बात ही बरसते रहते और चार-चार घन्टे तक कमरे में चहलक़दमी करते हुये अपने ही विचारों में डूबे रहते। ऐसे में माँ उनसे कुछ कहने-सुनने में घबड़ातीं और मैं कोई किताब हाथ लेकर, चूहे की तरह एक कोने में दुबकी रहती।

लेकिन, तीन महीने के बाद मुझे एक बोर्डिङ्ग-स्कूल में भेज दिया गया। यहाँ अजनबियों के बीच मेरा एक-एक दिन एक-एक साल की तरह कटा। सभी जाने कब के दुश्मन समझ पड़ते। अध्यापक जैसे चिल्लाने के सिवाय और कुछ जानते ही नहीं। लड़कियाँ हर समय मेरा मज़ाक

बनातीं और, यह मुझे बहुत ही भद्दा लगता। हर तरफ़ सख़्ती और कड़ाई का राज दीखता कि हर चीज़ का समय तय...खाना हम सब साथ खाते...पढ़ाई में नाम को भी रस न मिलता इससे बड़ा मन टूटता और बड़ी तकलीफ़ होती। पहिले तो मुझे नींद ही न आती और मैं सारी सारी रात बिस्तर पर पड़ी रोती रहती।...और, रातें भी खत्म होने को ही न आतीं...शामों को पढ़ाई का काम लेकर बैठती और हिलने-डुलने में भी डर से कांपते हुये क्रियाओं और वाक्यों में सिर खपाती कि मेरा मन मां और पापा के पास घर दौड़ जाता...नानी और नानी की कहानियों का ख्याल आ जाता...कुल मिलाकर दुःख मुझसे सहा न जाता...। घर की छोटी से छोटी चीज़ों की भी कल्पना मन मोह लेती...मेरा जी करता कि जैसे भी हो, मैं वहीं पहुँच जाऊँ, अपने छोटे कमरे में जा बैठूं सेमोवार से भाप निकले और चारों ओर जाने-पहिचाने चेहरे हों! सोचती किसी तरह घर पहुँच जाऊँ तो कैसे मां को बाहों में भरूँ और उन्हें कितनी देर तक बाहों में भरे रहूँ।...यानी, मैं सोचती रहती कि सोचती ही रहती, और आंसू बहते कि बहते ही चले जाते ...आखिरबार पाठ पूरी तरह दिमाग़ से उतर जाते...फिर, अध्यापिका, मुख्याध्यापिका और दूसरी लड़कियों का ख्याल आता और मैं पढ़ाई-लिखाई में लापरवाही बरतने के लिए अपने को कोसती! लेकिन, उससे कोई अन्तर न पड़ता और अक़्ल कहीं से न आती...दूसरे दिन दर्जे में सज़ा मिलती, मुझे मुर्ग़ा बना दिया जाता... और, खाना इतना मिलता कि आधा पेट भी। शायद ही भरता। बस, तो मन हमेशा ही हारा-हारा-सा रहता। लड़कियां मुझे बहुत चिढ़ातीं...मैं अध्यापिका के किसी प्रश्न का उत्तर देती तो वे मुझे गड़बड़ा देतीं...खाने या चाय के लिये जाते समय चुटकियां काटतीं और बात-बेबात मुख्याध्यापिका से मेरी चुगली खातीं...लेकिन, शनिवार, नानी मुझे लेने को आतीं तो मेरी खुशी का ठिकाना न रहता...मैं उनके गले में लिपट जाती और

उन्हें चूमती चली जाती। वे मुझे अच्छी तरह ढक लेतीं और हम दोनों घर के लिये रवाना हो जातीं····पर, कहाँ मैं और कहाँ वे।····वे कदम से क़दम मिलाकर चल न पातीं दूसरी ओर मैं रास्ते भर बकबकाती चली जाती औरघर पहुँचने पर सबसे ऐसे गले मिलती, हर एक को इतना चूमती जैसे कि दस साल बाद घर लौटी हूँ।····और, फिर तो कैसा तूफ़ान बरपा होता, क्या-क्या बातें होतीं और कैसी-कैसी कहानियाँ कही सुनी जाती मैं हर एक के पास दौड़ जाती, हँसी के ठहाके लगाती हो, चिल्ला-चिल्लाकर आसमान सिर पर उठा लेती और इधर-उधर फुदकती फिरती! फिर पापा गम्भीरता से पढ़ाई लिखाई और अध्यापिकाओं की चर्चा चलाते फ्रैन्च भाषा और लोमन्दे के व्याकरण की बातें पूछते····परिवार के हर सदस्य को बड़ी खुशी होती····सच्चे सन्तोष का अनुभव होता··· आज भी उन दिनों की याद आती है तो होठों पर मुस्कान दौड़ जाती है····पिता के कारण ही मैं पढ़ाई लिखाई की तरफ पूरा ध्यान देती····उन्हें आखिरी कोपेक तक अपने ऊपर खर्च करने देखती··· सोचती है—ईश्वर ही जानता है कि यह कैसे काम चलाते है!····और, सचमुच ही उनके मन की उदासी और अन्दर का असन्तोष बराबर बढ़ता जाता····वे दिन-ब-दिन चिड़चिड़े होते जाते!····और, सचमुच ही हालत गड़बड़ा गई और गाड़ी खिंचना दुश्वार हो गया। वे क़र्ज़ के बोझ से दबसे गये। मिनट-मिनट पर बिगड़ने लगे। माँ हर समय सहमी सहमी रहने लगी। क्या रोना और क्या मुंह से कुछ कहना, दोनों ही मुश्किल हो गया। होते-होते वे बीमार रहने लगीं। काफ़ी झटक गई और बराबर घुटने लगीं। ऐसे में मैं जब भी स्कूल से घर आई, सभी के चेहरों से दर्द टपकता दीखा, पिता नाराज़ मिले और मां की आंखे छिपकर रोने के कारण लाल नज़र आईं! पिता मुझे भी उल्टी-सीधी सुनाने और कोसाकासी करने लगे।

अक्सर ही बमकते—तुमसे मुझे किसी तरह की कोई खुशी नहीं····

किसी तरह का कोई भरोसा नहीं····मैंने अपना कोपेक-कोपेक तुम्हारी पढ़ाई में फूंक दिया। मगर तुम्हें फ्रेंच बोलना तक नहीं आया !····दो शब्दों में यह कि सारी मुसीबतों और सारी बदकिस्मतियों के लिए जिम्मेदार ठहराया गया माँ को और मुझे, और, सचमुच पिता ने कैसे-कैसे सताया मेरी माँ को उन्हें देखने भर से मेरा कलेजा मुँह को आने लगा। उनके गाल बैठ गये, आंखें गढ़ों धँस में गई और चेहरा एक दम पीला पड़ गया। लेकिन, इस बीच सबसे अधिक मुझे सहना पड़ा। मामूली से मामूली बात से शुरुआत हुइ और फिर तिल का ताड़ हो गया। अक्सर ही झगड़े की जड़ ही मेरे दिमाग से उतर गई। जाने क्या-क्या तोहमतें मुझ पर जब-तब ही लगाई गई। कहा गया····तुम्हें फ्रेंच आती नहीं···· तुम्हारे दिमाग में गोबर भरा है, गोबर····तुम्हारी बड़ी मास्टरी बुद्धू है··· अपना फर्ज पूरा नहीं करती और तुम्हारे चरित्र की तरफ़ ध्यान नहीं देता कम से कम मुझे तो कभी नहीं लगा कि लोमोन्दे का व्याकरण जापोलकी के व्याकरण से कहीं गया बीता है··· इतनी-इतनी रक़म पानी की तरह बहाई गई है तुम पर, मगर तुम ऐसी लापरवाह हो कि तुम्हें कुछ लगता ही नहीं।····

यानी, यह कि क्रियाओं और वाक्यों की इतनी-इतनी घोटाई के बाद भी, हर दोष और अपराध मेरा ही रहा। इसके यह मानी नहीं कि पिता को मुझसे प्यार नहीं था। प्यार तो था और इतना था कि वे मेरे और मेरी माँ के पीछे दीवाने रहते थे····मगर, स्वभाव तो स्वभाव ही होता है, उसको कोई क्या करे।

उन्हें इतनी-इतनी ठोकरें खानी पड़ीं और इतनी तरह की चिन्तायें घेरे रहने लगी कि उनकी नाराजगी और खुशी का कोई ठिकाना ही न रह गया मन में संदेह घर कर गया, सो अलग से, फिर मायूसी ने इस सीमा तक घेरा कि वे अपने मामले में लापरवाह हो गये और सर्दी खा गये। यह

सर्दी, जाने कैसे, उनकी मौत बन गई। पर, उनका अंत इस तरह चट-पट हुआ कि कुछ दिनों तक हमारे होश ठिकाने न रहे और विश्वास कर भी हम विश्वास न कर पाये। इसके साथ ही माँ संज्ञाहीन रहने लगीं और मेरा-मन उनके कारण धुकधुक ही करता रहा।

दूसरी ओर पापा की आंखें मुदते ही हर ओर से महाजन उमड़े और हम पर एक साथ टूट पड़े। बचा-खुचा सभी कुछ दे देना पड़ा। पीतर्सबुर्ग-स्तोरोना में आने के छः महीने बाद पापा ने जो छोटा मकान वहां खरीदा था, वह भी बेच देना पड़ा। सारे मामले कैसे सुलझे, मुझे नहीं पता। हां, हम बे घरबार, बे सहारा और बे चारा जरूर हो गये।

मां का कंठ बढ़ गया और बीमारी जैसे उनकी जान को लग गई। जीने का कोई साधन बाक़ी न बचा और किसी की कोई आशा किसी तरह से न रही सो ऊपर से जहाँ तक मेरा सवाल है, उस समय मेरी उम्रथी सिर्फ चौदह साल।

ऐन इन्हीं दिनों अन्नाफ़्योदोरोवना पहिले-पहल हमारे यहां आई और बार-बार बोली....थोड़ी बहुत जमीन है....मां ने भी रिस्तेदार की बात पर मुहर मारी मगर रिश्ता दूर का बताया।....हां जब तक पापा जिये, तब तक तो उन्होंने कभी हमारी बात पूछी नहीं। लेकिन अब आई, काफी दुखीं और हम पर बड़ी दया दिखलाई। साथ की मां से बोलीं....बरबादी की पूरी जिम्मेदारी तुम्हारे पति पर है....उन्होंने अपनी चादर के बाहर पैर फैलाये, बहुत ऊँचे जाने के सपने देखे और आवश्यकता से अधिक आत्मविश्वास से काम लिया। फिलहाल जहां तक मेरा सवाल है मैं तो तुम सबको अपना ही समझती है....इसलिये बीती सो बीती उसे बिसारो और वे रोने लगीं तो मां ने उन्हें बार-बार विश्वास दिलाया और कहा कि मैं भी आपको अपना दुश्मन नहीं

समझती।""इसके बाद अन्ना फ़्योदोरावना माँ को गिरजाघर ले गई और वहां पिता की आत्मा की शन्ति के लिये प्रार्थना करवाई' इस प्रकार हमारे बीच समझौता हो गया।

फिर उन्होंने हमारी ग़रीबी, अकेलेपन और बेचारगी पर तरह-तरह से जोर दिया और कहा—'छोटा बड़ा जैसा भी घर है, है""चलो और चलकर वहीं रहो""आखिर यहाँ कामकाज भी कैसे चलेगा? कोई वसीला भी तो नहीं है!' माँने कृपा के लिये उन्हें धन्यवाद दिया, पर काफ़ी समय तक कोई निश्चय न किया। पर, कोई और रास्ता सामने न देखकर उन्होंने आखिरकार अन्ना फ़्योदोरोवना की बात मान ली। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस दिन सुबह हम कैसे पीतर्सबुर्ग—स्रारोना से सिलयेत्सकी गये।""

—पतझर के दिनों की झलाझल सुवह थी। माँ रोती रही थीं और मेरा दिल भी बहुत भारी हो गया था। तरह २ के ख्याल मन में डर भरते है थे। ""मुसीबत का ज़माना था""

२

अन्ना फ़्योदोरावना के साथ की शुरु की जिन्दगी अजीव और तरह तरह की आशंकाओं से भरी रही। लेकिन, फिर धीरे धीरे वहाँ की परिस्थितियां मे जीने का अभ्यास हो गया।

घर में पांच रिहायशी-कमरे थे। इनमें दो तीन कमरे अन्ना फ़्योदोरोवना और मेरी फूफेरी बहिन साशा-फयोवोरना ने घेर ले रक्खे थे। चौथे कमरे में मेरे साथ मेरी माँ रहती थीं पाँचवा पोक्रोव्सकी नाम के एक विद्यार्थी ने किराये पर ले रक्खा था। अन्ना फ़्योदोरोवना उतनी लगतीं नहीं थीं, जितनी सचमुच थीं। लेकिन हर हरकत की तरह उनकी आमदनी का ज़रिया भी एक राज़ ही था। वे हमेशा व्यस्त और

खोई खोई सी रहतीं और दिन में कई-कई बार इधर-उधर चली जातीं। उनकी इस व्यस्तता का कारण मेरी कल्पना से कहीं बड़ा निकला।.... यों भी उनके अनगिनत जान-पहिचानी आते-जाते रहते। वे कौन थे, क्या थे, ईश्वर ही जाने। हां, वे हमेशा आते काम से और आने पर मिनट-दो मिनट ही टिकते। लेकिन, दरवाज़े की घन्टी बजते ही मां मुझे कमरे में बुला लेतीं और इस पर अन्ना-फ़्योदोरोवना का पारा एक दम चढ़ जाता। वे मां पर बरसने लगती—'बड़ा घमन्ड है तुम्हें....कुछ ताक़त होती तो यह भी चल जाता... मगर ऐसे इस तरह ऐंठना ठीक नहीं।.. और फिर यह सिलसिला घन्टों चलता।

उस समय उनकी इस डाँट-फटकार का अर्थ मेरी समझ में न आता। अन्ना के यहाँ जाकर रहने में माँ जो हिचकिचाईं, उसका अर्थ भी आज ही मेरी पकड़ में आ सका है।....

अन्ना-फ़्योदोरोवना बहुत झिड़चिड़ातीं और हमें बराबर सताती रहतीं। पर, वे हमें अपने यहाँ बुलाकर क्यों लाईं, इसका रहस्य आज भी मेरे लिये रहस्य ही है! यही नहीं, पहिले तो तो उन्होंने बड़ा स्नेह दिखलाया। उनका सही रूप तो बाद में मिला, तब देखने मिला जब कहीं सींग सामाने को ठौर न रही, और हम हर तरह मजबूर हो गये.... बाद में फिर वे मुझे ममता देने लगी और मेरी तारीफ़ों के पुल बाँध-बाँध कर मुझसे अपनायत बढ़ाने लगीं। मगर, पहिले तो माँ की तरह ही मुझे भी सब कुछ सहना पड़ा, और बहुत सहना पड़ा। उस ज़माने में तो उनको पास बात करने को जैसे और कुछ रहा ही नहीं....बस, हर समय अपनी उदारता का बखान, और अपने एहसान से हमें दबा देने की लगातार कोशिश!....जिससे भी परिचय कराया, एक ही बात कही—दोनों रिश्तेदार हैं....बेचारी बहुत ही दुखिया औरतें हैं ...ईसाई हूँ, इन पर रहम आ गया, इसीलिये मैंने इन्हें बुलाकर अपने पास रख लिया।....

इतना ही नहीं, हम जब भी खाना खाने बैठे, उन्होंने हमारे एक-एक गस्से पर आँखों से आग बरसाई, लेकिन, अगर हमने कभी कम खाया तो उलट गईं 'बड़ी ऊँची तबीयत है तुम लोगों की····हमारी मेज़ का खाना तुम्हारे खाने के लायक़ कहाँ ! अरे, कभी आँख से भी देखी थी इससे अच्छी चीजें ?····'

और, पापा पर तो वे जब-तब ही लानतें बरसाती रहीं-दूसरों से बढ़-चढ़कर जीने की कोशिश हमेशा की····नतीजा यह हुआ कि ख़ुद टके के तीन होकर रह गये, और घरवालों को दर-दर का भिखारी बनाकर छोड़ दिया। अरे, अगर मेरी जैसी प्रभु यीशु की दयालु भक्त से तुम्हारी रिश्तेदारी न होती तो तुम भूखो मर जातीं। गली-गली में मुँह मारती फिरतीं !····उफ़ उन्होने क्या-क्या नहीं कहा ! उनकी बातें सुनने पर जितनी पीड़ा हुई, उससे अधिक मन में विद्रोह जगा।

माँ को अकसर ही आँसू बहाने पड़े और उनकी तन्दुरुस्ती दिन-ब-दिन बिगड़ती गई। इस पर भी हम माँ-बेटी सुबह से शाम तक काम करती, और दूसरों के कपड़े सीती रहीं। लेकिन, यह भी अन्ना-फ़्योदोरोवना को आंखों में खटकने लगा। वे अकसर ही बिगड़ने लगीं-मेरा घर कोई फ़ैशन की दूकान नहीं है। लेकिन कपड़े-लत्तों और दूसरी जरूरत की चीज़ों के लिये सिलाई का काम हमें चलाना ही पड़ा। दो-चार रूबल घर में होने ही चाहिये थे। दूसरे हमारा ख़्याल थाकि थोड़ा-बहुत जमा हो जाये तो हम मकान बदल दें। लेकिन इस काम और मशक़्क़त ने मां की रही सही साँसों की गिनती भी घटा दी। उनका शरीर दिन-ब-दिन कमज़ोर होता गया। बीमारी उन्हें चूसती गई। हम चुपचाप देखते और मन ही मन कुछ सहते गये।

वैसे हम बहुत शांत रहते, जैसे कि शहर में न रहकर कहीं गाँव में रह रहे हों, दूसरी ओर, अन्ना-फ़्योदोरोवना ने अपना रोब हम पर पूरी तरह ग़ालिब देखा तो धीरे-धीरे उनका बोलना भी कम हो गया। लेकिन,

अब भी उनकी किसी बात का विरोध करने की हिम्मत कोई नहीं ही जुटा पाया !···उनके कमरों और हमारे कमरे के बीच स्थित आँगन हमारे दाहिने आने लगा।····

बग़ल के कमरे में रहने वाला पोक़ोव्सक्की मकान के किराये और खाने के खर्च की एवज में साशा को फ्रेंच, जर्मन, इतिहास, भूगोल और दूसरे विषय पढ़ाने लगा।····

साशा उस समय तेरह साल की थी। बड़ी हाज़िरजवाब, मगर थोड़ी छैलचिकनिया।····

सो, एक दिन अन्ना-फ़्योदोरोवना मेरी माँ से बोली—लड़की की पढ़ाई गड़बड़ा गई है···स्कूल जा नहीं सकी है····क्यों न साशा के साथ यह भी पढ़ लिया करे ! कोई नुकशान नहीं है !' इस पर मेरी माँ को बड़ी खुशी हुई और वे राजी हो गई। बस, तो मैं भी साशा के साथ पढ़ने को बैठने लगी और एक साल पोकरोवस्की ने हम दोनों को पढ़ाया !····

पोक्रोवस्की ग़रीब और बहुत ही कम उम्र था। स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण पढ़ाई-लिखाई नियमित-रूप से चल न सकी थी। यानी बेचारा विद्यार्थी कुछ यों ही कहा जाता था। रहता इस तरह चुपचाप था कि कमरे से आवाज़ तक न आती थी। आदमी देखने-सुनने में इतना अजीब था चलता इतने अच्छे ढंग से था, झुकता इतने गंदे तरीके से था, और बोलता इतने अटपटे तरीके से था कि शुरू-शुरू में तो उसे देखकर मै हँसी रोक ही न पाती थी। साशा उसके साथ एक-न-एक शरारत करती रहती थी, और पढ़ने के समय तो और भी ज्यादा रंग लाती थी। बुरी बात यह थी पोक्रोवस्की काफ़ी तुनुकमिजाज था और देखते-देखते चिढ़ उठता था। नतीजा यह कि चीखता-चिल्लाता, शिकायतें करना और अकसर ही पढ़ाई खत्म होने के पहिले ही कमरे से भाग खड़ा होता। इसके बाद कई-कई दिन दिन अकेले बैठा किताबों में डूबा रहता।····

किताबें उसके पास काफ़ी नज़र आतीं। सभी अनूठी और क़ीमती मालूम होतीं। वह हमारे यहां की तरह ही और कई जगह भी पढ़ाता और तनख्वाह पाते ही नई-नई किताबें खरीद लाता मां उसका सदा ही बड़ा आदर करतीं फिर, मैंने भी जो ज़रा नज़दीक से देखा तो आदमी रहम दिल और नेक लगा। आज लगता है कि उससे अच्छा आदमी मैंने अब तक देखा ही नहीं।……कहना न होगा कि बाद में मां नहीं रहीं, तो वह मेरा सबसे बड़ा हितू साबित हुआ।

पर, उम्र में साशा से बढ़ा होने पर भी पहिले-पहिले मैं भी शरारतों में उसका साथ देती रही। इन दिनों पोक्रोवस्की को चिढ़ाने और तंग करने के नये से नये तरीक़े घन्टों सोचतीं। बिगड़ने पर वह बहुत ही भद्दा लगता और हमें बड़ा मज़ा आता।……आज यह सब सोचती हूं तो शर्म से सिर झुक जाता है।……

एक बार तो हम दोनों ने उसे इतना सताया कि वह रो दिया और भुनभुनाने लगा—'कैसी बेरहम बच्चियां हैं यह दोनों!' और जाने क्या हुआ कि इसके बाद ही मैं एकदम बदल गई, मुझे अपने ऊपर शर्म आईऔर बहुत ही दुख हुआ। मेरा चेहरा लाल हो उठा, आंखें छलछला आईं और मैंने उससे बहुत ही विनय से कहा कृपया नाराज़ न हों और हमारी शरारतों के लिये हमें माफ़ कर दें। लेकिन उसने एक न सुनी, किताब बंद कर दी और पाठ खत्म किये बिना ही उठकर बाहर चला गया। फिर तो सारे दिन मुझे पछतावा रहा कि हम बच्चियां ने उसे भला इस तरह रुला क्यों डाला! लेकिन क्या हम यही नहीं चाहते थे कि आखिरकार वह रो देगा? यानी हम दोनों ने मिलकर उस दुखिया की बदक़िस्मती को उसके सामने रह-रहकर उभारा……उसकी बेचारगी से फ़ायदा उठाया। इसके बाद मैं सारी रात सो न सकी। मुझे अपने ऊपर रह-रहकर गुस्सा आता रहा, जाने किस किस तरह मन कचोटता रहा और पश्चाताप होता।……कहते हैं कि

पश्चाताप से मन हल्का हो जाता है···लेकिन कितनी ग़लत है यह बात !···वैसे मेरे पछतावे में एक तरह का दर्प भी मिला रहा—मैं पन्द्रह साल की हो गई हूँ···आख़िर यह मास्टर मुझे अब तक बच्ची क्यों समझता है !

इस पर भी उस दिन के बाद से अपने संबंध में उसके विचार बदलने की कोशिश मैं हज़ार तरह से करने लगी। पर, हर कल्पना धुंधली ही रही। कोई सपना साफ़ होकर सामने न आया। फिर भी मैं जो कुछ कर सकती थी, मैंने किया, और शरारतों में साशा का साथ देना बन्द कर दिया। इससे मास्टर मुझसे खुश रहने लगा। लेकिन, मेरे आत्मसम्मान को इतने से ही सन्तोष न न हुआ।····

····अच्छा, अब यहां थोड़ी सी चर्चा एक खास आदमी की कर दूँ। उससे दिलचस्प और जमाने वाला आदमी मैंने दूसरा नहीं देखा। पहिले तो मैंने उसकी तरफ़ ज़रा भी ध्यान नहीं दिया, लेकिन फिर कुछ ऐसा हुआ कि में उसकी ओर खिंचने लगी।····

अकसर ही एक नाटे क़द का बूढ़ा आदमी हमारे यहाँ आता था। बदन पर कपड़े बहुत भद्दे होते, बाल सफ़ेद दीखते, और खुद खासा हौलू समझ पड़ता। हर तरह अजीबो-ग़रीब लगता। हमेशा अपने-आप से शरमाता:शरमाता-सा रहता। बस, तो वह हर एक से कटता और ऐसे ऊटपटांग काम कर बैठता कि उसके दिमाग का कोई न कोई पेंच ढीला महसूस होता।

आता तो शीशे के दरवाजे के पास ही बाहर खड़ा रहता। अन्दर घुसने में सहमता। इस बीच मैं या साशा या कोई और उधर से निकलता तो तरह-तरह के संकेत करता। जवाब में कहा जाता—'आ जाइये···· अन्दर आ जाइये····घर में कोई बाहरी आदमी नहीं है।' इस पर वह झटके से दरवाजा खोलता और ख़ुशी से खिलते हुये दबे पावों पोक·

व्स्की के कमरे की ओर बढ़ जाता।……यह व्यक्ति था पोक्रोव्स्की का पिता।

उसकी पूरी कहानी मैंने बाद में सुनी—आदमी कहीं क्लर्क था और कोई खास योग्यता न दिखला सकने के कारण मामूली जगह पर रह गया था।……उसकी पहिली पत्नी यानी पोक्रोव्स्की की मां मरी तो उसने दुबारा शादी कर ली। लेकिन नई बीवी के साथ कोई मीज़ान ही कहीं से न बैठा। वह किसी को भी न बख्शती और हर एक को दबाकर रखती। दस साल के पोक्रोव्स्की को लेकर बुरी तरह तूफ़ान खड़ा कर देती।…… मगर, इसको क्या कहिये कि क़िस्मत पोक्रोव्स्की के साथ रही कि पिता पर सदैव ही कृपालु रहनेवाले बाइकोव नाम के एक ज़मींदार ने बेटे पर भी कृपादृष्टि की और उसे पढ़ने-लिखने को स्कूल भेज दिया। उसकी इस दिलचस्पी का कारण रही पोक्रोव्स्की दिवगंत मां, और अन्ना फ़्यादोरोवना की सखी। इसी नाते तो बड़े पोक्रोव्स्की की शादी होने पर, अन्ना की घनिष्टता के कारण, बाइकोव ने ५०० रूबल दहेज़ के मद में दिये। पर, कोई नहीं जानता कि इस रक़म का क्या हुआ।…जितना कुछ भी मालूम हुआ, वह मुझे अन्ना फ़्योदोरोवना से मालूम हुआ। बेटे ने यानी मास्टर पोक्रोव्स्की ने तो घरबार की बात कभी चलाई ही नहीं।

कहते हैं कि बड़े पोक्रोव्स्की की पत्नी और छोटे पोक्रोव्स्की की मां देखने-सुनने में बहुत सुन्दर थी।……इसीलिये मास्टर के पिता उसके विवाह की बात सोचकर मुझे हमेशा ही बहुत अजीब-अजीब लगा है। भला क्या जोड़ रहा होगा! …जो भी हो, बेचारी शादी के चार साल बाद ही, भरी जवानी में, मर गई।

छोटे पोक्रोव्स्की ने स्कूल की पढ़ाई खत्म कर युनिवर्सिटी में नाम लिखाया और बाइकोव का संरक्षण अब भी उसे प्राप्त रहा। बाइकोव जब-तब ही पीतर्सबुर्ग आता।……लेकिन, बाद में पोक्रोव्स्की की तन्दुरुस्ती

खराब रहने लगी और पढ़ाई छूट गई, तो वाईकोव ने अपनी सिफ़ारिश के साथ उसे अन्ना फ़्योदोरोवना के पास भेज दिया। यहां अन्ना ने उसके खाने-रहने की पूरी व्यवस्था कर दी, और वह बदले में साशा को पढ़ाने लगा। इस बीच अपनी दूसरी पत्नी से तङ्ग आकर बड़ा पोक्रोव्स्की दुनियां के तमाम कुटेवों में पड़ गया और बराबर ही नशे में धुत रहने लगा। पत्नी जब-तब ही मारने और बावर्चीखाने में बद रखने लगी। धीरे-धीरे डांट-फटकार और मुक्का-लातों ने उसे अन्दर से इस तरह तोड़ा कि उसने शिकायत करना तक बंद कर दिया। फिर तो हालत यहां तक बिगड़ी कि दिमाग़ ही काम न करना-सा लगा, और अभी बूढ़ा न होने पर भी वह जैसे बूढ़ा हो गया। ऐसी स्थिति में आदमी को क्या शोभा देता है और क्या नहीं, इसका थोड़ा ख्याल बाक़ी बचा रहा। इसका भी कारण शायद रहा पत्नी के चेहरे का हूबहू प्रतिरूप बेटे का चेहरा। इस चेहरे ने इस बरबाद बूढ़े मन में सदा ही स्नेहमयी पत्नी की याद जगाई और ममता की लौ उकसाई।

वह अपने बेटे के सिवाय न किसी की बात सोचना, न किसी और की चर्चा करता।··· ···बूढ़ा ज्यादा हिम्मत न कर पाता और हफ़्ते में सिर्फ़ दो दिन ही बेटे को देखने आता। पर, बेटे को उसका इतना आना भी खलता।····बेटे में जहाँ हज़ारों कमियां नजर आतीं, वहाँ सबसे बड़ी कमी यह लगती कि उसके मन में पिता के लिये आदर की जगह सदा अनादर का ही भाव रहता।

दूसरी ओर, पिता भी कभी-कभी दुनिया का सबसे अजीबोग़रीब आदमी समझ पड़ता। इसके कारण तीन होते—पहिले तो वह हर चीज़ के बारे में हर बात जानना चाहता; दूसरे, उसकी बातें और सवाल बहुत ही घटिया और बेमतलब होते, और इनसे बेटे की पढ़ाई-लिखाई में बड़ी रुकावट पड़ती; तीसरे, वह अक्सर ही बड़ी बहकी-बहकी बातें करता। बेटा उसे हर सम्भव ढङ्ग से रास्ते पर लाने की कोशिश करता। नतीजा

 ···

यह निकलता कि पिता उसे अपना खुदा मानता और उससे खास तरह से इजाज़त लिये बिना उसके सामने मुँह खोलने की हिम्मत न करता।

बूढ़ा अपने पेतेन्का* की तारीफ़ें करते न थकता। वह जब भी उससे मिलने आता सदा हिचकिचाहट से निगाहें नीची रखता और दुविधा में ही रहता कि पता नहीं उसे मेरा आना अच्छा भी लगेगा या नहीं! यानी दरवाज़े पर पहुँचने पर अगर वह मुझे देख लेता तो पूरे बीस मिनट तक सवाल पर सवाल करता रहता… पूछता—'पेतेन्का का स्वास्थ्य कैसा है? इन दिनों उसका मन कैसा रहता है? किसी ज़रूरी काम में व्यस्त तो नहीं है? अगर है, तो किस काम में व्यस्त है? कुछ लिख-पढ़ रहा है या सिर्फ़ बीमारी से घिरा रहता है?'… उत्तर में जब मैं हर तरह उसका मन बढ़ाती, तब कहीं वह निश्चय करता, जल्दी-जल्दी दरवाज़ा खोलता और पहिले झांककर देखता। फिर, जब उसे विश्वास हो जाता कि बेटा नाराज़ नहीं है, तब कहीं पंजों के बल धीरे से कमरे में घुसता और अपना कोट और टोप उतारता। टोप हमेशा मुड़ा-मुड़ाया रहता, जगह-जगह छेद नज़र आते और छज्जा टूटा दीखता…।

वह धीरे से चीज़ें खूँटी पर टांग देता, बहुत ही आहिस्ते से कुर्सी पर बैठता और दृष्टि बेटे पर ही गड़ाये रहता, जैसा कि पेतेन्का का मन ठीक तरह समझ लेना चाहता है।…हां, अगर पेतेन्का कुछ खीझा या नाराज़ मिलता तो वह फ़ौरन ही खड़ा हो जाता और बुदबुदाते हुये कहता—'कुछ नहीं… कुछ नहीं…मैं इधर से गुज़र रहा था…ज़रा सुस्ताने के ख्याल से यहां आ गया था…।' इसके बाद वह अपना कोट और टोप उठता और उसी तरह दबे पांवों दरवाज़ा खोलकर मुस्कराते हुये बाहर निकल जाता—यह मुस्कराहट जैसे उसकी मायूसी पर पर्दा डाल देती।

---

*पोक्रोव्स्की का प्यार का नाम।

इसके उल्टे बूढ़ा पेतेन्का को खुश पाता तो खुद भी खुशी से पागल हो उठता। चेहरे की हर रेखा और हर मुद्रा से सन्तोष टपकता।··· अगर पेतेन्का उदारता का परिचय देते हुये उससे बोल देता तो वह उसकी हर बात का जवाब कुर्सी से उठकर ऐसी आजिज़ी से देता और मन में इस तरह डरता रहता कि शब्द मज़ाक़ बनकर रह जाते।···बेचारा कोई वक्ता तो था नहीं ···घबड़ाया-घबड़ाया सा ऊपर से रहता····सो, समझ ही न पाता कि अपने आपका क्या करे और क्या न करे, अपने हाथों का क्या करे और क्या न करे····हमेशा होठों ही होठों कुछ बुदबुदाता रहता, जैसे कि बराबर फ़िक्र में रहता हो कि जो बात मुँह से निकले, ठीक ही निकले, और अगर सचमुच ही ठीक बात मुँह से निकल जाती कंधे फुला लेता, अपनी वास्कट और और टाई ठीक करता, शान से ऐंठ उठता और हिम्मत कर किताब की आलमारी से कोई भी इधर-उधर की किताब निकालकर उसका नाम पढ़ने लगता,···ऐसे दुर्लभ अवसरों पर वह ऐसा शान्त और सधा हुआ लगता, जैसे कि बेटे की किताबों को उठाने-धरने का उसे पूरा अभ्यास हो, जैसे कि पेतेन्का का यह रुख़ उसके लिये स्वाभाविक और सहज हो।

लेकिन, मुझे ख्याल है, एक बार पेतेन्का ने किताबों से छेड़छाड़ न करने का हुक्म उसे इस तरह दिया कि बेचारा बुरी तरह डर गया। शर्म से चेहरा लाल हो गया। बूढ़ा इस तरह गड़बड़ा गया कि किताब उल्टी रख दी। फिर ग़लती समझ में आई तो किताब टेढ़ी-मेढ़ी हो गई। मगर, इस बीच वह बराबर ऐसे मुस्कराता रहा, जैसे कि भूल बिल्कुल अनजाने हो गई हो और यों भी इसका कोई बड़ा महत्त्व न हो····।

पोक्रोव्स्की को अपने पिता के यह तौर-तरीक़े खलते और वह उन्हें ठीक करना चाहता। यानी, अगर बूढ़ा लगातार तीन बार क़ायदे का व्यवहार करता तो वह उसे पच्चीस, पचास या इससे भी ज्यादा कोपेक इनाम देता। यही नहीं, कभी-कभी खुश होकर वह उसे जूते;

टाई या वास्टक तक नज़र कर देता। ऐसे में पिता अभिमान से तन जाता और मोर की तरह फुदकता फिरता····।

कभी-कभी वह हमसे भी मिलता, मुझे और साशा को अदरक वाली रोटी और सेब देता, और पेतेन्का के बारे में जाने क्या-क्या बातें करता कहता—'तुम दोनों को बहुत ही मन लगाकर पढ़ना चाहिये····यक़ीन मानो, पेतेन्का दूसरों के लिए एक मिसाल है····और, इससे भी बड़ी बात यह है कि आदमी विद्वान है।' और इस वाक्य के साथ ही वह ऐसे मज़ाकिया ढंग से आँख मारता, और इस तरह चेहरा बनाता कि हँसते-हँसते हमारे पेटों में दर्द होने लगता।····हम लोगों के अलावा माँ भी उसे बहुत स्नेह करतीं। लेकिन बूढ़ा अन्ना फ़्योदोरोवना से नफ़रत करता, गोकि उनके सामने हर तरह भीगी बिल्ली बना रहता।····

होते-होते पोक्रोव्स्की से न पढ़ने का मैंने इरादा सा कर लिया। यह तो लिख ही चुकी हूँ कि वह मुझे दूसरी साशा समझता और उसी तरह की कच्ची लड़की मानता। इससे मुझे गहरी चोट पहुँचती और उस पर और गुस्सा आता क्योंकि मैं अपनी पिछली कमियों को पूरा करने की जो कोशिशें करती, उनकी ओर से जैसे वह जान बूझकर आँखें मूंदे रहता। नतीजा यह कि पढ़ाई के समय के बाद मैं उससे कभी बात न करती। मौक़ा पड़ जाता तो भी कतरा जाती। मेरे मुंह में जीभ जैसे जकड़ी रहती····किसी कोने-अंतरे में जाकर आँसू ज़रूर बहा लेती····सच तो यह है कि अगर एक विशेष घटना न घट जाती, तो मैं कह नहीं सकती कि इस सबका अन्जाम क्या होता? घटना कुछ यों है—एक दिन शाम को माँ अन्ना फ़्योदोरोवना के कमरे में थीं और पोक्रोव्स्की कहीं बाहर गया हुआ था कि पता नहीं क्यों मैंने वह कर डाला, जो एक साल से अधिक समय से उसके पड़ोस में रहने पर भी कभी न किया था। यानी, मैं उसके कमरे में घुस गई और उत्सुकता और घबड़ाहट से चारों ओर निगाहें दौड़ाने लगी।

कमरा गंदा था और वहां मेज-कुर्सियां भी कुछ यों ही सी थीं, मगर दीवार के किनारे किनारे किताबों की क़तारें लगी थी। हर जगह किताबों और काग़ज़ों का ढेर था।—बस, तो एक अजीबोग़रीब ख्याल दिमाग़ में आया—वह मेरे स्नेह और मेरी भावना की क़द्र भला क्यों करेगा ? वह विद्वान है और मैं बुद्धु हूँ ··· मैं कुछ नहीं जानती-समझती और एक किताब भी उठाकर कभी नहीं पढ़ती।

मैं कुछ क्षणों तक किताबों से भरी उन आलमारियों को देखती रही। फिर चोट खाकर, खीझकर और तेहे से लगभग लाल होकर मैंने सारी किताबों को जल्दी से जल्दी एक साथ पढ़ डालने का फैसला किया। शायद मुझे लगा कि जितना उसने पढ़ा है उतना पढ़; लूगी तो वह मुझे स्नेह की दृष्टि से देखने लगेगा।

तो, मैंने लपक कर तेज़ी से एक किताब आलमारी से निकाली और भय और उत्साह से कांपते हुये उसे लेकर भाग खड़ी हुई सोचा कि मां सो जायेंगी तो लैम्प की रोशनी में इसे चाट जाऊँगी। ···लेकिन, कमरे में जाकर उसे खोला तो निराशा से सन्न रह गई—वह लैटिन का कोई पुराना ग्रंथ था, और जहां-तहां से कीड़ों का भोजन बन चुका था।

इस पर, मैं उल्टे पावों लौटी और ग्रंथ को आलमारी में जहां का तहां रखने लगी। पर इसी समय बरामदे में किसी के पैरों की आहट हुई। मेरे हाथ-पैर फूल गये। दूसरी ओर देखा कि आलमारी में किताबें इस तरह ठूस-ठूस कर रक्खी गई हैं कि इस किताब के निकालने पर जो जगह हुई है, वह भी उसकी सखियों ने घेर ली है, और अब कहीं साँस नहीं है।···मतलब यह कि किताब आलमारी में रक्खी न जा सकी। फिर भी मैं ठूंसमठाँस करने लगी।····मगर, जिस जंग लगी कील पर आलमारी सटी हुई थी, वह जैसे इसी क्षण के इन्तज़ार में थी।····सहसा ही सारी की सारी किताबें भरभरा कर ज़मीन पर गिर पड़ीं। उधर ठीक इसी समय दरवाजा खुला और पोक्रोव्स्की कमरे में दाखिल हुआ।

यहां यह कह देना जरूरी है कि पोक्रोव्स्की को किसी का किताबों से छेड़छाड़ करना निहायत नापसंद था। अगर कोई भूले भटके उन्हें हाथ लगा देता तो उसकी रक्षा फिर भगवान ही करता तो करता।''' अब जरा मेरी हालत सोचो कि मुझसे ऐसा हुआ कि मोटी पतली, छोटी-बड़ी सभी तरह की किताबें जमीन पर आ रहीं और मेज कुर्सियों के नीचे तो लुढ़कीं ही, कमरे भर में फैल भी गईं।'''' साथ ही देर इतनी हो गई कि वहां से भाग निकलने तक का मौक़ा न रह गया। मैंने सोचा, हो गया''''कबाड़ा हो गया''''मैं तो गई''''सारा किया धरा बराबर।''''मैं भी कैसी गधी हूं।''''

दूसरी ओर पोक्रोव्स्की ने यह रेढ़ देखी तो आपे से बाहर हो गया—'अब आगे आगे क्या करने का इरादा है? इस उजड्डपन पर तुम्हे शर्म नहीं आती? तुम हमेशा बच्ची ही बनी रहोगी''' कभी बड़ी भी होगी या नहीं?' और वह झुककर किताबें उठाने लगा, तो मैं भी सहायता को बढ़ी। इस पर वह और भी ज़्यादा चिढ़ते हुये बोला—'आप परेशान न हों! अच्छा होता कि आप पहिले ही इन किताबों से दूर रहतीं''''इन्होंने कोई दावतनामा तो भेजा नहीं था आपके नाम!''''परन्तु इस बीच उसने मेरी हालत देखी-समझी तो मुलायम पड़ गया और फटकार रोज़ के शिक्षक की डांट बनकर रह गई। बोला—आखिर कब होश आयेगा तुम्हे? ज़रा सोचकर तो देखो तुम अब कोई छोटी सी बच्ची नहीं लगी हो''' पन्द्रह साल की हो रही हो!'''और जैसे कि अपनी बात पर मुहर मारने के लिये उसने मुझ पर सिर से पैर तक भरपूर नजर डाली। सहसा ही उसके चेहरे पर लाली दौड़ गई। मेरी समझ में कुछ न आया और मैं उसे एक टक देखती रह गई।

फिर वह खड़ा हुआ और परेशानी के कारण कुछ होठों ही होठों बुदबुदाने लगा। शायद उसने किसी चीज के लिये माफ़ी भी मांगी—शायद उसे लगा कि नहीं, अब यह बड़ी हो गई है।'''आखिरकार बात

मेरी भी समझ में आ गई…और मैं जानती नहीं कि उस समय मैंने क्या किया। सिर्फ इतना ही कह सकती हूँ कि मेरे गालों पर और भी गहरे गुलाब खिल गये, मैं बुरी तरह बौखला गई और चेहरा हाथों से ढँककर कमरे से भाग खड़ी हुई।

मगर मुझे ऐसी लज्जा का अनुभव हुआ कि समझ में न आया कि अपना क्या कर डालूँ! यानी, मैं उसके कमरे में पाई गई और रँगे हाथों पकड़ा भी उसी ने! फिर तो पूरे तीन दिन तक मैं उससे नज़र नहीं मिला सकी…रह-रहकर आंखें छलछलाती रहीं…तरह-तरह के ख़याल दिमाग़ में आते रहे…सबसे अजीब ख़याल यह आया कि क्यों न उसके पास चलूँ और सारी बात साफ़-साफ बतला दूँ? समझा दूँ कि मैं ऐसी बुद्धू लड़की नहीं…किताबें गिर गईं—वैसे उन्हें गिराने की मेरी कोई नीयत नहीं थी!…आखिरकार इरादा पक्का हो गया। मगर, ईश्वर का लाख-लाख शुक्र कि हिम्मत जवाब दे गई। कहीं सचमुच ही चली गई होती तो ऐसी बेवकूफ़ बनती कि बस।…आज भी वे क्षण याद आते हैं तो लाज से गड़गड़ जाती हूँ…।

इसके बाद थोड़े ही दिन बीते कि मां की तबीयत बहुत ख़राब हो गई। इस प्रकार उन्होंने चारपाई पकड़ ली। तीसरे दिन बुख़ार बहुत तेज़ हो गया और वे सन्निपात की हालत में अर्र-बर्र बकने लगीं। ऐसे में मैं एक क्षण को भी उनके पास से नहीं हटी और उन्हें पानी और दवायें वगैरः देती रही। लेकिन, दूसरी रात आते-आते मैं बिल्कुल थक गई और पलकें खोले रहना मेरे लिये कठिन हो गया। अक़सर नज़र धुंधला-धुंधला गई और हर चीज़ नाचती-सी लगी। यदि मां की कराहें रह-रह कानों में न पड़तीं तो आंख लगे बिना न रहती। मैं बीच-बीच में चौंक-चौंक उठी, मगर फिर नींद ने मुझे घेर-घेर लिया। ऐसी तकलीफ़ होने लगी कि बस!

आज ठीक याद तो नहीं; पर उस औंघानींदी की हालत में ही मैंने एक

भयानक सपना देखा। और उस सपने का मेरे दिमाग़ पर इतना बोझ पड़ा कि चौंक उठी और नींद दूर भाग गई।

इस बीच कमरे में अँधेरा रहा। सिर्फ़ एक मोमबत्ती कोने में टिमटिमाती और दीवार पर हल्के-हल्के प्रकाश-चित्र बुनती रही। मैं एक विचित्र से भय से सिर से पैर तक कांप उठी, मेरी कल्पना को उस बुरे सपने ने जकड़ लिया और मेरा दिल बैठने लगा। यातना और असह्य पीड़ा से कुर्सी से उछल पड़ी। इसी समय पोक्रोव्स्की दरवाज़ा खोलकर अन्दर आया।""ख़याल आता है कि मुझे होश आया तो मैंने अपने को उसकी बाहों में पाया। फिर उसने मुझे आहिस्ते से कुर्सी में बैठाल दिया, गिलास में पानी पीने को दिया और न जाने कितने सवाल कर डाले। उत्तर में मैंने कुछ कहा, पर क्या कहा, यह याद नहीं।

उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लेते हुये कहा—'तुम्हारी तबीयत ख़राब हो गई है" काफ़ी ख़राब हो गई है""तुम्हें हरारत है"" तुम अपनी तन्दुरुस्ती बरबाद कर रही हो""तुम्हें आराम की ज़रूरत है""लेट जाओ और थोड़ी देर सो लो""दो घंटे बाद मैं तुम्हें जगा दूँगा""लेट रहो"" कृपा कर लेट रहो।'

यानी, वह अपनी ओर से ज़िद करता रहा। मुझे मुँह खोलने का मौक़ा ही नहीं मिला। मेरी पलकें मन-मन की हो उठीं और थकान से मेरा दम निकलने लगा। क्या करती, थोड़ा आराम कर लेने के विचार से कुर्सी में गुड़ी-मुड़ी हुई तो सुबह तक सोती ही रह गई। सुबह भी जब मां को देने की ज़रूरत पड़ी तो पोक्रोव्स्की ने मुझे जगाया।

अगले दिन रात को मैं मां के सिरहाने बैठी रही और दिल कसे रही कि जैसे भी हो, आज सोऊँगी नहीं। इसी बीच ठीक ग्यारह बजे पोक्रोव्स्की ने दरवाज़ा खटखटया। मैंने उठकर दरवाज़ा खोला कि वह बोला, 'तुम इस तरह बैठी हो""तुम्हें अकेलापन महसूस नहीं होता?"" यह लो यह किताब"" इसे पढ़ो""इससे समय काटने में आसानी होगी।'

मैंने धन्यवाद दिया और किताब रख ली, पर ख़याल नहीं पड़ता कि मैंने उसे खोलकर देखा भी। उसका नाम तक आज मुझे याद नहीं। रात मैंने आँखों में ही गुज़ार दी। एक अजीब नशा-सा बराबर छाया रहा···· मैं बेचैन रही और रह-रहकर उठ-उठकर कमरे में टलहती रही। एक प्यारी-प्यारी सी उमंग, एक प्यारा-प्यारा-सा सन्तोष अनुभव होता रहा··· पोक्रोव्स्की ने मेरी ओर जिस तरह ध्यान दिया और जिस प्रकार मेरी चिन्ता की, उससे मेरे मन में सहज अभिमान जगा।····मैं सारी रात बैठी जाने क्या-क्या सोचती, और जाने कैसे-कैसे से सपने देखती रही।···· पोक्रोव्स्की दुबारा नहीं आया···मैं जानती थी कि वह नहीं आयेगा···· यही कारण है कि मैं असमंजस में पड़ी रही कि पता नहीं, वह कल रात को भी आयेगा या नहीं !

लेकिन, अगले दिन रात को सब लोग सो गये कि पोक्रोव्स्की ने अपना दरवाज़ा खोला और ड्योढ़ी पर खड़े होकर मुझसे बातें करने लगा। आज बातों का एक शब्द भी मुझे याद नहीं। याद सिर्फ़ इतना है कि मैं परेशान होकर अपने आप से खीझती और लाज से लाल होती रही; और पहिले से इतना कलपने सपने देखने और सवाल-जवाब को बार-बार दोहराने के बाद भी सिर्फ़ यह चाहती रही कि बातचीत का यह सिल-सिला किसी तरह खत्म हो ! सच तो यह है कि हमारी मित्रता की शुरुआत ऐन इसी दिन हुई। फिर तो मां की बीमारी के दौरान, हमने हर दिन शाम को कई-कई घन्टे एक साथ बिताये। धीरे-धीरे मेरा संकोच समाप्त होने लगा, गोकि अपने-आप से खीझती तो मैं अब भी रही ! दूसरी ओर उसे अपनी पुस्तकों को भूलते देखकर मुझे मन ही मन खुशी बड़ी हुई।····

ऐसे ही ऐसे एक बार बात आलमारी की किताबों के गिरने पर आ गई। उस समय मेरी स्थिति बहुत ही विचित्र थी···दिल में बड़ी ईमानदारी थी····और हर बात उगल देने की रौ थी।···[illegible]सुख,

संतोष और आनंद की लहरों ने मुझे जाने कहाँ से उठाकर कहाँ फेंक दिया था ! बस, तो, मैंने सीधे-सीधे मान लिया कि मैं पढ़ना चाहती थी···· अपनी जानकारी बढ़ाना चाहती थी····बड़ा खलता था कि मुझे छोटा सा बच्चा माना जाये !····इसके साथ ही मेरा अन्तर एकदम द्रवित हो उठा और आँखें छलछला आईं। मैंने सब कुछ खोलकर कह दिया—'मैं तुम्हें अपना मित्र समझती हूँ···तुम्हारी चिन्ता करना चाहती हूँ····तुम्हारे साथ दो तन, एक मन होना चाहती हूँ····और, तुम्हारे दुख-मुसीबत में हिस्सा बँटाना और तुम्हें धीरज देना चाहती हूँ।' इस पर उसने परेशान होकर मेरी ओर ताज्जुब से देखा; पर मुँह से कुछ नहीं कहा। इससे मुझे बड़ी चोट पहुँची और बड़ी निराशा हुई। लगा कि शायद इसने मेरी बात समझी नहीं····अगर समझी भी तो यह शायद अन्दर ही अन्दर मेरा मजाक बना रहा है।····बस, तो सिसकियाँ न सधीं तो फूट-फूटकर रो पड़ी।··· पोक्रोव्स्की ने मेरे हाथ अपने हाथ में लेकर सीने से लगा लिए और धीरे-धीरे समझाने लगा। वह स्वयं हिल उठा था।····उसने क्या कहा, आज कुछ ध्यान नहीं; पर, मैं आँसुओं के बीच हँसी और मुस्कानों के बीच रोई; मेरे दोनों गाल भभकने लगे, और; खुशी के मारे गले से एक एक शब्द न उभरा। किन्तु स्वयं उत्तेजित रहने पर भी वह मुझे बेचैन लगा। मेरे सहसा ही खिल-उठने और उत्तेजित हो उठने ने उसे आश्चर्य हुआ वह शायद उसी में डूबा रहा। शायद पहिले उसे अजीब-अजीब ही लगा, पर बाद में उसने मेरे समर्पण का अर्थ समझा, मेरे भावों की भाषा समझी और एक सच्चे मित्र और सगे-सहोदर की तरह मुझे स्वीकारा।····मुझे बहुत ही प्यारा-प्यारा-सा लगा····बहुत ही सुख मिला।····फिर तो कुछ भी छिपाने या बचाने की जरूरत न रही और वह दिन-ब-दिन मेरे अन्तर के समीप आता गया।

उन दिनों बीमार मां के सिरहाने, टिमटिमाती मोमबत्ती की रोशनी में हमने किस विषय में बातें नहीं कीं। इस ओर चिंता से भीगे क्षण

रहे।…यानी, हमारे दिलों से जो उभरा, हमारे दिमाग़ में जो आया, वही शब्दों में बँध गया और हमारी ख़ुशी का पारावार न रहा।…आज उन रातों की याद आती है तो अच्छा भी लगता है और तकलीफ़ भी होती है।…यादें यादें ही होती हैं…वे चाहे उदासी से भरी हों और चाहे उल्लास से भिदी, मन में हमेशा टीस ही पैदा करती हैं। कम से कम मुझे तो ऐसा ही लगता है। लेकिन, इस टीस का भी अपना एक मज़ा होता है। इसीलिये तो जब मेरा मन भारी होता है तो पुरानी यादों से मुझमें वैसे ही अचानक ही ताज़गी और नई जान आ जाती है, जैसे कोई मुरझाया फूल दोपहर की धूप झेलने के बाद शाम की ओस की बूंदों से हरा हो उठता है…।

इस बीच मां की हालत में सुधार होने लगा, पर उनके सिरहाने बैठना अभी भी जारी रहा। पोक्रव्स्की जब तब ही मेरे लिये किताबें लाता रहा। पहिले तो इन्हें मैंने केवल जागने के लिये पढ़ा, पर होते-होते और ध्यान जमने लगा और अन्त में बहुत उत्सुकता से पढ़ने लगी। इनमें मुझे बहुत कुछ नया और सुनिश्चित मिला और मेरे हृदय में नये-नये भाव उमड़ने लगे। यही नहीं, जो पुस्तक जितनी कठिन रही, वह उतनी ही प्रिय हुई और आत्मा को उतनी ही मधुर लगी।…पुस्तकों के विचार मेरे अन्तर में पैठने और मुझे अचम्भे में डालने लगे।…सौभाग्य यही रहा कि इस आध्यात्मिक आक्रमण से मेरे क़दम एकदम डगमगाये नहीं। सपनों का इतना और ऐसा व्यपार मुझसे कभी नहीं सधा…।

पर; फिर मां अच्छी हो गई तो हमारी शाम की मुलाकातों का तार ढीला पड़ गया। इसके बाद कभी-कभी ही हम आपस में बोल-बतला सके; पर जब भी ऐसा मौक़ा मिला, हमारी मामूली बातों में भी बड़ा और अद्भुत अर्थ छिपा रहा, और मैं हफ़्तों खुशी से उमड़ी-उमड़ी फिरती रही…।

जल्दी ही एक दिन पोक्रोव्स्की का पिता आया। हमेशा का बातूनी, वह उस दिन खासतौर पर खुश नज़र आया, बड़ी उमङ्ग में रहा और जाने क्या-क्या कहता-सुनता रहा। उसने खुलकर ठहाके लगाये, तरह-तरह के मजाक किये और अन्त में इस खिलाव का राज़ खोलते हुये बोला— 'आज से ठीक एक हफ़्ते बाद मेरे पेतेन्का का सालगिरह होगी। मैं उस दिन उससे मिलने आऊँगा और अपनी पत्नी द्वारा खरीदी गई वास्टक और नये जूते पहिनकर आऊँगा····।' सारांश यह कि बूढ़ा बहुत ही प्रसन्न रहा, बकबक करता ही चला गया।

पेतेन्का की सालगिरह! क्या दिन, क्या रात मुझे भी उसी का ख़्याल बराबर-बराबर बना रहा और मैं भी उसी के बारे में बराबर सोचती रही कि अपने स्नेह की याद में मैं भी उसे इस अवसर पर कुछ भेंट करूँगी पर आखिर क्या करूँ मैं ?····आखिरकार मैंने कुछ किताबें देने का फ़ैसला किया। सोचा—'पूश्किन की रचनाओं के नये संस्करण उसे बहुत ही भायेंगे····बस तो वही सही !' और मैंने बवर्चीखाने की नौकरानी, बुढ़िया मात्रयोना को भेजकर पूश्किन के पूरे सेट की क़ीमत पुछ्वाई।····लेकिन उफ़, हद हो गई—पता चला कि कवर-समेत पूश्किन की ग्यारह पुस्तकों का दाम कम से कम साठ रूबल होगा।····अब सवाल उठा कि वह साठ रूबल आयेंगे कहाँ से ?··· और मैं चिंता में पड़ गई, कोई रास्ता नज़र न आया। मां से मांगना उचित न लगा।··· मांगती तो कुछ हो तो जाता, मगर फिर घर के सभी लोग बात जान जाते, और उस भेंट का अर्थ कुछ और ही लगाया जाने लगता। शायद कहा जाता कि पोक्रोव्स्की पढ़ाता है, उसी के एवज़ में उसे यह किताबें दी गई हैं ···· दूसरे, मैं तो चाहती यह थी कि भेंट एकदम मेरी हो····एकदम मेरी ओर से हो। जहाँ तक उसके पढ़ाने का प्रश्न है, उसकी तो मैं चिर-ऋणी थी, और वह ऋण केवल मित्रता और सहज स्नेह से उतारना चाहती थी।····अन्त में उपाय सूझ गया और गुत्थी सुलझ गई।

मुझे पता था कि गोस्तनी-द्वोर में कभी-कभी लगभग नई-सी पुरानी किताबें, मोल-भाव करने पर, आधी क़ीमत पर मिल जाती हैं। इसलिये मैंने जल्दी से जल्दी वहाँ जाने का इरादा किया; और, अगले दिन मौक़ा भी मिल गया। हुआ यह कि घर में किसी चीज़ की ज़रूरत पड़ी और मां के बीमार रहने और अन्ना-फ़्योदोरोवना के आलकस से हाथ-पैर डाल देने के कारण उसे लाने का ज़िम्मा मुझे सौंपा गया।

मैं मात्रयोना के साथ गई और भाग्य से पूश्किन का एक शानदार सेट मुझे जल्दी ही मिल भी गया। दूकानदार नये सेट की क़ीमत से भी अधिक दाम मांगने लगा। इस पर मैंने मोल-भाव शुरू किया तो तमाम मुसीबतों के बाद सौदा चांदी के दस रूबलों में तय हुआ।....मोल भाव करने में बड़ा मज़ा आया।....मात्रयोना न तो यह समझ पाई कि मैं इतनी उत्तेजित क्यों हूँ. न यह जान पाई कि इतनी किताबें लेकर मैं क्या करूँगी! पर, आफ़त दूसरी थी। मेरे पास सिर्फ़ तीस रूबल के नोट थे और दूकानदार एक कम करने को तैयार न था।....लेकिन; बार-बार कहने सुनने और लौट-लौटकर आने पर उसने आखिरकार दो रूबल और कम कर दिये। बोला—ईश्वर जानता है कि मैं किसी और के लिये यह रिया-यत कभी न करता। मगर, तुम इतनी प्यारी-प्यारी सी लड़की हो कि चलो, यह भी सही!....पर ज़रा सोचिये कि ढाई रूबलों की कमी अब भी रह गई। मैं रोने-रोने को हो गई कि सहसा ही एक अप्रत्याशित परि-स्थिति मेरे दाहिने आ गई।

पास ही एक दूसरी दूकान पर चार-पाँच किताबवालों से घिरा नज़र आया बूढ़ा पोक्रोव्स्की। हर दूकानदार अपनी किताबें जैसे उस पर लादता-सा दीखा! और, क्या-क्या किताबें थीं। दूसरी ओर; पोक्रोव्स्की हर दूकानदार अपनी किताबें जैसे उस पर लादता-सा दीखा। और, क्या-क्या किताबें थीं। दूसरी ओर, पोक्रोव्स्की उन्हें खरीदने को तो उत्सुक

था हो, और न जाने किताबें ख़रीद लेना चाहता था।....परेशान था, चुन नहीं पा रहा था....।

मैं पास पहुँची और मैंने पूछा—'आप यहाँ क्या कर रहे हैं?'....बूढ़े ने मुझे देखा और उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उसे मुझसे शायद उतना ही स्नेह था जितना पेतेन्का को!....बोला—'कुछ किताबें....पेतेन्का के लिये कुछ किताबें खरीद रहा हूँ, वारवरा अलेक्सेयेवना....! उसकी सालगिरह पास आ गई है और उसे किताबें पसन्द हैं....बस, तो इसी से....।'... बूढ़ा तो यों भी जो कुछ कहता था, मज़ाकिया ढङ्ग से कहता था, उस पर इस समय तो वह और भी परेशान और घबड़ाया-हुआ समझ पड़ा। किसी भी किताब की कीमत एक या दो या तीन रूबल से कम न मिली, और, यह स्थिति भी तब रही जब बड़ी किताबों की क़ीमत तक उसने न पूछी। केवल ललचाई निगाहों से देखा, पन्ने उलटे-पल्टे और जहाँ का तहाँ रख दिया। धीमे से बोला—'अरे नहीं, यह नहीं....ज़रा वे दूसरी किताबें दिखलाना!'

और, सस्ती क़ीमत की पत्र-पत्रिकायें संगीत-पुस्तकें और जंत्रियाँ आदि उलटने-पलटने लगा।....मैंने पूछा 'वह सब क्यों ख़रीदना चाहते हैं आप? यह तो बेकार की चीजें हैं।....उत्तर मिला नहीं....नहीं बड़ी अच्छी-अच्छी किताबें हैं यहाँ।; पर, अन्तिम शब्द उसने इस तरह अटक-अटक कर कहे कि मुझे लगा कि वह रो देगा, क्योंकि अच्छी किताबें सचमुच काफ़ी मंहगी थीं।... और, फिर एक बड़ा सा आँसू पलक से चूकर उसकी लाल नाक पर गया।... मैंने पूछा 'आपके पास कितने रूबल हैं?'....'मेरे पास हैं....'—वह बुदबुदाया और अख़बार के एक टुकड़े में बंधी अपनी पूरी जमा-जथा गिनाने लगा—'यह रहा आधा रूबल यह रहा बीस कोपेक और यह तांबे के बीस कोपेक और'... मैं उसे अपने किताबवाले के पास खींच ले गयी—' यह हैं ग्यारह किताबें, और इनकी कीमत है साढ़े बत्तीस रूबल....तीस मेरे पास हैं....ढाई आप दे दीजिए

हम ये ख़रीद लें और दोनों मिलकर एक साथ भेंट कर दें ।....वह खुशी से पागल हो गया और अपने चाँदी और तांबे के सारे सिक्के दूकानदार की मुट्ठी में ठूँसने लगा। बदले में दूकानदार ने दूसरे ही क्षण वह नया पुस्तकालय उठाया, और उस पर लाद दिया। बूढ़े ने कुछ किताबें बग़ल में दबाईं, कुछ जेबों में भरीं और बोला—'विश्वास करो, मैं ये किताबें कल चुपचाप तुम्हारे पास पहुँचा दूँगा।'....और; वह थाती लिये दिये अपने घर चला गया

अगले दिन बूढ़ा अपने बेटे से मिलने आया और कोई आधे घंटे उसके पास बैठने के बाद हमेशा की तरह हमारे यहाँ आ गया। बैठा तो चेहरे पर ऐसे रहस्यभरे भाव झलके कि जो समझता उसे हँसी आये बिना न रहती।....फिर मुस्कराते और ख़ुशी से हाथ रगड़ते हुये ऐसे बोला जैसे कोई बड़ा राज़अन्दर हो—'मैं ने किताबें लाकर बावर्चीख़ाने में मात्रयोना को सौंप दी हैं।'....इसके बाद बातचीत का रुख मुड़ गया और पोक्रोवकी किताबें भेंट करने की विस्तृत योजना बनाने लगा। लेकिन, उसने ज्यों-ज्यों बात की, त्यों-त्यों मुझे लगा कि इसके दिमाग़ में कुछ ऐसा है, जिसकी चर्चा करने की हिम्मत इसकी नहीं पड़ रही है जैसे कुछ डर-सा लग रहा हो उसे।....पर मैं ने कुछ नहीं कहा। लेकिन, मेरे देखते-देखते सारी प्रसन्नता और मुद्रायें हवा हो गईं और उसकी बेचैनी और चिंता बढ़ गई।....आख़िरकार बहुत सकुचते-सकुचते, धीमी आवाज में बोला—'वारवरा-अलेक्सेयेवना तुम जानती हो, मैं क्या सोच रहा हूँ? मैं सोच रहा हूँ कि कैसा रहे अगर दस किताबें तुम अपनी तरफ़ से भेंट कर दो, और ग्यारहवीं में आपको अपनी ओर से दे दूँ। अगर ऐसा होगा तो हम दोनों को अलग-अलग भेंट देने का मौका मिल जायेगा.... यानी एक भेंट तुम्हारी होगी, तो एक भेंट मेरी।'....इसके आगे वह गड़बड़ा गया और उत्तर के लिये मेरी ओर देखने लगा मैं ने पूछा—'मगर आपको मिलीजुली भेंट क्यों नहीं पसंद, ज़खार पेत्रोविच? बूढ़ा' हकलाते

हुए बोला—'पसंद क्यों नहीं है, वारवरा अलेक्सेयेवना·········बात यह है कि····—'और उसका चेहरा लाल हो गया।

'बात यह है कि····'—अन्त में जैसे-तैसे बोला—'बात यह है कि मैं थोड़ी-बहुत पीता हूँ··· और लगभग हर दिन ही पीता हूँ।····कहने का मतलब यह है कि क़ायदे से जीता नहीं।····करूँ भी क्या, कभी सर्दी महसूस होती है, कभी कोई दूसरी तकलीफ़ हो जाती है, कभी मन खराब रहता है, और कभी कहीं कुछ गड़बड़ी हो जाती है····नतीजा यह कि पी लेता हूँ और पी लेता हूँ तो घूंट-दो घूंट ज्यादा हो जाती है। लेकिन तुम तो जानती हो कि पेतेन्का को यह ज़रा भी पसंद नहीं। वह बिगड़ खड़ा होता है डांटने फटकारने लगता है और लेक्चर झाड़ने लगता है···· पर उसे कुछ अपनी ओर से भेंट कर दूँगा, तो साबित हो जायगा कि मैं अपने तरीक़े सुधार रहा हूँ। उसे लगेगा कि कोपेक दो कोपेक बचा भी लेता हूँ। वैसे तो वह जानता है कि यहाँ तो कोपेक भी तभी होता है, जब वह देता है।··· यानी, मेरी भेंट से उसे बड़ी खुशी होगी। सोचेगा—मैंने धन किसी अच्छे काम में तो लगाया। कुछ तो बचाया, और जो बचाया, वह उसी पर खर्च किया।"

मुझे बूढ़े पर बड़ा तरस आया, चिंता से उसकी ओर देखती रही, और एक निश्चय के साथ तुरंत ही बोली—'लेकिन ज़खार पेत्रोविच, सुनिये न, सारी की सारी किताबें आपही क्यों नहीं दे देते अपनी ओर से ?

'सारी की सारी किताबें ? यानी, वे सारी की सारी किताबें····?'

'हां-हां'—

'यानी मैं अपनी ओर से दे दूँ ?

'हां-हां....दे दीजिये—

'यानी' कुल की कुल किताबें अपनी ओर से भेंट कर दूँ

'हां, कुल की कुल किताबें अपनी ओर से भेंट कर दीजिये।'····

बूढ़े की समझ में बात ही बहुत देर तक न आई। फिर सपनों में खोया-खोया सा अस्फुट स्वरों में बोला—अगर ऐसा…अगर कहीं ऐसा हो जाये तो क्या कहने हैं।…बहुत ही शानदार बात होगी।… लेकिन, तब लेकिन, तब तुम अपनी ओर से क्या दोगी, वारवरा अलेक्सेवना ?

'मैं अपनी ओर से कुछ नहीं दूँगी…और क्या ?'

वह सहम सा गया यानी, तुम कुछ नहीं दोगी ?…और, मेरी बात पर वह ऐसा स्तम्भित हुआ कि अपनी ओर से बिल्कुल कुछ न देने का इरादा करने लगा, ताकि मैं सारी किताबें उसके बेटे को खुद भेंट कर सकूँ

…आदमी बहुत दयावान था इसीलिए मैंने उसे बार-बार विश्वास दिलाया—इस अवसर पर आपके बेटे को कुछ-न-कुछ देने का मेरा बड़ा मन है…लेकिन मैं आपकी खुशी ख़त्म करना नहीं चाहती…बात यह है कि आपका बेटा खुश होगा तो आप खुश होंगे, और आप खुश होंगे तो मैं भी खुश होऊँगी…मुझे ऐसा लगेगा जैसे कि भेंट मैंने ही दी है।'…

इससे उसका मन स्थिर हुआ। इसके बाद वह कोई दो घन्टे तक और हमारे यहाँ रहा, पर एक क्षण को भी जम कर बैठ न सका। बराबर उछलता-कूदता, बातें करता, हँसता' साशा से दौड़ बदता, मुझे चूमता और निगाह बचा बचाकर अन्ना-फ़्योदोरोवना को मुँह बिराता रहा। आख़िरकार अन्ना ने ऊबकर उसे घर से निकाल-बाहर किया। इतना हंगामा उसने पहिले शायद ही कभी किया हो।

और, पोक्रोव्स्की की सालगिरह के दिन बूढ़ा पोक्रोव्स्की प्रार्थना से सीधे, ठीक ग्यारह बजे हमारे यहाँ आ पहुँचा कि बदन पर नयी वास्कट और मरम्मत किया हुआ दुमवाला कोट, पैरों में नये जूते, और हांथों में किताबों के पैकेट।

इतवार का दिन था और हम अन्ना-फ़्योदोरोवना के कमरे में कॉफ़ी पी रहे थे। सो, आते ही सबसे पहिले बोला—पुश्किन बड़ा ही शानदार कवि था !…फिर, दूसरे क्षण ही थोड़ा गड़बड़ा गया—'आदमी को

क़ायदे से जीना चाहिये''''आदमी क़ायदे से नहीं जीता तो ढालने लगता है। बुरी आदतें तभी नहीं छूटतीं जब आदमी नहीं चाहता'''''इस बात पर बल देने के लिए उसने कई मिसालें दीं। बोला —'इधर कुछ समय से मैं अपनी आदतें सुधारता और दूसरों के लिये एक मिसाल-सी पेश करता रहा हूँ।''''वैसे तो मुझे हमेशा ही लगा हैं कि मेरा बेटा जो भी कहता है, ठीक ही कहता है, पर सचमुच उस पर अमल तो मैं अभी ही कर सका हूँ। सबूत में यह किताबें हैं, और मैंने बचत की रक़म से खरीदी हैं।' यह कहकर उसने किताबें अपने बेटे की ओर बढ़ा दीं और उससे भेंट स्वीकारने का आग्रह किया।

दूसरी ओर बूढ़े की बातें सुनकर मेरा जहाँ हँसने का मन हुआ, वहीं रोने को भी जी हुआ। यों समय पर कहानी गढ़ देना तो उस बुड्ढे का बायें हाथ का खेल था।''''

खैर; किताबें पोक्रोव्स्की के कमरे में पहुँचा दी गईं और आलमारी में सजा दी गईं। मगर, कहना होगा कि उसने तो सच्चाई भाँप ही ली।''''जो भी हो, बूढ़े को खाने की दावत दे दी गई, और दिन काफ़ी मज़ेदार रहा।''''खाने के बाद हम ताश लेकर बैठ गये। साशा जैसे बौखलाई रही, और मैं भी उससे कहीं उन्नीस न पड़ी। पोक्रोव्स्की का ध्यान बराबर मेरी ओर रहा, और एकान्त मिलते ही उसने मुझसे बात चीत करने की भी कोशिश की, पर मैं टाल गई।'''पिछले चार वर्षों में उससे ज्यादा हँसी-खुशी से भरा दिन कभी नहीं बीता।''''

लेकिन, इसके बाद ही अँधियारी घिर आई''''उसकी याद से ही मन भारी हो उठता है शायद इसीलिये क़लम की रफ़्तार धीमी हो गई है, और वह आगे बढ़ना नहीं चाहती। पर, शायद यह भी एक कारण है कि मैंने अपने सुख से भरे दिनों का वर्णन इतने विस्तार में, इतने प्यार से किया है।''''ये दिन इने-गिने ही रहे, और इनके बाद तो

दुखों और मुसीबतों का जो सिलसिला शुरू हुआ वह ईश्वर ही जाने कि कब खत्म होगा।....

यह दुख और ये मुसीबतें शुरू हुईं पोक्रोव्स्की की बीमारी और उसकी मौत के साथ। हुआ यह कि ऊपर वाली घटना के दो महीने बाद ही वह बीमार हो गया। इन दो महीनों में उसे अपनी रोज़ी-रोटी के लिये जीतोड़ मेहनत करनी पड़ी, और उसकी स्थिति बराबर डाँवाडोल रही। तपेदिक के आम मरीज़ों की तरह वह भी अंतिम क्षण तक लम्बी ज़िन्दगी की आशा पाले रहा। पढ़ाने का काम उसे आसानी से मिल सकता था, पर, इस पेशे से उसे दिली नफ़रत रही, और बुरे स्वास्थ्य के कारण कहीं जमकर नौकरी करने का सवाल ही कभी नहीं उठा। फिर, अगर किसी के यहाँ नौकर हो भी जाता तो तनख्वाह तो काफ़ी समय बाद ही मिलती।

सारांश यह कि उसने हमेशा हर चीज़ का बुरा पक्ष ही देखा। इससे धीरे-धीरे उसकी आत्मा ऐंठती गई और उसके अनुभव न करने पर भी, उसका स्वास्थ्य दिनोंदिन गिरता गया। ....उस पर भी पतझर आया तो कहीं नौकरी के लिये अर्ज़ी देने की खातिर और कहीं आरज़ू-मिन्नत के लिये वह अक्सर ही एक पतला कोट भर पहिनकर बाहर निकल गया, बार-बार पानी में भीगा और पैर गीले हुए। नतीजा यह कि उसने जो चारपाई पकड़ी तो दुबारा उठने की नौबत न आई। आखिरकार अक्तूबर के अंत में उसका देहांत हो गया।

उसकी बीमारी के दौरान मैं कमरे से बाहर शायद ही कभी निकली। उसकी पूरी तीमारदारी करती रही और अक्सर रात-रात भर जागती रही। इस बीच उसका दिमाग़ प्राय: नाचता रहा और तरह-तरह की बातें करता रहा—बातें भी कभी किताबों के बारे में, कभी अलग-अलग नौकरियों के बारे में, कभी मेरे बारे में, और कभी अपने

पिता के बारे में। इनमें से जाने कितनी बातें तो मेरे लिये बिल्कुल ही नई रहीं और इसके पहिले मेरी कल्पना में भी कभी नहीं आईं!

और, इस बीमारी के शुरू-शुरू में तो जिसने भी मुझे देखा, अजीब नज़र से देखा! अन्ना फ़्योदोरोवना ने अकसर ही सिर हिलाया। पर, मैंने ऐसी सभी निगाहों का जवाब शान्त दृष्टि से दिया। इसीलिये होते-होते लोगों का ध्यान मेरी ओर से हट गया—कम से कम मेरी मां का तो हट ही गया।

पोक्रोव्स्की अकसर ही सन्निपात की स्थिति में रहा। कभी ही कभी उसने मुझे पहिचाना। आमतौर पर रात-रात भर किसी से बहस करता रहा। बहस अस्पष्ट रही और वाक्य प्रायः समझ में नहीं आये। उस छोटे से कमरे में उसकी आवाज़ ऐसी अजीब और खोखली लगी, जैसे कि किसी गुम्बद के नीचे से उभर रही हो। इस सबसे मैं एकदम डर गई।.......आखिरी रात को उसे बड़ा कष्ट हुआ और वह रह-रहकर कराहता रहा। सभी भयभीत हो गये। अन्ना-फ़्योदोरोवना ने ईश्वर से प्रार्थना की—'उठाना हो तो इसे जल्दी से जल्दी धरती से उठा ले।'.... डॉक्टर ने कहा—'यह बहुत चलेगा तो सुबह तक!'

बूढ़े पोक्रोव्स्की ने दरवाज़े पर पड़ी एक चटाई पर रात काट दी। उसका दिल जैसे टूक-टूक हो गया। दर्द ने जैसे उसे एकदम जड़-पत्थर बना दिया। उसका सिर रह-रहकर भय से हिलता रहा। वह सिर से पैर तक कांपता रहा और भुनभुनाते हुए अपने आपसे लड़ता रहा। उसे देखकर तो मैं और भी अधिक सहम गई और, लड़का होने के ज़रा पहिले थकान और टूटन नींद बनकर पलकों पर उतरी तो वह सोया क्या, जैसे मर गया।

पर, सात बजने के ज़रा देर बाद ही मुझे पोक्रोव्स्की का अन्तिम क्षण समीप दीखा। मैंने बूढ़े को जगाया।....पोक्रोव्स्की मरते-मरते पूरे होश-हवास में रहा और उसने हममें से एक-एक से विदा ली।....अजीब

ही है कि इस समय मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया, मगर आंख में एक आँसू न आया।

किन्तु, अन्तिम क्षण सबसे दुखद् रहे।....दम तोड़ने के ज़रा पहिले वह लड़बड़ाती ज़बान से कुछ मांगने लगा, लेकिन मेरी समझ में ही कुछ न आया। फिर तो और अधिक सह सकना मेरे लिये कठिन हो गया।.... इसके बाद वह एक घंटे तक बेचैन रहा, करुणा-भरी नज़रों से मेरी ओर देखता रहा और इशारे से कुछ कहने की कोशिश करता रहा। फिर, भर्राये हुये गले से, अस्फुट स्वरों में उसने दुबारा कुछ कहा; लेकिन बात इस बार भी साफ़ नहीं हुई....।

फिर भी, मैं पारी-पारी से हर एक को उसके सिरहाने ले आई और उसे थोड़ा-सा पानी देने लगी। लेकिन उसने उदासी से सिर हिला दिया। आखिरकार मैंने उसका, मतलब समझा कि यह पर्दा थोड़ा हटा दो, ताकि दिन के प्रकाश, सोने के सूरज और परमपिता की सृष्टि को अन्तिम बार भर आँख देख लूँ....।

मैंने बढ़कर पर्दा थोड़ा सरका दिया। पर, बाहर के वातावरण में भी नीरसता और उदासी घुली दीखी, जैसे कि वहाँ भी ज़िन्दगी अन्तिम सांस ले रही हो। धूप ग़ायब थी....आसमान पर धुन्ध की चादर पड़ी थी....खिड़कियों के शीशों पर पानी की बौछारें पड़ रही थी, पानी की नन्हीं-नन्हीं धारें बह रही थीं और अँधेरा और गहरा रहा था....प्रकाशकी नन्हीं-नन्हीं उँगलियाँ देवमूर्त्ति के पास रक्खे चिराग़ की टिमटिमाती लौ से उलझ रही थीं....।

ऐसे में मरीज़ ने फटी-फटी-सी नज़रों से मेरी ओर देखा और सिर हिलाया।....क्षण भर में ही सारा खेल खत्म हो गया।

अन्त्येष्टि की व्यवस्था अन्ना-फ़्योदोरोवना ने करवाई। बहुत सादा सा ताबूत और बहुत मामूली-सी घोड़ागाड़ी मँगवाई। खर्च के एवज़

में किताबें और बाकी सामान अन्ना ने अपने क़ब्ज़े में कर लिया। इस पर बूढ़ा उससे बुरी तरह झगड पड़ा, और ज्यादा से ज्यादा किताबें वापिस लेकर ही माना। यह किताबें उसने जेबों में ठूंस लीं, टोप में भर लीं और तीन-चार दिन तक बराबर सीने से लगा रक्खीं और तो और गिरजाघर गया तो वहाँ भी उन्हें साथ ही लेता गया....।

वैसे भी इन सारे दिनों वह बौखलाया और खोया-खोया रहा।.... तावूत के चारों ओर चक्कर लगाता रहा ; कभी 'वेंचिक'* ठीक किया। कभी मोमवत्तियाँ जला दीं और कभी बुझा दीं। किसी एक चीज़ पर कुछ देर तक दिमाग़ जमा न रहा। अन्त्येष्टि की प्रार्थना में न माँ ने हिस्सा लिया और न अन्ना-फ़्योदोरोवना ने। हुआ यह कि माँ तो बीमार रहीं, मगर अन्ना-फ़्योदोरोवना तैयार हुई तो बूढ़ा उनसे झगड़ पड़ा और वे भी रुक गयीं। नतीजा यह कि उस अवसर पर केवल दो व्यक्ति वहां रहे—एक मैं और एक पोकरोव्स्की।

पर, प्रार्थना के बीच भविष्य जाने कैसे भयङ्कर रूप में मेरे सामने आया कि मुझसे अन्त तक रुका न गया। आख़िरकार तावूत बन्द किया गया. उसमें कीले जड़े गये और एक गाड़ी पर रखकर ले जाया गया। मैं गली के मोड़ तक साथ-साथ गई। इसके बाद गाड़ीवाले ने घोड़े को दौड़ा दिया। बूढ़ा हाँफते और सिकते हुये गाड़ी के पीछे-पीछे दौड़ने लगा। इसी बीच उसका टोप सिर से उड़ गया, पर वह उसे उठाने को रुका नहीं। फलतः उसके बाल बरसात से भीग गये और हवा के थपेड़े आ-आकर मुँह पर लगने लगे। लेकिन, उसने जैसे किसी चीज़ की ओर ध्यान ही नहीं दिया। वह कभी गाड़ी के इस ओर दौड़ता रहा तो कभी उस ओर। इससे कोट की दुम हवा में फड़फड़ाती रही और किताबें जेब से निकल-निकल आने लगीं। उसने इनमें से अधिक से अधिक को सीने से

---

*यूनानी चर्च की परम्परा के अनुसार मुर्दे के सिर पर रखा जाने वाला सेहरा—

जकड़ लिया।⋯राह में मिलने वालों ने ताबूत देखा तो अपने सिरों से टोप-टोपियाँ उतार लीं और क्रॉस बनाया। इनमें से कुछ ने रुककर बूढ़े को ग़ौर से देखा।

कुछ ने उसे अचानक ही रोका और कीचड़ में गिरती पुस्तकों की ओर इशारा किया।⋯पोक्रोव्स्की ने पुस्तकें लपककर उठा लीं और तेज़ी से दौड़कर लाशगाड़ी पकड़ ली⋯सड़क के नुक्कड़ पर उसे एक भिखारिन मिली।

आखिरकार गाड़ी आँखों से ओझल हो गई तो मैं घर लौट आई और माँ के सीने से लगकर फूट-फूटकर रोई। मैंने माँ को बार-बार चूमा और उसे यों कसा, जैसे कि अपने अन्तिम हितू को दुनिया में बनाये रखना मेरे अपने बस की बात हो।⋯पर, मौत एक दिन उसके सिरहाने भी आ ही खड़ी हुई।

जून ११

कल हम द्वीपों की सैर को गये। इसके लिये मैं तुम्हारा सचमुच बड़ा एहसान मानती हूँ, मकार अलेक्सेयेविच! द्वीप सचमुच बहुत ख़ूबसूरत है। वहाँ कैसी ताज़गी और कैसी हरियाली है!⋯पेड़ और घास मैंने एक ज़माने से देखी न थी और बीमारी में दर्द से भरकर सोचा था कि अब शायद कभी देख भी न पाऊँगी!⋯इसी से तुम सोच सकते हो कि मुझे वहाँ कैसा लगा होगा!⋯लेकिन, मैं कल इतनी उदास रही; इस पर मुझसे नाराज़ न होना! सच पूछो तो कल तो मैं बहुत ख़ुश थी और मेरा मन बहुत हल्का था। लेकिन, मेरे साथ जाने क्या होता है कि मैं जब भी ख़ुश होती हूँ, सदा ही कुछ कहीं टीस-टीस उठता है। ऐसे में तो मैं बेबात रो भी पड़ती हूँ।⋯विश्वास करोगे कि मैं अक़्सर ही रो पड़ती हूँ और यह नहीं जान पाती कि आखिर क्यों रोती हूँ!⋯शायद अन्तर

छूने वाली हर चीज़ कहीं-न-कहीं चोट कर देती है···शायद अन्तर पर पड़ने वाले हर प्रभाव में दर्द बसा रहता है।···बस, तो पीला, खुला आसमान, डूबता हुआ सूरज और शाम का सन्नाटा मुझे जाने क्या कर गया कि मैं रहे-रहे भर उठी, मेरा मन भारी हो गया और जी रोने को करने लगा।···सवाल यह है कि मैं यह सब क्यों लिख रही हूँ?···मेरा हृदय तक इस सारे कुछ की गुत्थी सुलझा नहीं पाता···फिर काग़ज़ पर तो यह बातें और भी बेमतलब लगती हैं···लेकिन, शायद तुम इनका अर्थ समझ लो!···आँसू और मुस्कानें एक साथ।···सचमुच तुम कितने दयालु और कितने अच्छे हो, मकार-अलेक्सेयेविच! तुमने कल मेरी ओर देखा तो मेरे मन ने तुरत कहा-यह तुम्हारी निगाहें पढ़ने की कोशिश कर रहे हैं···तुम्हारी खुशी को अपनी खुशी मान रहे हैं।···और, फिर मेरी निगाह चाहे किसी झाड़ी पर पड़ी, चाहे किसी पौधे की कलम पर, चाहे पेड़ों की किसी क़तार पर और चाहे पानी की किसी धार पर, तुम ऐसे अभिमान से तन उठे जैसे कि प्रकृति का वह पूरा पसारा तुम्हारी जागीर हो।···साफ़ है कि तुम स्नेह ही स्नेह हो और तुम्हारे मन में करुणा ही करुणा है, अलेक्सेयेविच। यही कारण है कि मेरे मन में बड़ा प्यार है तुम्हारे लिये।···फ़िलहाल, दोस्विदानिया···आज मेरी तबीयत फिर ढीली हो गई है···मैं क्या करूँ मेरे पैर भीग गये और मैं सर्दी खा गई।··· फ़ेदोरा की तबीयत भी यों ही है···यानी, हम दोनों ही बेकार हैं···ऐसे में हमें भुला न देना और जब भी आ सकना, ज़रूर आना।

व० दो०

मेरी प्रिय वारवरा-अलेक्सेयेवना,

तुम्हें पता है कि मैं समझता था कि तुम्हारा कल वाला पत्र कविता में होगा; गद्य में नहीं। मगर उसकी जगह मिला एक छोटा-सा पत्र छोटे कागज़ पर लिखा। मेरा कहने का मतलब यह है कि पत्र छोटा था, बातें कम थीं; मगर इस पर भी खूब था। उसमें प्रकृति थी; रंग-बिरंगे दृश्य थे,

भावनायें थीं—और, हर चीज़ का वर्णन अलबेला था—अपने ढंग का अनूठा था। जहाँ तक मेरा सवाल है, मुझमें ऐसी प्रतिभा नहीं। नतीजा यह कि दर्जन पन्ने रंग डालूँ तो भी कौन-सी बात बनेगी। और, तुम तो जानती हो कि ऐसे पत्र मैंने लिखे हैं।....मेरी रानी, तुम कहती हो कि मैं बहुत दयालु हूँ, मुझसे किसी को नुक़सान नहीं पहुँच सकता है, मैं प्रकृति में प्रतिबिम्बित परमप्रभु के अनुग्रह का अर्थ समझता हूँ। यही नहीं, तुमने तो और भी तरह-तरह से मेरी तारीफ़ के पुल बाँधे हैं....प्रिये, यह सब सत्य है और बिल्कुल सत्य है....तुम्हारी राय कहीं भी ग़लत नहीं है....यह सब तो मैं खुद भी जानता हूँ....लेकिन, जो कुछ तुमने लिखा है, उसे पढ़ और समझकर तो दिल पिघलने-सा लगता है....जाने कैसे-कैसे विचार मन में आते हैं; और जी दुबारा उदास हो उठता है!....मेरी मुन्नी, अब तुमसे थोड़ी-सी अपनी चर्चा करूँ....।

मैंने जब पहिल-पहिल नौकरी शुरू की तो मैं सत्तरह साल का था। आज तीस वर्ष का हूँ, और ऐसा लगता है जैसे कि यह तेरह वर्ष एक दिन की तरह बीत गये हैं।....इस बीच कितने ही सरकारी-कोट तार-तार हो चुके हैं। मेरी उम्र बढ़ी है, मेरी जानकारी बढ़ी है, और मैंने जाने कितनी तरह के लोग देखे-सुने हैं।....यक़ीन करो, मैंने ज़िन्दगी देखी है....हाँ, ज़िन्दगी देखी है! अरे, एक वार तो मेरा नाम सरकारी सम्मान के लिये भी भेजा गया....हो सकता है कि तुम इस बात पर विश्वास न करो, लेकिन, ईश्वर साक्षी है कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, सच कह रहा हूँ।....बदक़िस्मती से बुरे लोग हर जगह उग आते हैं....मैं थोड़ा गँवार और बुद्धू आदमी हूँ.... मगर मेरे पास भी दिल वैसा ही है, जैसा दूसरों के पास।....लेकिन वारेन्का, तुम जानती हो, उस गंदे आदमी ने क्या किया? मुझे तो तुम्हें बतलाने में भी शर्म आती है क्यों न तुम उसी से पूछ लो कि उसने जो कुछ किया, क्यों किया? उसने सारा कुछ किया, क्योंकि मैं स्वभाव से संकोची और शान्त और मन का कोमल

हूँ। वह आदमी मुझे पसन्द नहीं करता था, और बस···। गड़बड़ी शुरू हुई छोटी-छोटी बातों से कि मकार अलेक्सेयेविच ऐसा है, मकार-अलेक्सेयेविच वैसा है।···फिर यह कि उससे आप उम्मीद ही क्या रखते हैं? और, आखिर में कि इसके लिये गुनाहगार कौन है, मकार-अलेक्सेयेविच! यानी, रानी देखा न, जहाँ देखो वहाँ क़ुसूर अलेक्सेविच का।···इससे हुआ यह कि पूरे मन्त्रालय में मकार-अलेक्सेयेविच का नाम बदनाम हो गया। लेकिन, इससे भी ऐसे लोगों का जी न भरा···जल्दी ही मेरे जूते, मेरा सरकारी कोट, मेरे बाल और खुद मैं चर्चा का विषय बन गया। हर चीज की नुक़ताचीनी होने लगी और सभी कुछ को बदल देने का सवाल उठ खड़ा हुआ।···फिर तो यह सिलसिला बरसों चला···कोई दिन खाली नहीं गया···लेकिन, मैं होते-होते इन सबका आदी हो गया और अब तो कोई बात ही नहीं है। कुछ भी सह सकता हूँ, क्योंकि मैं छोटा आदमी हूँ···मेरी बिसात ही क्या है? मगर फिर सवाल उठता है कि मैं इतना सहूँ तो, मगर आखिर क्यों? मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है? क्या मैं किसी की तरक़्क़ी के आड़े कभी आया हूँ? क्या मैंने अफ़सरों से कभी, किसी की बुराई-भलाई की है? क्या मैंने किसी के खिलाफ़ कभी कोई पञ्चायत या साज़िश की है? कभी नहीं ऐसी बातें दिमाग़ में भी आयें तो तुम्हें मुझ पर लानत बरसानी चाहिये!···इन सबकी मुझे जरूरत? फिर मेरी रानी, जरा यह तो सोचो कि मै ऐसी बड़ी-बड़ी हसरतें पाल सकता हूँ और धोखाधड़ी का ऐसा जाल बुन भी सकता हूँ क्या? इतनी अक़्ल है मुझमें?···ईश्वर क्षमा करे···मगर मैंने ऐसा किया क्या है कि यह तमाम पहाड़ मेरे सिर पर टूटें?···तुम मुझे भला और नेक आदमी मानती हो···है न? और, तुम्हारा और इन तमाम लोगों का क्या मुक़ाबिला?··· फिर, आखिरकार सभ्य आदमी का सबसे बड़ा गुण क्या है?···अभी कल ही एक निजी बातचीत के दौरान

येव्स्ताफ़ी-इवानोविच. ने कहा कि सभ्य आदमी का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह अपनी मुट्ठी हमेशा गरम रक्खे....ख़ैर; वे तो मज़ाक कर रहे थे, मगर मैं समझता हूँ कि सबसे बड़ी बात यह है कि आदमी किसी के लिये बोझ न बने, और मैं किसी के लिये बोझ नहीं हूँ। भले बासी हो, लेकिन मेरा रोटी का टुकड़ा मेरा होता है और मेरी पसीने की कमाई का होता है....और, वह उसी तरह क़ायदे से इस्तेमाल भी किया जाता है। आदमी आखिर करे क्या? काग़ज़ात की नक़ल तैयार करना कोई बड़ा तीर मारना नहीं है, लेकिन मुझे अपने इस काम पर भी नाज़ है, क्योंकि मैं इसमें भी खटता हूँ। दूसरे, काग़ज़ात की नक़लें तैयार करने में कोई में कोई खराबी है, कोई गुनाह है?....लोग कहते हैं—'वह नक़लें तैयार कर रहा है'....दफ़्तरी-चूहा नक़ल पर नक़ल मारे जा रहा है—ठीक है, नकलें मारे जा रहा है तो हुआ क्या? कोई बेईमानी है यह?....मेरी लिखावट बहुत अच्छी है और बड़े-साहब को बहुत पसन्द हैं....उनके ज़्यादातर काग़ज़ात की नक़लें आम-तौर पर मैं ही तैयार करता हूँ!....जहाँ तक तरीक़े का सवाल है, मारो गोली मुझे कोई तरीक़ा-वरीक़ा नहीं आता। यह बात मैं अच्छी तरह जानता हूँ, और यही वजह है कि आज तक मेरी तरक़्क़ी नहीं हुई।....यहाँ तक कि तुम्हें भी मैं यों ही लिख देता हूँ....जो दिमाग़ में आ गया, वही काग़ज़ पर उतार दिया....न कोई दिखावा, न कोई बनावट!..........ठीक है, यह तो सभी कुछ मुझे पता है.........लेकिन तुमसे एक सवाल पूछता हूँ मैं—'भला हो क्या अगर सभी लिखने ही लिखने वाले हों? उस हालत में यह नक़लें तैयार कौन करेगा?....इस सवाल का जवाब दो, मेरी वारेन्का।....यानी कोई जवाब नहीं आया न समझ में? बस तो मेरी ज़रूरत है....यह सारे लोग अपनी ज़बान रोकें..मुझ पर कीचड़ उछालना बन्द करें।...अगर मैं दफ़्तरी-चूहा लगता हूँ तो वे मुझे दफ़्तरी चूहा कहें, भले कहें, मगर यह भी देखें कि

वे बेचारे....

यह चूहा जरूरी है, काम का है, इसके काम की तारीफ़ होती है, और इसी काम के लिये इसे तनख्वाह दी जाती है !....यानी, मैं चूहा भी हूँ तो ऐसा चूहा हूँ !....लेकिन, हटाओ चूहों की यह दास्तान ! इसकी चर्चा का तो ख्याल भी मुझे नहीं था....मैं तो यों भी भूल-भाल जाता हूँ.... लेकिन कभी-कभी लातों के देवता को लातें देनी भी चाहिये....बस तो, दोस्त्रिदानिया, मेरी रानी, मेरे जीवन का चैन, मेरी सोनचिरैया !... मैं जल्दी ही तुम्हें देखने आऊँगा, मेरी देवदूती !....तब तक ऊबना नहीं। आऊँगा तो कोई न कोई किताब भी ले आऊँगा।....दोस्त्रिदानिया, वारेन्का... ।

तुम्हारा अपना हितैषी,
मकार देवुश्किन

जून २०

प्रिय मकार अलेक्सेयेविच,

मुझे हाथ का काम समय से खत्म करना है, इसीलिये यह पत्र बड़ी हड़बड़ी में लिख रही हूँ।....एक बात सुनो—एक मज़े का सौदा हो सकता है... फ़ेदोरा कहती है कि कोई आदमी पतलून, वास्कट, टोपी वगैरः का एक पूरा सेट बेच रहा है... चीजें नई हैं और सस्ती मिल सकती हैं....तुम क्यों नहीं खरीद लेते ?....तुम तो खुद ही कहते हो कि इन दिनों तुम्हारी हालत वैसी खस्ता नहीं है !....अब देखो, बेकार की बातें न करना कि इसके लिये मैं रक़म कहाँ से लाऊँ ।....चीजें सभी काम की हैं !... जरा अपने ऊपर एक नजर तो डालो और देखो कि तुम्हारे कपड़े कैसे हैं !... शर्म करो, कपड़े बहुत ही गंदे हैं, और फट-फट भी गये हैं ! गोकि तुम तो कहते हो कि तुम्हारे पास नये कपड़े हैं, लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता। पता नहीं, तुमने अपने नये, सरकारी सूट का

क्या किया ?····इसलिये, उस आदमी से वे चीज़ें ले ही लो····और कुछ नहीं तो, मेरे लिये ले लो, मेरे प्यार के लिये ले लो !····

तुमने मेरे लिये लिनेन भेजा है····यह तो ठीक है····मगर, तुम अपने को बरबाद कर रहे हो, और कुछ नहीं ! हद है, तुम किस तरह दोनों हाथों से धन लुटाते हो ! फिर, लिनेन और ऐसी दूसरी चीजों की ज़रूरत भी क्या है ?····मैं जानती हूँ, अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम मुझे प्यार करते हो, और बहुत प्यार करते हो··· इस पर तोहफ़ों की मुहर मारना ज़रा भी ज़रूरी नहीं, खास तौर पर तब, जब उन्हें लेना मुझे काफ़ी भारी पड़ता है। मैं तो जानती हूँ कि तुम इन पर कितना-कितना खर्च करते हो ! मेरा आग्रह है, अनुरोध है, प्रार्थना है कि अब इस तरह की भेंटें दुबारा कभी न भेजना। तो, अब फिर कभी नहीं भेजोगे न !

मकार अलेक्सेयेविच, तुम चाहते हो कि मैं उस वर्णन की अगली कड़ियाँ तुम्हें भेजूँ और कहानी ज़ल्दी से जल्दी पूरी कर डालूँ !····मगर सच पूछो तो मैं तो यही नहीं जानती कि मैंने इतना भी कैसे लिखा ! जो कुछ मुझ पर बीता है, उसकी चर्चा क्या, ख्याल तक से मुझे बहुत तकलीफ़ होती है। उलट कर पीछे देखने में भी डर लगता है; और सबसे दुश्वार लगता है अपनी माँ के बारे में सोचना। वे तो अपनी बेटी को जैसे शैतानों को सौंप गईं ! उसकी तो कल्पना से भी दिल दहलता है ! सभी कुछ अभी इतना ताज़ा है कि एक साल बीतने पर भी अब तक उससे उबर नहीं पाई हूँ। मन की शांति का तो सवाल ही कहाँ उठता है !

····यह तो मैं तुम्हें पहिले ही लिख चुकी हूँ कि अन्ना-फ़्योदोरोवना के विचार इस समय क्या है ? वे मुझ पर अहसानफ़रामोशी का इल्ज़ाम लगातीं और एकदममुकर जाती हैं। कहती हैं—'बाइकोव ने जो कुछ

किया, उसमें मेरा, किसी तरह का कोई हाथ नहीं !····उनको कहना है—'तुम्हें वापिस चला जाना चाहिये····तुम खैरात पर जी रही हो ··· इससे क्या होना-जाना है ?····हाँ अगर तुम लौट जाओगी तो मैं बाइकोव को समझाने की कोशिश करूँगी, और दहेज़ अपनी तरफ़ से दे दूंगी ।'···· भगवान उनका भला करे !····यहाँ तुम मेरे साथ हो, फ़ेदोरा मेरे साथ है, और मैं हर तरह खुश हूँ ।··· फ़ेदोरा तो मुझे मेरी आया की याद दिलाती है !····तुम्हारा-मेरा दूर का रिश्ता है, लेकिन तुम्हारा नाम ही मुझे पनाह देने को काफ़ी है !····जहाँ तक उन लोगों का सवाल है, मैं उन्हें पहिचानना तक नहीं चाहती और हरतरह भूल जाना चाहती हूँ···· शायद भूल भी जाऊँगी !····वे मुझसे और भला चाह भी क्या सकते हैं ?····फ़ेदोरा कहती है—'नहीं, यह सब गप है··· वे लोग तुम्हें तुम्हारे हाल पर छोड़ देंगे ।'····ईश्वर करे कि छोड़ दें ।

वा० दो०

जून २१

मेरी प्यारी सोनचिरैया,

समझ में नहीं आता कि पत्र शुरू कहाँ से और कैसे करूँ ! मगर, सोचो कि हमारा यहाँ इस तरह रहना सचमुच कितना अद्भुत है ! ऐसे खुशी से भरे दिन मैंने ज़िन्दगी में कभी नहीं गुजारे । ऐसा लगता है जैसे कि इस समय मेरा घर है, मेरा परिवार है, सभी कुछ है !···· मेरी प्रिये····मेरी मधुरे····मेरी अबोध-बालिका, मैंने तुम्हें चार ब्लाउज़ों का लिनेन भेजा, उसे लेकर तुम इतनी परेशान क्यों हुईं ?··· फ़ेदोरा ने बतलाया था और तुम्हें कपड़े की जरूरत है । और, सचमुच तुम्हारे लिये कुछ भी भेज कर मुझे इतनी खुशी हुई है, इतनी खुशी हुई है कि तुम सोच नहीं सकतीं····इसलिये मेरे प्यार मेरी खुशी के लिये इतना

तो करो ही कि क्यों मुझे चोट पहुँचाओ और क्यों मुझसे नाराज़ होओ ?....तुम जानती हो मेरी छुछी ज़िन्दगी में जैसे कि भराव आ गया है ! अब मैं न सिर्फ़ अपने लिये, बल्कि तुम्हारे लिये भी जीता हूँ !....दूसरी बात यह है कि अब समाज में मेरी पूछ होने लगी है.... साहित्यिक-गोष्ठियाँ कराने वाले, उसी रताज़ायेव नाम के सरकारी-अधिकारी ने आज शाम को मुझे चाय की दावत दी। अब जल्दी ही एक बैठक होगी और उसमें कविता-कहानी वगैर पढ़ी-पढ़ाई जायेगी।....यह ठाठ है हम लोगों के ! देखा !....दोस्विदानिया, मेरी रानी !....और, हाँ, मैं यह पत्र तुम्हें महज़ यह जताने के लिये लिख रहा हूँ कि मैं बिल्कुल ठीक-ठाक हूँ।....सुनो, तेरेज़ा ने बताया है कि तुम्हें कसीदाकारी के लिये थोड़े से रंगीन रेशम की ज़रूरत है....सो, वह रेशम मैं खरीद लाऊँगा और जल्दी ही खरीद लाऊँगा...मेरी रानी, ज़्यादा से ज़्यादा कल तक रेशम तुम्हारे पास पहुँच जायेगा..... इस बीच तो मैंने यह भी पता लगा लिया है कि वह मिलेगा कहाँ ?

तुम्हारा सच्चा मित्र
मकार देवुश्किन,

जून २२

मेरी प्यारी वारवरा–अलेक्सेयेवना,

हमारे घर में इधर एक बहुत ही दर्दनाक घटना घटी है ...और, मुझे इस दुखमयी घटना की सूचना तुम्हें देनी है।....गोर्शकोव का छोटा बच्चा आज सबेरे चार बजे जाता रहा। मरा लाल-बुखार या ऐसी ही किसी दूसरी बीमारी से ! मैं धीरज बँधाने के लिये परिवार में गया....उस परिवार के लोग बड़ी ग़रीबी में दिन काटते हैं....खुद कमरा ही

वे बेचारे..../

ऐसा गंदा-गंदा रहता है कि कुछ न पूछो! और, इसमें ताज्जुब भी क्या? लोग इतने हैं, कमरा एक है···बीच-बीच में शोभा के लिये पर्दे ज़रूर खड़े कर दिये गये हैं।

तो, मैं पहुँचा तो एक सादा-सा साफ़-सुथरा ताबूत तैयार मिला।····ताबूत बना-बनाया ख़रीदा गया था। लड़का नौ साल का था, और, कहते हैं कि बड़ा होनहार था।····उसके परिवारवालों को देखकर मन बहुत दुखा, वारेन्का। माँ रोई नहीं, बस, जैसे टूट गई। वैसे इतने खाने वाले मुँहों में एक बच्चे की गिनती घटने से शायद परिवार के लोगों को कुछ राहत ही मिली हो!····कहने को दो बच्चे अभी हैं·· एक गोद का छोटा बच्चा है और एक कोई छः साल की नन्हीं बच्ची!···· तो, बच्चों का दुख देखा नहीं जाता····खास तौर पर, अगर बच्चे अपने हों और आप उनकी माँग पूरी करने में असमर्थ हों, तब तो यह दुख और दुगुना हो जाता है।····

बस, तो पिता एक पुराना-धुराना, फ्रॉक-कोट पहिने, टूटी-फूटी कुर्सी पर बैठा रहा और आँसू बह-बहकर उसके गालों पर आते रहे। यह आँसू शायद पीड़ा के नहीं रहे, शायद यों ही बहते रहे····शायद आँखों में कोई तकलीफ़ है।····आदमी वह अजीबोग़रीब है····बात करो तो चेहरा लाल हो उठता है····परेशान हो जाता है····और, ज़बान जैसे कोई जकड़ देता है।····

दूसरी ओर, बच्ची का चेहरा उतरा रहा और बेचारी विचारों में डूबी ताबूत के पास खड़ी रही। ···वारेन्का, बच्चों का इस तरह सोच में डूबना, मुझे जरा भी पसंद नहीं है····जाने क्यों कुछ अच्छा नहीं लगता।····बच्ची की गुड़िया फ़र्श पर पड़ी रही। खुद मुँह में उँगली दबाये, कुछ यों बेख़बर बनी रही, जैसे कि उसे किसी ने वहाँ कील दिया हो।····मकान-मालकिन ने उसे मिठाई दी और उसने ले भी ली, पर

हाथ में ही लिये रही, खा नहीं सकी।... यह सभी कुछ बहुत सदमे की बात है... है न वारेन्का ?

मकार देवुश्किन

जून २५

प्रिय मकार-अलेक्सेयेविच,

मैंने तुम्हारी किताब लौटाल दी। बहुत ही बकवास लगी—एकदम उबकाई लानेवाली। ऐसा हीरा तुमने खोद कहाँ से निकाला ?....मज़ाक छोड़ो, मगर ऐसी चीज़ें क्या तुम्हें सचमुच पसंद हैं, मकार-अलेक्सेयेविच ?... अभी उस दिन तुमने मेरे पढ़ने के लिये कुछ भेजने का वायदा किया था....हम दोनों पारी-पारी से पढ़ेंगे उसे....अच्छा, फ़िलहाल, अलविदा !....इस समय ज्यादा लिखने की गुंजाइश नहीं।

वा० दो०

जून २६

प्यारी वारेन्का,

सच कहूँ तो वह किताब मैंने पढ़ी नहीं, मेरी रानी ! थोड़े से पन्ने इधर-उधर अलटे-पलटे थे। लगा कि बक्वास है हँसने-हँसाने के लिये। और, भेज दी कि थोड़ा मज़ाक रहेगा कभी ख्याल भी नहीं हुआ कि तुम उसे पसंद भी करोगी।

लेकिन, रताज़्यायेव ने मुझे कोई बढ़िया किताब देने का वायदा किया है। तुम्हें पढ़ने को बहुत मिलेगा। यह रताज़्यायेव नाम का आदमी बड़ा पढ़ाकू है। गहरा विद्वान है। ख़ुद लिखता-विखता भी है ! और, सचमुच कितना अच्छा लिखता है ! क़लम में जादू है। हर शब्द को प्राण पहिना

देता है। यानी, फ़ाल्दोनी या तेरेज़ा से बातें करते समय मेरे मुँह से जो शब्द खोखले, मामूली और अभद्र लगेंगे, वे ही उसे दे दो तो अनूठे लगने लगें ... क़माल की शैली है! मैं उसके यहाँ गोष्ठियों में अक्सर ही जाता हूँ....फिर तो यह होता है कि हम बैठे धुआँ उड़ाते रहते हैं, और वह कभी-कभी सवेरे पाँच बजे तक अपनी रचनायें सुनाता रहता है।.... साहित्य की शानदार दावत समझो....मजा आ जाता है....फूल पर फूल खिलते चले जाते हैं कि चाहो तो हर बात से गुलदस्ता सजा लो!.... और, आदमी इतना मोहब्बती है, दूसरे के दुख-सुख का इतना खयाल रखने वाला है और सबके इतना काम आने वाला है कि बस! और, उसका और मेरा भला क्या मुक़ाबिला ...उसके सामने कुछ भी तो नहीं हूँ मैं....बिल्कुल कुछ नहीं। उसका नाम है लेकिन, मुझे भला कौन जानता है! ...मेरा जैसे कोई अस्तित्व ही नहीं है। इस पर भी वह मेरे प्रति बहुत उदार रहता है....जरूरत होती है तो मुझे मौक़े दे देता है, और मैं उसके लिये चीजें उतार देता हूँ।....मगर, मेरी रानी, इससे यह मत समझना कि इस उदारता के बहाने वह मुझसे काम निकालता है! ऐसा तो सोचना भी बकवास होगा, उस पर कलंक लगाना होगा! मैं यह नक़लें सिर्फ़ अपनी खुशी और अपने सन्तोष के लिए करता हूँ, और सचमुच करना चाहता हूँ; और, वह मुझसे यह काम लेता है क्योंकि इससे मुझे सुख मिलता है, आनंद प्राप्त होता है!....कोमल-भावना की पकड़ मेरे पास खासी है, और इस मानी में मुझसे चूक कभी नहीं होती, मेरी रानी।....आदमी नेक और दयालु है....साथ ही लेखक अद्भुत है।

वारेन्का, साहित्य बहुत बड़ी चीज़ है....सचमुच बहुत शानदार चीज है!....यही बात मैंने उन लोगों से परसों सीखी....उनका कहना है कि उसमें बड़ी गहराई होती है! साहित्य की हर कृति में जाने

कितनी सीखें होती हैं, जाने कितना रक्षा-भाव होता है, और जाने क्या-क्या होता है ! फिर, यह कि लिखी भी खूब होती हैं !.... साहित्य को तो तुम तस्वीर समझो....एक खास तरह की तस्वीर.... एक खास क़िस्म का आईना।....साहित्य भावावेश को वाणी देता है, बारीक से बारीक आलोचना सामने रखता है, शिक्षा देता है, और ज़िन्दगी का लेखा-जोखा होता है।... यह सभी तरह की बातें मैंने उन्हीं लोगों से जानीं !

मेरी रानी, साफ़ कहूँ तो मैं, औरों की तरह पाइप का धुआँ उड़ाते हुये, उनकी बातें तो गुटुर-गुटुर सुनता रहता हूँ, मगर बहस छिड़ते ही मामला एकदम गोल हो जाता है। कुछ समझ मे नहीं आता ! हाँ, समझदार बनने की कोशिश ज़रूर करता हूँ। लेकिन, मन ही मन दया बहुत आती है कि कभी कभी शाम की शाम दिमाग़ लड़ाते बीत जाती है और एक शब्द पल्ले नहीं पड़ता। लकड़ी के कुंदे की तरह बैठा रहता हूँ ! फिर, वारेन्का, मन ही मन दुख होता है कि मेरे पास इतनी समझ क्यों नहीं, क्यों 'बूढ़े बेवकूफ़ का दुनिया में कोई जबाब नहीं।' कहावत मुझ पर ही पूरी उतरती है।....आखिर अपने खाली समय में मैं करता क्या हूँ—कुत्ते की तरह टाँगे फैलाकर सोता हूँ !....अब सवाल उठता है कि ऐसे में मुझे करना क्या चाहिसे ? जबाब है कि मुझे कुछ-न-कुछ अच्छा काम करना चाहिये....यानी, बैठकर कुछ लिखना-पढ़ना चाहिये। इससे मेरा भला होगा और दूसरों को सीख मिलेगी। सचमुच यह तो होगा, रानी !... तुम्हें पता है, यह लेखक लिखकर कितना-कितना कमाते हैं ?....दूर क्यों जाओ, रताज्यायेव को ही लो....एक पन्ना लिखना उसके लिए कुछ भी नहीं है, और वह दिन में पाँच पन्ने तक लिख लेता है....तुम जानती हो कितना मिलता है उसे उसके लिये ? तीन रूबल मिलते हैं... यह उसका अपना कहना है ! और, अगर कहानी ज़रा और दिलचस्प और उत्सुकता जगाने वाली हुई तो रक़म पाँच सौ

तक पहुँचती है…मैं कहता हूँ कि कोई इन्कार करने की हिम्मत तो करे। अगली बार हज़ार न गिना लिये, तब कहना।…तुम जिसे बकवास कहती हो, वैसा यहाँ कुछ नहीं है, वारवरा-अलेक्सेयेवना!…उसके पास तो कविताओं से भरी पूरी की पूरी कॉपी है, और महज़ इस कॉपी की क़ीमत वह सात हज़ार समझता है…कहता है कि पाँच हज़ार तो लग चुके हैं…लेकिन उसकी सही क़ीमत तो वही जानता है।…वैसे मैंने उससे कितना कहा कि पाँच हज़ार मिलते हैं, तो ले लो और बात ख़त्म करो…बाबा, पाँच हज़ार नक़द मिल रहे हैं!…लेकिन, वह कि अपनी ज़िद पर अड़ा हुआ है—नहीं, देखना, यही लोग सात हज़ार देंगे!…कहो, वह है न आदमी चालाक, मेरी रानी?

और, इन बेकार बातों से क्या! मैं 'इतालवी-वासनायें' नाम की उसकी पुस्तक का एक अंश यहाँ दे ही क्यों न दूँ! फ़ैसला तुम खुद कर लेना।—

'व्लादीमिर चालू हो गया, क्योंकि उसकी नसों में वासना उबाल खाने लगी। वह चिल्लाकर बोला…'काउंटेस, आप जानती हैं कि मेरा प्यार कितना भयानक है, और मेरा पागलपन कितना बेहदोहिसाब?…नहीं! मेरे सपनों ने मेरे साथ छल नहीं किया!…मैं आपके प्यार में पागल हूँ…आपके पति के शरीर का कुल का कुल रक्त भी मेरी आत्मा की उद्दाम तृषा को शांत नहीं कर सकता! मेरे सीने में जो आग धधक रही है, उसके आगे कोई चीज़ आ नहीं सकती…वह आग मुझे ही सोखे जा रही है…उफ़…ज़िनाइदा…मेरी ज़िनाइदा!'

'व्लादीमिर!'…अपने आपे से बाहर होते और उसके सीने पर ढहते हुये, काउंटेस ने फुसफुसाते हुये कहा।

'व्लादीमिर!'…स्मेलकी खुशी से खिलते हुये एक बार फिर चिल्लाया। इस बीच वह रह-रहकर हाँफने लगा; वासना की वेदी पर प्यार के दीपक की लौ ली देने, और दोनों बदक़िस्मत प्रेमियों के हृदय (टूक-टूक) करने लगी।

'व्लादीमिर !'—उसने होश खोते हुये फिर फुसफुसाकर कहा। दूसरी ओर, उसकी साँस फूलने लगी, गाल तमतमा उठे और आँखों से आग छलकने लगी।

इस तरह एक नये और भयंकर मिलन का चक्र पूरा हुआ।

आधे घंटे बाद बूढ़ा काउंट अपनी पत्नी के निजी कमरे में दाखिल हुआ। बोला—'मेरी जान, हम अपने प्यारे मेहमान के लिए समोवार तैयार नहीं करेंगे भला ?'''और, उसने उसके गाल को हल्के से थपथपा दिया।'....

अब बतलाओ, तुम्हारी क्या राय है, वारेन्का ! बातें कुछ ओछी लगीं तुम्हें शायद''''हैं न ?''''इस पर भी यह तो मानोगी ही कि लिखा खूब है ! आदमी का वाजिब हक़ तो आदमी को देना ही चाहिये !''''और, लो, उसकी 'येरमाक और जुलेखा' नाम की एक दूसरी कहानी एक दूसरा उद्धरण सामने है।'''रानी ज़रा कल्पना करो कि साइबेरिया का जंगली, भयंकर विजेता और साइबेरिया के ज़ार कुचुम की बेटी से प्यार करे ! '' खैर, देखो कि 'इवान-भयानक' के काल की बातें आज भी कितनी ताज़ी है !''''तो, सुनो—

'तुम मुझे प्यार करती हो, जुलेखा ?''''ज़रा एक बार फिर कहो ''' एक बार फिर कहो कि तुम मुझे प्यार करती हो।'

'मैं तुम्हें सचमुच प्यार करती हूँ, येरमाक'—जुलेखा ने होठों ही होठों कहा।

'उफ़''''उफ़''''तुम्हारी इस बात से मेरी खुशी का वारापार नहीं रहा। तुमने इन शब्दों के साथ ही मुझे क्या नहीं दे दिया !''''तुमने वह सब कुछ दे दिया, जिसके लिये मेरी आत्मा जन्म के क्षण से आज तक भटकती रही है।''''शायद इसीलिये तुम मुझे यहाँ तक ले आये हो, मेरे भाग्य-ध्रुवतारिका ! शायद इसीलिये यूराल-पर्वत के इस पथरीले घेरे के

पार अपने पीछे-पीछे ले आई हो तुम मुझे ! अब सारी दुनिया को दिखलाऊँगा मैं अपनी जुलेखा को ! दुनिया की कोई ताक़त अब मुझे नकार न सकेगी। काश कि दुनिया वाले उसके कोमल हृदय के अन्तराल में दबी आग को समझ सकते··· काश कि दुनिया वाले उसके नन्हें-नन्हें आँसुओं में लहरें लेती कविता को पढ़ सकते···ओह, पी लेने दो···पी लेने दो, मुझे उस स्वर्गीय मदिरा की दो-चार-दस बूँदें !'

'येरमाक'—जुलेखा बोली— दुनिया बड़ी बेरहम है। दुनियावाले इन्साफ़ नहीं जानते। वे हमें अपने बीच से खदेड़ कर दम लेंगे ! वे हम पर लानतें बरसायेंगे, मेरे राजा। और···और अपने पिता के खेमों के बाहर की बर्फ़ की गोद में पली-बढ़ी एक बेसहारा औरत तुम्हारे झूठे, खोखले, भावनाहीन, परम्परावादी, अभिमानी समाज में टूटकर रह जायेगी। तुम्हारे समाज के लोग न कभी उसे समझ पायेंगे और कभी न उसके दिल में हहराते हसरत के तूफ़ान को .'

'यह होगा ? ·· अगर यह होगा तो कज्ज़ाकों की तलवारें उनके सिरों पर नंगा नाच करेंगी··· हवा में सनसनायेंगी'—येरमाक ने कहा और उसकी आंखों से चिनगारियाँ फूटने लगीं।'

और ज़रा सोचो, वारेन्का, कि कैसा लगा होगा इस आदमी को जब उसने सुना होगा कि जुलेखा को छुरी मार दी गई। हुआ यह कि रात के अँधेरे में अन्धा कुचुम, चोरों की तरह येरमाक के खेमे में घुसा और उसने बेटी की जान ले ली। फिर; अपने राज्य-सिंहासन और शाही तलवार को छीनने वाले पर उसने जान लेवा वार किया।

'मुझे प्यार है उस बिजली की कौंध से, जो पत्थर से टकराने के बाद मेरे हाथ के इस्पात में पैदा होती हैं'—अपनी तलवार को जादुई-चट्टान पर तेज करते हुये क्रोध से उबलते येरमाक ने कहा—'मैं प्यास से तड़प रहा हूँ··· मुझे कुचुम के कलेजे का खून चाहिये··· मैं उस शैतान के बच्चे की बोटी-बोटी उड़ा दूँगा।'

मगर, फिर उससे जुलेखा की जुदाई सही नहीं जाती। वह इरतिश में डूब मरता है और कहानी खत्म हो जाती है।

और; लो अब थोड़ा-सा हँस लो—

'इवान—प्रोकोफ़ियेविच-ज़ेह्ल्तोपूज़ को जानते हैं आप? यह आदमी वह है जिसने प्रोकोफ़ी-इवानोविच का पैर काट-खाया। इवान-प्रोकोफ़ियेविच आदमी ऐसा है कि उससे भगवान बचाये…मगर, कुछ अजूबा सिफ़तें भी हैं उसमें! इसके उल्टे प्रोकोफ़ी-इवानोविच को मूलियों और शहद का बड़ा शौक़ है। जब पेलागिया-अन्तोनोवना से उसकी दोस्ती थी, तब…इस पेलागिया-अन्तोनोवना को जानती हो तुम? यह वह औरत है जो पेटीकोट हमेशा उलटकर ही पहिनती है।'

कैसी ठिठोली है इसमें वारेन्का, कैसी खालिस ठिठोली है। उसने यह चीज़ पढ़कर सुनाई तो हम हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। ऐसा धुआँधार आदमी है वह…ईश्वर उसकी आत्मा को क्षमा करे। शायद इसमें कल्पना और फूहड़पन का हल्का पुट है। लेकिन, सभी बातें भोले भाले ढङ्ग से कही गई हैं और स्वतन्त्र विचार या क्रान्तिकारी-विचारों जैसा इनमें कहीं कुछ भी नहीं है। इतना तो कहना ही पड़ेगा, वारेन्का, कि रताजयायेव अच्छा आदमी है; और इसीलिये शानदार लेखक है। लेखकों के विषय में अगर इतना भी कहा जा सके तो क्या कहने हैं।

और, आदमी के दिमाग़ में ख्याल भी कैसे-कैसे बेहूदे आते हैं… मैं सोचता हूँ कि मैं…काश कि मैं भी कुछ लिखूँ! ज़रा सोचो कि तुम एक पुस्तक देख रही हो…वह पुस्तक कविता का संग्रह है और उसमें कवितायें हैं मकार-देवुश्किन की! मेरी नन्हीं देवदूती, अगर सचमुच ऐसा हो जाये तो भला क्या कहो तुम…कैसा लगे तुम्हें? मगर, जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं तो नेव्स्की-प्रॉस्पेक्ट में निकलने-बैठने में भी हिचकूँ! बड़ा अज़ीब-अजीब सा लगे कि कोई मुझे देखे और कहे—वह…वह जा रहा

है देवुश्किन,··· कवि और लेखक देवुश्किन ! कोई कहे—'जा रहा है खुद जीता जागता देवुश्किन !'····मैं सोचता हूँ कि उस हालत में अपने इन जूतों का भला क्या करूँ मैं ! यहाँ बात-बात में यह बता दूँ कि इन जूतों में हमेशा जोड़ लगे रहते हैं और तल्ले फड़ाफड़ करते चलते हैं। यानी, कैसा भयानक हो कि लोग मुझे देखें और अचरज से भर कर कहें—'कवि और साहित्यकार देवुश्किन ऐसा फटे-पुराने, सड़े हुये जूते पहिनता है।' फिर ऐसे में मुझे युवरानी देखें तो भला क्या कहें ? वैसे मैं नहीं सोचता कि उनकी निगाह ऐसी चीजों पर पड़ेगी भी, क्योंकि उन्हें किसी के ऊतों-जूतों और सो भी किसी दफ़्तरी-बाबू के ऊतों-जूतों की क्या परवाह ! यों तो जूतों-जूतों में फ़र्क़ भी होता है····लेकिन, इस पर तो मेरे दोस्त तक मुझे छोड़ देंगे और इनमें सबसे पहिले किनाराकशी करेगा रताज्यायेव ! वह अकसर तो क्या, करीब-करीब हर दिन ही युवरानी ब० के यहाँ जाता है और उसकी वहाँ बड़ी खातिर होती है। किसी तरह का कोई तकल्लुफ़ नहीं बरता जाता। उसका कहना है कि युवरानी बहुत मजेदार औरत हैं····साहित्य उनकी रग-रग में बसा है।··· कैसा जहीन आदमी है रताज्यायेव !

और बहुत हुआ····बात खत्म करो····इतना तो मैंने तुम्हारे हँसने हँसाने के लिये लिखा, यानी इस तरह खासी बकवास कर डाली मैंने। लेकिन, इसकी भी एक वजह है, और वजह है कि मेरी तबीयत इस समय बड़ी उमङ्ग में है···

हम सभी ने रताज्यायेव के साथ खाना खाया, और उन बदमाश लोगों ने तो शराब भी ढाली।····मुझे यह बात तुम्हें लिखनी नहीं चाहिये थी; मगर, लिख दी तो तुम बुरा न मानना। खाली बातें ही बातें तो हैं, और क्या है ?

किताबें मैं तुम्हारे पास भेज दूँगा····जरूर भेज दूँगा। ·· पॉल-द-

कोके की एक किताब घर में घूम रही है....लेकिन वह तुम्हारे लिये नहीं, हरगिज़ तुम्हारे लिये नहीं....सरसरी निगाह से उलटनेलायक़ तक नहीं ! कहते हैं कि इस पुस्तक पर पीतर्सबुर्ग के सभी आलोचक थू-थू कर रहे हैं....।

हाँ, एक पौंड मिठाई तुम्हारे लिये भेज रहा हूँ। ख़ासतौर पर तुम्हारे लिये ख़रीदकर लाया हूँ। प्रेम से खाना; और, जब खाना तो मुझे याद करना। लेमनजूस, रानी; चूसने की चीज़ होते हैं, दाँत से काटकर खाने की चीज़ नहीं।....काटकर खाने से दाँत ख़राब हो जाते हैं। और, हाँ, टीनबन्द-फल पसन्द हैं तुम्हें ? पसन्द हो तो लिखना !....अच्छा, दो स्वदानिया, वारेन्का दोस्विदानिया !....प्रभु यीशु सदा तुम्हारी रक्षा करें।

तुम्हारा शुभैषी,
मकार-देवुश्किन—

जून २७

प्यारे माकार—देवुश्किन,

फ़ेदोरा कहती है कि ऐसे कुछ लोग हैं जो मेरी सहायता कर सकते और मुझे किसी अच्छे घर में गवर्नेस की जगह दिला सकते हैं। मेरी इच्छा भर होनी चाहिये। अब तुम बताओ कि मैं ऐसी कोई नौकरी कर लूँ या नहीं ? बात यह है कि अगर मैं कोई काम कहीं कर लूँगी तो तुम पर मेरा बोझ न रहेगा, क्योंकि तनख़्वाह मिलेगी। लेकिन, दूसरी तरफ़ यह है कि किसी नये घर में क़दम रखने की बात की कल्पना से भी दिल कुछ दहलता-सा है। साफ़ है कि मुझे नौकरी देने वाला हर आदमी ज़मींदार क़िस्म का कोई बड़ा आदमी होगा, और मुझसे मेरी ज़िन्दगी के बारे में हज़ार तरह के सवाल पूछेगा। और, पूछेगा तो मैं भला क्या कहूँगी ? फिर, मैं तो स्वभाव से ऐसी हूँ, जैसे जंगल

में रहने वाला जानवर। मुझे लोगों को देखकर दहशत होती है।···मैं जहां एक लम्बे अर्से तक रहती हूँ, वहीं की हो रहती हूँ, और हज़ार मुसीबतों के बाद भी मुझे वहीं अच्छा लगता है। फिर, मुझे जहां जाना होगा, वह जगह शायद दूर होगी। उस पर यह पता नहीं कि वहां करना क्या पड़ेगा? शायद बच्चों की देख-रेख करनी पड़ेगी। शायद वे मेरी सम्हाल में न आयेंगे। शायद दो वर्षों में उनके लिये दो गवर्नेसें रखी जा चुकी होंगी। इसीलिये तो कहती हूँ कि सलाह दो, मकार-अलेक्सेयेविच, कि मैं ऐसी कोई नौकरी करूँ या न करूँ?···और, इधर तुम यहां आये क्यों नहीं? सच कहूँ तो इन दिनों तो तुम कहीं नज़र ही नहीं आये। तुम्हारी झलक मिली भी तो मिली सिर्फ़ इतवारों को, और सो भी गिरजे में। तुम भी मेरी तरह जंगल के परिंदे मालूम होते हो। लेकिन, तुमसे मेरी नातेदारी है; और इस पर भी तुम मुझे प्यार नहीं करते, मकार-अलेक्सेयेविच, और मैं हूँ कि अकेले दुखती रहती हूँ। उस पर भी, शाम की कुछ न पूछो! शाम आती है तो दिल में खास तौर पर उदासी घोलती चली आती है। मैं अकेली और बिल्कुल अकेली बैठी रहती हूँ। अक्सर फ़ेदोरा कहीं-न-कहीं चली जाती है। ऐसे में मैं सोचती रहती हूँ, सोचती रहती हूँ कि बीते हुये सारे दुख-सुख जैसे आंखों के आगे आ-खड़े होते हैं। हर जाना-पहिचाना चेहरा सामने आ जाता है। उसमें भी, मां तो अक्सर ही पास चली आती हैं। फिर, कैसे-कैसे सपने देखती चली जाती हूँ!···लगता है, तन्दुरुस्ती बिल्कुल बिगड़ गई है, और मैं एकदम कमजोर हो गई हूँ। आज सवेरे सोकर उठी तो एकाएक बेहोश हो गई। कभी-कभी बहुत ही बुरी खाँसी आती है। ख्याल है कि जल्दी ही मेरी ज़िन्दगी का चिराग़ बुझ जायेगा। और, अगर ऐसा हो जायेगा तो कौन आंसू बहायेगा मेरे लिये? मेरे ताबूत के साथ? फिर, शायद मेरा दम निकलेगा

किसी अजनबी जगह, किसी अजनबी घर में !…हे प्रभु, कितना दर्द है ज़िन्दगी में !…

तुम मुझे हर समय मिठाई क्यों खिलाते रहते हो भला, मकार-अलेक्सेयेविच ? समझ में नहीं आता कि इतने रूबल कहाँ से आते हैं तुम्हारे पास ! इतना खर्च न किया करो और रूबल बचाया करो मेरे मित्र !…

फ़ेदोरा के पास एक कम्बल बिकाऊ है। उस पर क़सीदाकारी मैंने की है। फ़िलहाल; पचास रूबल मिल रहे हैं उसके। मज़े की क़ीमत मिल रही है। इतनी तो सोची भी नहीं थी। पचास रूबलों में से तीन रूबल मैं फ़ेदोरा को दे दूँगी और एक सादा-सा गर्म फ्रॉक अपने लिये सिला लूँगी। और हाँ, एक वास्कट बनवाऊँगी तुम्हारे लिये…बनवाऊँगी क्या, खुद ही बना दूँगी…किसी अच्छे कपड़े की।…

*और हाँ, फ़ेदोरा ने एक पुस्तक खरीदी है—'इवान बेल्किन की कहानियाँ।' इसे मैं तुम्हारे पास भेज रही हूँ। चाहना तो पढ़ लेना। लेकिन देखो, न तो किताब गंदी करना और न इसे अर्से तक अपने पास डाल रखना !…दो साल पहिले मैंने माँ के साथ यह कहानियाँ पढ़ी थीं, इसीलिये इस बार इन्हें अकेले पढ़ने की बात आई, तो मेरा मन रहे-रहे एकदम उदास हो उठा।

और, सुनो, तुम्हारे पास कुछ पढ़ने लायक़ किताबें हों तो मेरे पास भेज देना। हाँ, रताज़ग्रायेव की किताबें हों तो रहने देना। छपी होंगी तो उसने तुम्हें यों भी दी ही होंगी। लेकिन, पता नहीं तुम्हें कैसे अच्छी लगेंगी वे; मकार-अलेक्सेयेविच ? ऐसी कूड़ा होंगी कि बस।

अच्छा, अब दोस्विदानिया…काफ़ी गपशप हो ली…वैसे मेरा मन दुखी होता है, तो मुझे गप्पें मारना अच्छा लगता है। यह गप्पें दवा का

*१८३० में पूश्किन द्वारा लिखित कहानी-संग्रह—

काम करती हैं, लेकिन इनके बाद जी जैसे हल्का हो जाता है, और मन का बोझ जैसे उतर-सा जाता है।

बस, तो दोस्विदानिया···प्रिय मित्र, दोस्विदानिया !

तुम्हारी,
वा० दो०

जून २८

वारवरा अलेक्सेयेवना-मेरी सोनचिरैया,

तुम्हें शर्म नहीं आती कि तुम अकसर ही इस तरह दुखी हो जाती हो और सिर झुकाकर बैठ जाती हो। खैर, हटाओ···हटाओ, मेरी देवदूती ! ऐसे-ऐसे ख्याल तुम्हारे दिमाग़ में आते ही कैसे हैं···आते ही क्यों हैं ? तुम ज़रा भी बीमार नहीं हो···मेरी रानी, तुम ज़रा भी बीमार नहीं हो ! तुम तो फूल की तरह हो··· खिले हुये फूल की तरह हो ! शायद चेहरे पर थोड़ा पीलापन है, लेकिन इस पर भी खिली हुई ··· , और, तुम्हारे यह सपने··· और तुम्हारी यह कल्पनायें···कि···शर्म करो···भाड़ में झोंको इन्हें ! ज़रा बतलाओ कि मैं कैसे चैन से सोता हूँ, और मुझे ये सपने-वपने क्यों नहीं सताते ? ज़रा मुझे देखो ! मैं घोड़े बेचकर सोता हूँ। कैसा हट्टा-कट्टा और जवानों की तरह कसा हुआ हूँ। हाँ, सो तो मैं हूँ !···खैर, छोड़ो यह बकवास वारेन्का ! अपने को साधो ज़रा। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे दिमाग़ में क्या है, और क्यों तुम इस तरह घुलती और घुटती रहती हो। अब यह सब न हो, तुम्हें मेरी क़सम।···जहाँ तक गवर्नेस की उस नौकरी का सवाल है; नहीं, नहीं कभी नहीं, ऐसी किसी नौकरी का ख्याल भी तुम्हारे दिमाग़ में नहीं आना चाहिये ! आखिर तुमने ऐसा सोचा भी क्यों और कैसे ? फिर जगह दूर होगी ! नहीं, मेरी प्रिये, यह मुझे पसंद नहीं···मैं अपनी पूरी ताक़त

से इसका विरोध करूँगा। मैं अपना फ्रॉक-कोट बेच दूँगा और कमीज़ की आस्तीनें झुलाता सड़कों पर घूमता फिरूँगा, मगर तुम्हें किसी तरह की कोई तकलीफ़ न होने दूँगा।····नहीं, वारेन्का, नहीं, यह काम तुम्हारे लायक़ नहीं! यह बेवकूफ़ी की बात है···सचमुच बेवकूफ़ी की बात है! ख्याल है कि यह सभी कुछ फ़ेदोरा की कारस्तानी है, और उसी गधी ने तुम्हें यह सब सुझाया है!····उसका यक़ीन न करना, मेरी रानी, उसका यक़ीन न करना। हो सकता है कि उसके बारे में कितना ही कुछ ऐसा हो, जिसका तुम्हें पता ही न हो। वह बुद्धू है।' उसकी ज़बान हाथ भर की है; और उसे खोद-बीन करने की आदत हैं। उसकी इसी खोद-बीन और टंटेर बाज़ी ने उसके पति की जान ले ली। शायद उसकी ऐसी ही किसी बात पर तुम चिढ़ उठीं हो!····लेकिन, नहीं, मेरी रानी, नहीं, तुम किसी भी क़ीमत पर यह गवर्नेस-ववर्नेस की बात मत सोचो। अगर, तुम ऐसा करोगी तो मेरे लिए दुनिया में क्या बाक़ी रह जायेगा····मैं भला क्या करूँगा?····नहीं, वारेन्का, नहीं····तुम यह बात अपने चित्त से पूरी तरह निकाल ही दो! आखिर यहाँ तुम्हें क्या कमी है? फिर, फ़ेदोरा और मैं, यानी हम दोनों तुम्हें देखकर कितने सुखी और प्रसन्न होते हैं। दूसरी तरफ़, हम दोनों भी तो तुम्हें पसंद हैं! इसलिये जैसे आराम से जी रही हो, वैसे ही क्यों न आगे भी जीती जाओ? मैं कहता हूँ कि चाहो तो लिखो-पढ़ो और सीना-पिरोना करो; और, चाहो तो सिर्फ़ लिखो-पढ़ो और सीना-पिराना छोड़ दो····मगर; यहाँ से आओ-जाओ कहीं नहीं!····जाने का तो अब से नाम ही न लो! यह चलेगा नहीं! यानी, तुम कहोगी तो मैं तुम्हारे मन की किताबें ला दूँगा, तुम कहोगी तो मैं फिर साथ-साथ टहलना शुरू कर दूँगा, मगर, यह सब नहीं सुनूँगा! देखो अक़्ल से काम लो और यह बेअक़्ली की बातें हमेशा-हमेशा के लिए अपने दिमाग़ से निकाल दो! मैं तुमसे आकर मिलूँगा····जल्दी ही तुमसे मिलने आऊँगा!····

क्षमा करना कि मेरे मन में जो बात है, वह मैं तुम्हारे सामने रख रहा हूँ····मजबूरी है, रखनी ही पड़ेगी··· यह तो बड़ी अपमानजनक बात है····प्रिये, यह तो सचमुच बड़ी अपमानजनक बात है····वैसे मैं कोई खास पढ़ा-लिखा आदमी तो हूँ नहीं···बस, इतना ही है कि मेरे लिए काला अक्षर भैंस बराबर नहीं है। मगर, फ़िलहाल, मैं अपनी नहीं, रताज़्यायेव की चर्चा चलाना चाहता हूँ। माफ़ी चाहता हूँ, रानी, मगर मुझे उसकी ओर से बोलना ही पड़ेगा····आखिर करूँ भी क्या! वह मेरा मित्र है। वह अच्छा लिखता है, सचमुच अच्छा लिखता है—बुरा तो कहीं से लिखता ही नहीं।····इस मामले में मैं तुमसे सहमत नहीं···· सच पूछो तो सहमत हो भी नहीं सकता। वह लिखता क्या है, फूल पर फूल खिलाता चला जाता है····बड़ी शक्ति होती है उसमें···क्या भाषा होती है····क्या विचार होते हैं, खराबी तो कोई ढूँढ़े नहीं मिलती। शायद तुमने उसकी रचनायें कभी मन से पढ़ी नहीं, वारेन्का! या, पढ़ी तो शायद चित्त ठीक नहीं रहा—शायद तुम फ़ेदोरा से नाराज़ रहीं या शायद किसी और बात पर दिमाग़ बौखलाया रहा। इसलिये, मेरी बात मानो, और उन्हें एक बार फिर ध्यान लगाकर, तबीयत से पढ़ो। तब पढ़ो जब मन खिला हुआ हो····मिसाल के लिये जब मुँह में लेमनजूस हो! वैसे यह मानने में मुझे कोई आपत्ति नहीं कि ऐसे लोग भी हैं जो रताज़्यायेव से अच्छा क्या, कहीं अच्छा लिखते हैं। मगर, इस पर भी कहना ही पड़ेगा कि रताज़्यायेव भी खासा लिखता है, यानी दूसरे लोग अच्छा लिखते हैं, तो वह भी कुछ बुरा नहीं लिखता। फिर, जो कुछ लिखता है, अपने बलबूते पर लिखता है····और इसी में उसकी भलाई भी है।····

अच्छा, दोस्वियदानिया, रानी! बस! आज बड़ा काम है।

लेकिन सुनो, मेरी सोनचिरैया, ध्यान रखना और बेकार की बातों

में उलझकर अपना मन खराब न करना। भगवान तुम पर हर तरह दया रक्खे।

मैं हूँ, तुम्हारा सच्चा मित्र,
मकार-देवुश्किन—

पुनश्च

पुस्तक के लिये बहुत-बहुत धन्यवाद। मैं भी पुश्किन की रचनायें पढ़ना चाहूँगा।

शाम के समय किसी वक़्त आज आऊँगा तुम्हारे यहाँ!

जुलाई १

प्रिय मित्र मकार-अलेक्सेयेविच,

वैसे यह तो ठीक है कि तुम सबके बीच यहाँ मेरी ज़िन्दगी भी क्या ख़ूब है! फिर सोचने-विचारने के बाद यह भी लगता है कि ऐसी अच्छी नौकरी से इन्कार करना भी ऐसी कोई अक़्ल की बात नहीं। उस हालत में कम से कम अपनी रोटी तो आप कमा सकूँगी। किसी अनजाने परिवार के लोगों का स्नेह प्राप्त करने की भरपूर कोशिश करूँगी, सो अलग से। यही नहीं, ज़रूरी होने पर मैं तो अपना स्वभाव तक बदलना चाहूँगी। पर हां, यह ठीक है कि अजनबियों के बीच जीना, उन्हें हर तरह ख़ुश रखना, और अपना-जैसा कुछ न मानना, मेरे लिये बहुत आसान न होगा। अगर; ख़ैर, ईश्वर सहायता करेगा। आखिर ज़िन्दगी भर संकोची और पूरी तरह आज़ाद बने रहने से भी काम कैसे चलेगा! इन सबकी शिकार मैं पहिले हो चुकी हूँ। बोर्डिङ्ग-स्कूल के ज़माने की याद आज तक है। मुझे ख्याल है कि इतवारों को मैं घर पर रहती तो बराबर धमाचौकड़ी मचाती रहती, और माँ के लाख डांटने पर भी मेरी उछलकूद में किसी तरह का कोई अन्तर न पड़ता! लेकिन, शाम होते

ही मन पर उदासी के बादल घिर आते कि अब तो बजते-बजते फिर स्कूल चला जाना पड़ेगा। वहाँ फिर हर चीज़ अजीब-अजीब लगेगी; फिर पाबंदी और सख्ती में रहना पड़ेगा और फिर सोमवार को मास्टर-नियों के ग़मज़दा चेहरे देखने पड़ेंगे! और, मेरा मन रोने-रोने को करने लगता। बस, तो इसके बाद मैं किसी कोने में छिप रहती और टेसुए बहाने लगती। मगर, फिर होते-होते बात ही बदल गई। अब स्कूल में इतना मन रमने लगा कि अपनी सहेलियों को छोड़कर घर आने की बात उठते ही आँखें भर-भर आने लगीं।....

और, सुनो न. यह भी क्या हुआ कि मैं तुम पर और फ़ेदोरा पर बोझ बनी रहूँ! यह तो बड़ी बुरी बात है। हाँ, मैंने स्थिति ज्यों की यों तुम्हारे सामने रखी, क्योंकि तुमसे भूठी सच्ची बातें करने का मेरा अभ्यास नहीं। मगर, क्या मैं देखती नहीं कि फ़ेदोरा मुँह-अंधेरे ही उठती है, और फिर दिन भर सफ़ाई-धुलाई करती रहती है? मगर, तुम तो जानते हो, पुरानी हड्डियां हैं, आराम तो चाहती ही होंगी। फिर, क्या मुझे सूझता नहीं कि तुम अपना कोपेक-कोपेक मुझ पर फूंक देते हो! और, इतना करते हो तुम अपनी कुछ नहीं-सी तनख्वाह के बल पर। तुम्हारा क्या, तुम तो मुझे निश्चित रखने के लिये अपनी पीठ पर का कोट तक बेचने को तैयार हो; और, कोई कारण नहीं कि मैं तुम पर या तुम्हारे स्नेह पर विश्वास न करूँ! लेकिन; देखो न; अभी तुम इस तरह फूले-फूले फिर रहे हो, क्योंकि भगवान ने छप्पर फाड़कर तुम्हें बोनस दे दिया है। लेकिन, ज़रा सोचो तो कि इसके बाद, इसके बाद क्या होगा? यह तो तुम जानते ही हो कि मैं बराबर बीमार ही बनी रहती हूँ! यानी, मेरे हज़ार चाहने पर भी मुझसे तुम्हारी-सी मशक्क़त तो होगी नहीं। उस पर, इतना काम भी कहाँ धरा है! ऐसे में मेरे लिये बचता ही क्या है? यही न कि तुम लोगों को इस तरह खटता देखूँ और खुद

घुलूँ-घुटूँ ! आखिर तुम दोनों में से किसी के भी काम मैं कैसे आ सकती हूँ ? इस पर भी मैं तुम्हारे लिये इतनी ज़रूरी क्यों हुँ ? मुझसे तुम्हारा कौन सा भला हुआ है ? मुझे तुमसे बड़ा मोह है··· तुम मुझे बहुत ही अधिक प्रिय हो··· लेकिन, करोगे, क्या मेरी क़िस्मत ही ऐसी है ! मैं प्यार दे सकती हूँ, पर प्यार के बदले कुछ करतब कर नही दिखला सकती । मैं तुहारे स्नेह की क़ीमत अदा नहीं कर सकती । इसलिये मेरा यहाँ रहना या न रहना कोई मतलब नहीं रखता; और, तुम भी मुझे अब क्यों रोको ? तो, इस सवाल पर नये सिरे से विचार करना और मुझे अपना आखिरी फ़ैसला बतलाना ।

तुम्हारे उत्तर को प्रतीक्षा में,
तुम्हारी,
वा० दो०

जुलाई १२

क्या बकवास है, क्या फ़िज़ूल की बातें तुमने की हैं, वारेन्का ! यानी, तुम अकेले बैठी नहीं कि दुनिया भर की खुराफ़ात तुम्हारे दिमाग़ में धँसी ! यानी, तुम्हें यह पसंद नहीं आता, और तुम्हें वह पसंद नहीं आता··· और; सभी कुछ उलट-पलट जाता है। लेकिन, मैं दुबारा कहता हूँ कि यह सभी कुछ सनक और दिमाग़ी-फ़ितूर है, और कुछ नहीं। ज़रा मुझे बतलाओ कि तुम्हें ज़रूरत और किस चीज की है····तुम्हारे पास कमी भला क्या है ? हम सभी एक-दूसरे को इतना स्नेह करते हैं, एक-दूसरे पर इस तरह जान छिड़कते हैं, और इतने प्रसन्न हैं ! भला और चाहिये क्या ? पराये लोगों के बीच कौन-सी नई नेमत मिल जायेगी तुम्हें ?····प्रिये, तुम्हें पता नहीं कि 'पराये' के मानी क्या होते हैं ! यह तो तुम मुझसे पूछो । मैं बताऊँ तुम्हें, मुझे परायों का अनुभव खूब

है। मैंने इनकी रोटी तोड़ी है। यह लोग बड़े ही बुरे होते हैं, वारेन्का। तुम जितनी भली और स्नेहमयी हो, यह उतने ही कीनागर निकलेंगे। वे अपनी डांट-फटकारों और निगाहों के जहर से तुम्हें मुर्दा करके छोड़ देंगे। दूसरी ओर ज़रा देखो, तुम्हें यहां कितना सुख है! तुम यहां, हम सबके बीच वैसे ही रहती हो, जैसे चिड़िया अपने किसी घोंसले में। फिर, अगर तुम इस तरह पर लगाकर उड़ जाओगी तो क्या होगा? हम बेचारों के तो दिल ही टूट जायेंगे जैसे! उस हालत में, मैं बूढ़ा-आदमी भला क्या करूँगा?····तुम्हारा कहना है कि तुम महत्त्वहीन हो।···· तुम्हारा कोई महत्त्व नहीं हो, यह मुमकिन कैसे है? तुम बेमतलब ज़रा भी नहीं हो····कहीं से नहीं हो! ज़रा सोचो····तुम्हारी अपनी सार्थकता है····मिसाल के लिये, इसी समय मैं तुम्हारी बात सोच रहा हूं, और मेरी तबीयत खुशी से खिली हुई है। फिर, मैं तुम्हें पत्र लिखता हूं, तो उनमें कभी-कभी अपनी सारी भावनायें उडेल देता हूं। फिर, उनके जवाब मुझे मिलते हैं।····यही नहीं, मैं तुम्हारे पहिनने के लिए अच्छी-अच्छी चीजें खरीदता हूं····एक टोप तक खरीद कर लाया हूं तुम्हारे लिये ····अब बतलाओ, तुम कैसे कह सकती हो कि तुम्हारा कोई महत्त्व नहीं। फिर, हज़ार काम यों भी बतलाती रहती हो तुम मुझे! अब कहो?···· और, यह तो सोचो कि मैं बूढ़ा आदमी एक-अकेले क्या करूँगा? किस लायक़ हूं मैं? शायद इस तरफ़ तुम्हारा दिमाग़ गया नहीं, वारेन्का। वैसे जाना चाहिए। तुम्हें अपने-आप से पूछना चाहिये कि मैं न रहूँगी तो यह बुड्ढा भला क्या करेगा?····जहां तक मेरा सवाल है, मैं आदी हो गया हूं तुम्हारे पास रहने का। यानी, अगर तुम यहां से चली जाओगी तो मेरे पास सिर्फ़ एक रास्ता रह जायेगा कि मैं जाऊँ और नेवा (नदी) में डूबकर अपनी ज़िन्दगी का खात्मा कर दूं, और बस! उफ़····वारेन्का····उफ़ लगता है, तुम चाहती हो कि मेरी लाश गाड़ी पर लदकर, बिना किसी संग-साथ के, वोल्कोवो-क़ब्रगाह ले जाई

जाये और वहाँ बूढ़ा फ़क़ीर-भर रहे कि उसके सामने क़ब्र में रेत भरी जाये। और, फ़िर, आखिर में वह भी अपनी राह ले ले कि दुनिया के दिलोदिमाग़ से मैं पूरी तरह उतर जाऊँ !··· मेरी रानी, गुनाह है, ऐसी बात सपने में भी सोचना गुनाह है !····

फ़िलहाल, मैं तुम्हारी किताब वापिस कर रहा हूँ— शायद तुम इस पर मेरी राय जानना चाहती हो···तो, सुनो—इससे अच्छी किताब मैंने ज़िन्दगी में कभी नहीं पढ़ी। मुन्नी, मैं तो अपने-आप से अक्सर ही सवाल करता रहता हूँ कि कैसा घामड़ हूँ मैं भी ? मैं आखिर अपने साथ करता क्या रहा हूँ ? आखिर किस जंगल से उखड़कर आया हूँ कि मैं कुछ भी तो नहीं जानता····सचमुच मैं कुछ भी तो नहीं जानता ? वारेन्का-मेरी, दो टूक बात यह है कि मैं तो बिल्कुल ही बुद्धू हूँ। मैंने बहुत ही थोड़ा लिखा-पढ़ा है····बस, नाम-मात्र भर को ही समझो···· पुस्तकें क़रीब क़रीब नहीं के बराबर-एक बहुत ही ज्ञानभरी पुस्तक 'इन्सान की तस्वीर;' दूसरी, 'एक लड़का, जिसने घड़ी की घंटी पर शानदार धुनें निकालना सीखा;' और, तीसरी, 'इवीक के सारस', और बस ! यानी, इतना पढ़ा है मैंने ! और, अभी-अभी तुम्हारी उस पुस्तक में पढ़ा है—'स्टेशन मास्टर !' यानी देखती हो, वारेन्का, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आदमी लम्बी-चौड़ी ज़िन्दगी गुज़ार आता है, मगर यह नहीं जानता कि पास ही, दायें एक ऐसी पुस्तक पड़ी है, जिसमें उसी की पूरी की पूरी दास्तान ऐसे कही गई है, जैसे कोई गीत सहज़-भाव से गा दे। और, उस किताब को पढ़ो तो अब तक टिपाई तक न पड़ने वाली चीज़ साफ़ होती चली जाती है। फिर तो आदमी को बातें याद हो जाती हैं, समझ में आ जाती हैं, और अनुमान बनकर कल्पना में ढलने लगती हैं।····इसके अलावा जो कुछ मुझे उस पुस्तक में पसंद आया, उसे कुछ यों समझो ··कभी-कभी किताबें यों लिखी जाती हैं कि

पढ़ते जाओ, पढ़ते जाओ, और ज़िन्दगी को ज़िन्दगी बीत जाये, मगर पल्ले कुछ न पड़े…उस पर, मेरा स्वभाव भी कुछ ऐसा है कि बहुत गहरी किताबें मेरी समझ आतीं भी नहीं। मगर, इस किताब के बारे में ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता। ऐसा लगा जैसे इसकी रचना स्वयं मैंने की है…और मन के अन्दर की बातें बतौर बात-चीत सामने रख दी हैं कि सब कुछ गटागट समझ की गले के नीचे उतरता चला जाता है!… सचमुच, पुस्तक बहुत सहज है…इसे—लिखने पर आता तो—मैं ही लिख डालता। भला इसमें ऐसा अजूबा भी क्या है? यानी, इसमें जो कुछ है, वही सब तो मैं उसी तरह अनुभव करता हूँ! उस बेचारे सैम्सन-व्यीरिन ने जो भुगता, वह क्या मैंने कभी नहीं भोगा? उफ़… हमारे बीच भी जाने कितने व्यीरिन हैं…और, देखो न, लेखक ने पूरे का पूरा वर्णन कितनी सफ़ाई से किया है!…रानी, मेरी तो पलकों से आँसू चू पड़े जब मैंने पढ़ा कि कैसे उसे पीने की आदत अड़ी; कैसे वह पी-पीकर बेहोश होने लगा; और, कैसे सारे दिन भेड़ की खाल पर पड़ा रहा, या अपनी आवारा बेटी की बात सोच-सोच कर कोट के गंदे सिरे से अपनी भीगी पलकें पोंछता रहा।… इसी को तो ज़िन्दगी कहते हैं कि पढ़ो, और बार-बार पढ़ो। साँसें बजती हैं इसमें। इसका सब कुछ मैंने खुद जिया है…मेरे चारों ओर है…हर ओर है। मिसाल के लिये अपनी तेरेजा या बेचारे क्लर्क को ही लो…क्या वह एक दूसरा व्यीरिन नहीं है, अगरचे कि उसका नाम गोर्शकोव है। हम सभी की स्थिति एक है, और यह सभी कुछ हममें से किसी के भी जीवन में घट सकता है। मैं कहता हूँ कि यही गति (नेव्स्की) या बांध पर रहनेवाले किसी काउंट की भी हो सकती है—यह दूसरी बात है कि उसकी ऐंठ और अकड़ के कारण किसी को लगे वैसा नहीं! मगर, इससे कोई खास फ़र्क़ नहीं पड़ता।…हाँ, कुछ भी हो सकता है…खुद मुझ पर कोई भी मुसीबत टूट

सकती है ! तो, देखा न, रानी, यह है सही हालत···ऐसे में हमें छोड़ कर कहीं और जाने की बात तुम भला सोच भी कैसे सकती हो ?···सच मानो व्योरिन के दुर्भाग्य की बात ने अगर कहीं मुझे भी गहरे में खींच लिया तो हम दोनों ही कहीं के न रह जायेंगे ! इसलिये, ईश्वर के लिये, ऐसे गंदे विचार अपने दिमाग़ से निकाल दो और मुझे सताओ नहीं। मेरी नन्हीं गौरैया, तुम यहाँ से कहाँ और चली जाओगी, तो कैसे जिओगी, और इन सारे बुरे लोगों के वार कैसे बचाओगी ? ख़ैर···हटाओ, वारेन्का, हटाओ···और इन गन्दी सलाहों की तरफ़ ध्यान ही न दो। बेहतर यह है कि अपनी किताब दुबारा पढ़ो और ध्यान से पढ़ो। उससे तुम्हारी भलाई ज्यादा होगी।····

मैंने रताज़ायेव से 'स्टेशन मास्टर' की चर्चा की है। उसका कहना है कि किताब पुराने ढङ्ग की है—आजकल तो सभी अच्छी किताबों में चित्र होते हैं, और तरह-तरह के चित्रण मिलते हैं। लेकिन, उसकी बात पूरी तरह मेरी समझ में आती नहीं। वैसे यह तो वह मानता है कि पूश्किन बहुत अच्छा लेखक है, और उससे रूस का सम्मान बढ़ा है। यानी, इसी तरह की और बातें भी कहता रहता है वह !

हाँ, वारेन्का, पुस्तक सचमुच अच्छी है—बहुत अच्छी है। तुम उसे दुबारा जमकर पढ़ो। बस, तो मेरी सलाह मानो, और इस तरह मेरी बात पर चलकर मेरे जैसे बूढ़े को सुख और सन्तोष दो। ईश्वर इसका बदला तुम्हें देगा, मेरी रानी ! ईश्वर तुम्हें इसका बदले दोआयें जरूर देगा।

तुम्हारा-विश्वसनीय,
मकार-देवुश्किन

जुलाई ७

मेरे प्यारे मकार-अलेक्सेयेविच,

आज फ़ेदोरा ने नक़द चांदी के पन्द्रह रूबल मुझे लाकर दिये। मैंने उसमें से तीन रूबल उसे दिये तो वह बहुत खुश हुई…बेचारी-बेचारी!… और हां, मैं पत्र बहुत ही जल्दी में लिख रही हूं—मैं तुम्हारी वास्कट काट रही हूं…कपड़ा बहुत ही शानदार है…रंग पीला है, और उस पर फूल बने हुये हैं।

मैं तुम्हें एक दूसरी किताब भेज रही हूं। यह कहानियों का संग्रह है। मैंने इनमें से कुछ कहानियाँ खुद भी पढ़ी हैं। तुम ज़रा 'सेर्विस*पिदज़ाक' नाम की कहानी पढ़ो…।

तुमने मुझे थियेटर की दावत दी है…मगर सौदा काफ़ी महंगा पड़ेगा… है न? खैर, अगर चलना ही तय करो तो गैलरी के टिकिट खरीदना। यों आज तो याद भी नहीं पड़ता कि पिछली बार थियेटर मैंने कब देखा था। पर, इस पर भी मन मेरा इधर-उधर कर रहा है कि खर्च काफ़ी होगा। क्या राय है? फ़ेदोरा जैसे भी सिर हिला-हिलाकर कहती है कि तुम अपनी समाई के बाहर खर्च करते हो! और, यह तो मैं खुद भी देखती हूं। एक-अकेले मुझ पर ही तुमने कितना खर्च किया है! मेरा दिल डरता है कि अगर यही हालत रही तो कहीं तुम भी किसी परेशानी में न पड़ जाओ।… फ़ेदोरा ने मुझे बतलाया है कि किराये के मामले में इधर तुम्हारे और तुम्हारी मकान-मालकिन के बीच कुछ तक़रार हुई है।… सचमुच, तुम्हें लेकर मैं डरती ही रहती हूं, मकार-अलेक्सेयेविच!…अच्छा…दोस्विदानिया।…फ़िलहाल, इस समय तो मैं जल्दी में हूं! काम ज़रूरी है, यानी मुझे अपने टोप का रिबन बदलना है।…

वा० दो०

---

*'सर्विस-कोट' गोगोल द्वारा १८४२ में लिखित एक कहानी।

पुनश्च – अगर थियेटर चलने की बात तय रहेगी तो मैं अपना नया टोप पहिनूँगी और काला, जालीदार दुपट्टा कंधे पर डालूँगी ! क्यों जँचेगा न ?

जुलाई ७

प्रिय वारवरा-अलेक्सेयेवना,

कल की ही बात आज आगे बढ़ाना चाहता हूँ, रानी !... देखो, ऐसा है कि अपनी जवानी के दिनों में एक बार मुझे भी कुछ सियाह-सफ़ेद न सूझा और मैं एक अभिनेत्री पर दीवाना हो गया। मगर अजीब बात यह कि वह वैसी न थी, जैसी यह कि मैंने उसे सिर्फ़ एक बार देखा था, और सो भी थियेटर में। मगर, इसके बावजूद आशिक़ यों कि दिल हथेली पर लिये फिर रहे हैं...।

उस समय मेरे पड़ोस में कुछ बकबकिया, गाल बजानेवाले आधा दर्जन लड़के रहते थे और लाख न चाहने पर भी मैंने उनकी दोस्ती पाल ली थी। वैसे उनकी कारस्तानियों में मैं उनका साथ नहीं के बराबर देता था। पर, यों ही संग-सोहबत के नाम पर उनकी हाँ में हाँ मिलाता रहता था। सो, वे छोकड़े उस अभिनेत्री के बारे में मुझे क्या-क्या बातें बतलाते ! वैसे तो ज़हर खाने को उनके पास कोपेक न होता; मगर जिस खेल में भी वह अभिनेत्री होती, उसमें वे हर शाम को पहुँचते, गैलरी में जमते, खेल के बाद तालियाँ पर तालियाँ पीटते, और उसे बार-बार मंच पर बुलवाते। फिर, रात में नींद उनसे कोसों दूर भागती और वे सुबह तक अपनी उसी ग्लाशा की चर्चा चलाते रहते, जैसे कि उनमें से हर एक उसकी मोहब्बत में पागल हो। यानी, वह कनेर-चिड़िया उनमें से हर एक ✓ के दिल की शाख़ पर बैठकर लोने-लोने गीत सुनाती। होते-होते उन्होंने मुझ मासूम को भी उसी रंग में रंग लिया और मुझे गुमान भी न हुआ कि मैं भी आशिक़ों के उस गिरोह मेंशामिल होकर गैलेरी में जा पहुँचा। थिये-

टर में मैं जहाँ बैठा, वहाँ से पर्दे का तो मुझे एक कोना ही नजर आया, पर मजाल क्या कि शब्द एक भी चूक गया हो, और मेरे कानों में न घुल गया हो। सो, सचमुच उस कनेर के गले की मिठास कि वाह-वाह... जैसे किसी बुलबुल के स्वरों में मधु घोल दिया गया हो....क्या आवाज और क्या गूंज !

तो, हम गला फाड़-फाड़कर चिल्लाये और हमने तालियाँ पीट-पीटकर इस तरह आसमान पर सिर उठा लिया कि सभी का ध्यान हमारी ओर आकर्षित हो गया; और हममें से एक इसी तुफ़ैल में निकाल-बाहर कर दिया गया। ऐसे में अब मेरी सुनो... घर आया तो जेब में रूबल एक और तनख्वाह के बाकी दिन दस। मगर, जरा बतलाओ कि आगे क्या हुआ होगा ? आगे हुआ यह कि अगले दिन दफ्तर के वक़्त के पहिले-पहिले मैंने वह रूबल भी इत्र, महकदार-साबुन और फ्रेंच-नाई की दूकान पर खर्च कर दिया अगर तुम यह पूछो कि ऐसा मैंने किया क्यों, तो कारण बतलाना अपने बस की बात नहीं ! तो, उस दिन खाना मयस्सर न हुआ और सुबह से शाम तक मैं उसी अभिनेत्री के घर की खिड़की के नीचे चक्कर काटता रहा। वह नेव्स्की-प्रॉस्पेक्त में तीसरी मंजिल पर रहती थी।

हाँ, तो इसके बाद तूल खिंचा कि हर दिन काम के बाद एक घन्टे तक घर में आराम, फिर वही नेव्स्की-प्रॉस्पेक्त और फिर उसी खिड़की के नीचे चहलकदमी। यह सिलसिला इसी तरह कोई डेढ़ महीने तक चला। इस बीच कभी-कभी मैंने बग्घी की, और, बहुत ही शाहाना-अंदाज से, हवा की लहरियों पर लहराता उधर से निकल गया।

नतीजा यह कि मुझपर क़र्ज़ा हो गया; और होते-होते सारा बुखार उतार गया, और मेरी सकत जवाब दे गई। कोई ईमानदार आदमी किसी अभिनेत्री के फेर में पड़े तो उसका हश्र यह होता है, मेरी रानी ! मगर, छोड़ो, उन दिनों मेरी जवानी अपनी बहार पर थी !....

म० दे०

जुलाई ८

मेरी आदरणीया, वारवरा अलेक्सेयेवना,

अभी इसी महीने की छः तारीख को तुमने जो किताब भेजी, उसे इतनी जल्दी लौटा तो रहा ही हूँ, उसके बारे में अपनी राय भी बाक़ायदा लिख रहा हूँ। मगर, प्रियतमे, ऐसी पुस्तक मेरे पास भेजना, थी न तुम्हारी शरारत आखिर !

देखो, ईश्वर ने हर एक को जीवन में उसका उचित स्थान दिया है। फलतः कुछ लोग कंधों पर झब्बे लटकाते और जेनेरल कहलाते हैं, कुछ संसद के सदस्य बन जाते हैं, कुछ दूसरों पर यों ही हुक्म चलाते हैं, और, कुछ—बिना मुँह से उफ़ निकाले—भय से थर-थर काँपते और हुक्म बजाते हैं। यानी, मनुष्य की अपनी क्षमता के अनुसार सब कुछ पूर्व निश्चित होता है। बस, तो कुछ लोग इस काम के योग्य होते हैं, तो कुछ लोग उस काम के; और, सभी कुछ उस परम-पिता के आदेश के अनुसार ही होता है। मुझे इस दफ़्तर में काम करते तीस वर्ष हो गये। क़भी कोई उँगली नही उठा सका। व्यवहार सदा ही सराहा गया और हुक्म-उदूली की शिकायत मुझसे कभी किसी को नहीं हुई। जहाँ तक मेरे सामान्य नागरिक होने का सवाल है, मुझमें जहाँ हज़ार खामियाँ है, वहीं कुछ अच्छाइयाँ भी हैं। अब यह समझो कि मेरे सभी अफ़सर मेरा लिहाज़ करते हैं और महामहिम तक मुझसे खुश हैं। हाँ मैं जानता हूँ कि वे मुझसे खुश हैं—यह और बात है कि आज तक कोई विशेष कृपा उन्होंने मुझपर नहीं दिखलाई है ! यानी, मेरे बाल सफ़ेद होने को आ गये, मगर गुनाह ऐसा कोई नहीं, जिसका बोझ मेरी आत्मा पर हो ! हाँ, छोटी-मोटी भूल-चूक का सवाल और है, किसकी ज़िन्दगी ऐसी दूध की धोई है। लेकिन, इतना है कि न मैंने कभी किसी के साथ भद्दा व्यवहार किया, न कभी किसी के प्रति आदर दिखाने में कमी की, न कभी कोई क़ायदा-कानून तोड़ा और न कभी कुछ ऐसा किया कि, जिससे

शांति भंग हो ! नहीं, मैंने कभी ऐसा किया ! अरे, कभी तो मेरा नाम राजकीय सम्मान के लिये भी भेजा गया था····मगर, हटाओ आज उसका जिक्र भी क्या ? वैसे ईमान की बात तो यह है कि इतना सब तुम्हें भी मालूम होना चाहिये था; और उस लेखक को भी पता होना चाहिये था। कोई किसी बात का वर्णन करने चले तो उसे उसकी पूरी जानकारी तो हो ! यों औरों की बात छोड़ो मगर, तुम्हें इस सारे-कुछ की जानकारी होनी ही चाहिये थी, वारेन्का !

इसके मानी क्या यह है कि आदमी ईश्वर से डरते हुये और हर एक को प्रसन्न और सन्तुष्ट रखते हुये किसी कोने-अँतरे में इस तरह चैन से जी ही नहीं सकता कि दूसरे लोग भी अपने काम से काम रखें, और उसके मामलों में बिला वजह टांग न अड़ाये ? यानी, दूसरे लोग क्या ऐसे आदमी के आड़े आयेंगे ही ? क्या अधिकार है उन्हें ऐसे व्यक्ति के एकान्त-क्षणों पर डाका डालने का ? उन्हें क्यों इस बात से दुबला रहना चाहिये कि किसी के पास वास्कट है या नहीं ? किसी के पास बनियाइन या जाँघिया है या नहीं, किसी के पास जूते हैं या नहीं ? उन जूतों में कायदे के तले हैं या नहीं ? उन्हें क्यों जानना चाहिये कि कोई क्या खाता है, क्या पीता है और क्या नक़ल करता है ? उन्हें क्यों फ़िक्र है कि गीली पटरी पर अपने जूतों को बचाने के लिए मैं पंजों के बल क्यों चलता हूँ ? लेखक क्यों पाठकों को यह बतलाने को मजबूर हो कि उसके साथी की जेब कभी-कभी खाली भी होती है, और कभी-कभी वह चाय तक नहीं पी पाता है ? जैसे कि चाय हर एक को पीनी ही चाहिये ! क्या मैं अपने पड़ोसी के हर गस्से पर निगाह रखता हूँ कि वह क्या खाता है, और क्या नहीं ? कोई कह सकता है कि मैंने कभी इस तरह निगाह रखी है ? मेरा मतलब यह है, वारवरा-अलेक्सेयेवना, कि भले ही कोई आदमी अपना काम पूरी मेहनत से करता हो और भले ही उसका चीफ़ उसका लिहाज करता हो, पर कभी-कभी ऐसे क्षण भी तो आते हैं जब आदमी

रहे-रहे बेवकूफ़ बन जाता है, यह और बात है कि इस बीच वह अपने दिल को जैसे-तैसे समझा ले। यह भी हो सकता है कि वह इन सारी बातों से ऊपर उठ जाये और सारी रात पलकों में ही काट दे। ऐसा ही कुछ मैंने ख़ुद अनुभव किया है, अपने नये जूते पहिनते समय! हज़ार मंहगे पड़े हों, मगर ऐसे मुलायम जूतों में पैर डाले तो मज़ा आ गया।.... यह माना कि लेखक ने इस सबका जो वर्णन किया है, वह बहुत ही सटीक है, लेकिन, इस पर भी मुझे ताज्जुब है कि हमारा चीफ़ फ़्योदोर-ज्योदोविच ऐसी किताबों की हिमायत करता है। सच पूछो तो उसे तो नाराज होना चाहिये था....अपनी तरफ़ से सफ़ाई देनी चाहिये थी। वैसे यह ठीक है कि अफ़सर अब भी जवान हैं और किताब वाले अफ़सर की तरह ही हम पर बरसना पसंद करता है। लेकिन, सवाल है कि वह बरसे भी आखिर क्यों नहीं? हमें जलते अंगारों पर घसीटे भी आख़िर क्यों नहीं? जब-तब तेहा यों भी उतारा जा सकता है। यों सच यह भी है कि कभी-कभी तो वह जो कुछ भी करता है, अफ़सरी के रोब में आकर ही करता है। मगर, मैं कहता हूँ कि अफ़सरी का वह रोब क्या ऐसा कुछ बुरा है? आख़िर उसे हमें हमारी हैसियत पर ले आना होता है, हमारे मनों में ईश्वर का भय उपजाना होता है। ईश्वर के डर के बिना हमारी ज़िन्दगी ही जैसे कोई मानी नहीं रखती, क्योंकि हम आम तौर पर काम तनख्वाहों के लिए करते हैं, काम के लिए नहीं! फिर, हज़ार तरह के लोग तो हज़ार तरह का व्यवहार। ऐसी हालत में और हो भी क्या सकता है! दुनिया का रवैया ही कुछ ऐसा है कि हम एक-दूसरे के कंधों पर पैर रखकर, एक-दूसरे को दबाकर ही ऊपर उठना चाहते हैं। अगर किसी तरह की कोई सावधानी न बरती जाये तो दुनिया खत्म हो जाये, और समाज की सारी व्यवस्था समाप्त हो जाये!....मुझे तो सचमुच ताज्जुब है कि फ़्योदोर-फ़्योदोरोविच ने ऐसी हिमाक़त बर्दाश्त कैसे की!....

मगर, ऐसी चीजें लिखने से लाभ ? इनकी उपयोगिता ? ऐसी कोई रचना पढ़कर क्या कोई पाठक मुझे नया कोट या जूतों की नई जोड़ी भेट करेगा ?…कुछ भी नहीं करेगा, वारेन्का ! वह तो पूरी की पूरी चीज पढ़ डालेगा और ऐसी ही नई कृति की मांग करेगा। तुम जानती हो, आदमी अपनी कमी पर हर तरह पर्दा डालना चाहता है… नेकनामी-बदनामी से बचने के लिए मन की बात मन में रखता है। मगर, पुस्तकों का यह है कि इनमें यही बातें तिल का ताड़ बनाकर पेश कर दी जाती हैं, और आदमी की सारी की सारी घरेलू और शहरी-ज़िन्दगी खोलकर सामने रख दी जाती है कि जो पढ़े वही मज़ाक बनाये और उन्हें मनमाने ढंग से भुनाये। अब तुम्हीं बतालताओ कि इसके बाद कोई सड़क-गली में निकलेगा कैसे, किस हिम्मत से ? छोटी-से-छोटी बात का ऐसा सटीक वर्णन पढ़ा जा चुका होगा कि लोग चाल-ढाल से पहिचान लेंगे और उँगलियाँ उठायेंगे।…

मेरे ख्याल से तो शायद बुरा न होता अगर लेखक अन्त तक आते-आते होश में आ जाता, नायक पर फेंक-फेंक कर मारे गये काग़ज़ों आदि की बात करता और आखिरकार हमदर्दी दिखलाते हुए कहता—इतना सब होने पर भी वह आदमी भला और नेक था, उसी के साथियों को उसके ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये था। मिसालें दी जा सकती हैं कि वह अपने से बड़ों के आदेश का अक्षरशः पालन करता था, किसी से ईर्ष्या-द्वेष न रखता था, और आत्मा से ईश्वर भक्त था। यही कारण है कि मरा तो उसके परिवार के लोगों और इष्ट-मित्रों ने उस पर बड़े-बड़े आँसू बहाये।'

यानी, आखिरी बात तभी लिखी जाती, जब उसे मार डालना जरूरी होता। वैसे अच्छा तो यह होता कि उसे जीता-जागता रहने दिया जाता, सरकारी कोट फिर पहिना दिया जाता, हिज़-एक्सेलेंसी से बुलवाया जाता, और तमाम गुणों और सेवाओं के लेखे-जोखे के बाद बड़ा ओहदा दिलवा

दिया जाता, तनख़्वाह बढ़वा दी जाती। इससे स्पष्ट होता कि अन्ततः सद् की जीत और असद् की हार होती है। इसी असद् के लिये उसके साथियों को वाजिब सज़ा दी जाती।

यानी, मैं लेखक होता तो उसी चीज़ को यों लिखता। फिर, यह बतलाओ कि उसने कहानी जिस तरह गढ़ी हैं, उससे लाभ क्या है? रोज़मर्रा की मेहनत, मसक़्क़त से भरी ज़िन्दगी में घटने वाली एक आम घटना का वर्णन करने के सिवाय और किया क्या है उसने?····भला ऐसी पुस्तक तुमने मुझे भेजी किस तरह?····मेरी रानी,····वारेन्का, यह किताब तो सचमुच ऐसी चौपट हैं कि कुछ न पूछो! यही नहीं, इसमें जो कुछ लिखा गया है, वह सरासर झूठ है। ऐसा कलर्क कहीं ढूँढ़े नहीं मिलेगा। मेरा तो जी करता है कि ऐसी पुस्तक लिखने के लिये मैं लेखक पर मुक़दमा चला दूँ!····

तुम्हारा सेवक,
मकार-देवुश्किन

जुलाई २७

प्रिय मकार-अलेक्सेयेविच,

इधर जो घटनायें घटीं, और जैसे पत्र तुमने मुझे लिखे, उनसे मुझे ऐसा ताज्जुब हुआ और ऐसी परेशानी हुई कि कुछ न पूछो! ख़ैरियत बस यह हुई कि फ़ेदोरा ने मुझे पूरी बात समझाई। मैं कहती हूँ कि इस तरह मायूस क्यों हो, और इस तरह अपने को नर्क में क्यों ढकेलते हो, अलेक्सेयेविच? तुम जो सफ़ाइयाँ देते हो, उनसे मुझे किसी तरह का कोई सन्तोष नहीं होता। मैं तो सोचती हूँ कि वह नौकरी मुझे कर लेनी चाहिये थी। बात यह है कि इधर जो कुछ हुआ है, उससे मैं एकदम डर गई हूँ!····तुम कहते हो कि मेरे प्यार के लिये ही तुम इतनी सारी चीजें मुझसे छिपाते रहे हो मकार-अलेक्सेयेविच, मैं सदा ही तुम्हारी बड़ी

ऋणी रही हूं, गोकि समझती यह रही हूं कि जो कुछ तुम मुझ पर खर्च करते हो, वह तुम्हारी बचत की रक़म है। मगर ज़रा सोचो कि मुझे कैसा लगा होगा जब मैंने सुना होगा कि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं रहा है, तुम मेरी हालत पर तरस खाकर दफ़्तर से पेशगी लेते रहे हो, और मेरे बीमार होने पर तुम्हें अपना कोट तक बेच देना पड़ा है! भला अब मैं क्या करूं, मेरे प्यारे मकार-अलेक्सेयेविच? देखो न, हमदर्दी और स्नेह के कारण तुमने शुरू-शुरू में मुझ पर जो खर्च किया, उसके बाद तुम्हें अपना हाथ खींच लेना चाहिये था और मेरी ऐश और आराइश पर इस तरह रक़म उड़ानी नहीं चाहिये थी। तुम मेरे सच्चे मित्र नहीं हो। तुमने अपनी सही हालत मेरे सामने कभी भी रखी नहीं है, मकार-अलेक्सेयेविच! मगर, अब जब मुझे पता चला है कि तुमने अपना कोपेक-कोपेक मेरे कपड़ों, मिठाइयों, थियेटर के टिकिटों, किताबों और खेल-तमाशों पर फूंक दिया है, तो मैं अपने को क्षमा किये क्षमा कर नहीं पा रही हूं.... सोच नहीं पा रही हूं कि इतनी बुद्धिहीनता मैंने आखिर बरती कैसे! तुम्हारी परिस्थितियों और जरूरतों की बात सोचे बिना हर चीज आखिर डकारती कैसे चली गई मैं? और, आज नतीजा यह है कि जिस चीज़ से मुझे खुशी हासिल होनी चाहिये थी और खुशी हासिल हुई है, वही आज मुझे जाने कितनी तकलीफ़ पहुंचा रही है। मेरे पछतावे का अन्त नहीं है, यगरचे कि इस पछतावे से अब होना-जाना भी क्या है! वैसे तो यों भी पिछले दिनों मैंने तुम्हें उदास और परेशान देखा है, मगर इधर सचमुच जो कुछ सामने आया है, उससे तो हद ही हो गई है! इतना तो मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था! .. हे भगवान!....मैं कहती हूं कि तुम इस क़दर बेहोश कैसे हो गये आखिर?....अब भला लोग क्या कहेंगे? भला क्या होगा जब लोग सोचेंगे कि ऐसा नेक, भला और समझदार आदमी ऐसी भयानक बुराई का शिकार हो गया .. यह बीमारी इसमें पहिले तो कभी देखी-सुनी गई नहीं।....और, सोचो कि भला मुझे कैसा लगा होगा

जब फ़ेदोरा ने बताया होगा कि तुम पीकर सड़क पर पड़े पाये गये, और पुलिस के लोग तुम्हें उठाकर घर लाये !····सच मानो, मुझे खुद अपने कानों पर यक़ीन नहीं हुआ····गोकि तुम चार दिनों से मेरे यहाँ आये नहीं थे और मेरा माथा ठनक रहा था कि कोई-न-कोई ख़ास बात है ज़रूर !··· और, हाँ मकार-अलेक्सेयेविच, तुमने सोचा है कि तुम्हारे अफ़सरों को तुम्हारी ग़ैरहाज़िरी की सही वजह मालूम होगी, तो वे क्या कहेंगे ? ···

तुमने लिखा है कि हमारी मित्रता की बात खुल गई है, हर आदमी तुम्हारा मज़ाक बना रहा है, और तुम्हारे पड़ोसी अकसर ही दबे दबे मेरा नाम लेते हैं। ··· मकार-अलेक्सेयेविच, ईश्वर के लिए इस बात को ओर ध्यान न दो और अपने को थोड़ा साधो।

जहाँ तक अफ़सरों से हुई तक़रार का सवाल है, उससे चिन्तित मैं भी हूँ। कुछ अफ़वाहें उड़ते-उड़ते मेरे कानों तक भी पहुँची हैं। तुम मुझे उसके बारे में सभी कुछ बतला दो।

और हाँ तुम्हारे लिखने के हिसाब से तुम मन ही मन कहीं डरते रहे, और इसी कारण सही बातें मेरे सामने रख नहीं सके। तुम अन्दर ही अन्दर आशंकित रहे कि मुझे कहीं खो न दो। तुम बड़े निराश हुये और तुम्हारी समझ में न आया कि मेरी सहायता कैसे करो कि मैं कहीं अस्पताल न पहुँच ज़ाऊँ; तुमने भरसक उधार पर उधार लिया और मकान मालकिन से जमकर तक़रार की; और, यह सारा कुछ मुझसे छिपाया। इससे बदतर और भला क्या करते तुम ! तुमने तो अपनी तरफ से सभी कुछ किया कि मैं यह न समझूं कि इस सारी गड़बड़ी की जड़ मैं हूँ। लेकिन; सच्चाई यह है कि इससे मेरी टीस दोगुनी हो गई है।····आदमी को इस तरह नहीं सताना चाहिये, मकार-अलेक्सेयेविच ! उफ़, मित्र-मेरे, बदक़िस्मती बड़ी छुतही होती है। यह बीमारी उड़कर लग जाती है, इसलिये ग़रीब और क़िस्मत के मारे लोगों को एक-दूसरे से अलग ही

अलग रहना चाहिये। देखो न, तुम जिन्दगी भर किस तरह अलग-अलग और चैन से रहे, मगर मेरे जीवन में आते ही किस-किस तरह की मुसीबतों के पहाड़ तुम पर नहीं टूटे !... यह कल्पना ही मेरे लिये असह्य है।

खैर...फ़िलहाल, सभी कुछ विस्तार से लिखो और यह समझाओ कि नौबत यहाँ तक पहुँची तो पहुँची कैसे ! हो सके तो कुछ ऐसा लिखो कि ढाढ़स बँधे।

यह सब मैं किसी स्वार्थ से नहीं लिख रही। इसके पीछे है दोनों का स्नेह-सम्बन्ध, और इस मोह को कोई भी मेरे मन से निकाल नहीं सकता...दोस्विदानिया... देखो, तुम्हारे जवाब का बेचैनी से इन्तजार रहेगा...मगर, मकार-अलेक्सयेविच, तुमने मेरे साथ जिस तरह का व्यवहार किया, किया; लेकिन, ठीक नहीं किया।

तुम्हारी स्नेहवत्सला,
वारवरा दोब्रोस्योलावा

जुलाई २९

मेरी बेशकीमती गुड़िया...वारवरा-अलेक्सेयेवना,

देखो, मेरी जिन्दगी में जो तूफ़ान आ गया था, वह अब धीरे-धीरे खत्म हो रहा है, और जीवन अपने ढर्रे पर आ रहा है। ऐसे में मैं तुमसे कहना चाहता हूँ कि चिंता छोड़ो कि लोग क्या कहते हैं और क्या नहीं। मैं आत्म सम्मान को दुनिया में हर चीज से आगे रखता हूँ, और इसीलिये तुम्हें पूरा विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने जिन कष्टों और संकटों का सामना किया है, उनकी हवा भी मेरे अफ़सरों को न लगी है और न लग सकती है। नतीजा यह कि वे मेरा उसी तरह लिहाज करते हैं और उसमें किसी तरह की कोई कमी नहीं आई है। हाँ, मुझे फ़िक्र महज गाल बजानेवालों की है। जहाँ तक मकान-मालकिन का सवाल है, तुम्हारे दस रूबलों से

ैंने वकिया किराया अदा कर दिया है, और उसका मुँह काफ़ी हद तक बन्द हो गया है। बाक़ी लोगों से और कर्ज़ न लूँगा तो वे भी अपनी-अपनी जगह रहेंगे और मुझे बिल्कुल हैरान या परेशान न करेंगे।

रानी, अपनी सफ़ाई के सिलसिले में आखिर में सिर्फ़ इतना कहना चाहता हूँ कि तुम्हारे लिये मेरे मन में जो आदर है, वह दुनिया की हर नेमत से बड़ा है, और तूफ़ान के छोटे-मोटे थपेड़ों से होने वाला हर नुक़सान उससे पूरा हो जाता हैं। फिर, उस परमपिता का लाख़-लाख़ शुक्र कि वे सभी थपेड़े अपनी राह लौट गये हैं, और तुम मुझे या मेरे स्नेह को झूठा नहीं समझतीं। मेरी, नन्हीं देवदूती, बहुत बड़ी बात है कि तुम मुझे धोखेबाज़ नहीं मानतीं, गोकि मैंने तुम्हें यहाँ से बरबस जाने नहीं दिया है।····

मैं फिर दफ़्तर जाने और दुगुने उत्साह से काम करने लगा हुँ। अपने हर कर्त्तव्य का पालन शानदार ढङ्ग से कर रहा हूँ। कल मैं येव्स्ताफ़ी-इवानोविच की बग़ल से गुज़रा तो उन्होंने मुझसे एक शब्द नहीं कहा।

वैसे, प्रिये, तुमसे छिपाउँगा नहीं कि इधर क़र्ज़ों से बुरी तरह लद गया हूँ। उस पर, आलमारी के अन्दर के कपड़ों की हालत ऐसी ख़स्ता है कि कुछ न पूछो। लेकिन ख़ैर, कोई बात नहीं। तुम बेकार को परेशान न होना।····तुम्हारे पचास कोपेक से तो मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया है। यानी, दुर्भाग्य ने यह दिन दिखाये हैं कि जिस बेसहारा, यतीम लड़की की सहायता मुझे करनी चाहिए थी, वह मेरी मदद कर रही है····ख़ैर, मैं तो धराऊ बुद्धू हूँ ही !····

फ़ेदोरा ने बड़ा ही अच्छा किया कि उतनी रक़म मुहय्या कर दी। फ़िलहाल तो, मेरी रानी, कहीं से कुछ हासिल कर पाने की सूरत सचमुच नजर नहीं आती। हाँ, अगर नज़र आ गई तो तुम्हें फ़ौरन ही इत्तिला दूँगा।

लेकिन, सबसे ज्यादा फ़िक्र है मुझे बेकार बकवास करनेवालों की !....खैर, हटाम्रो....अच्छा, दोस्विदानिया ।....मैं तुम्हारे नन्हें-नन्हें हाथ चूमता हूँ, और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि तुम जल्दी से जल्दी ठीक हो जाम्रो !....

हां, फ़िलहाल, इतना ही, क्योंकि इस समय मुझे दफ़्तर की जल्दी है। यों जो लापरवाही अब तक बरती है, उसका खमियाजा तो मुझे भुगतना ही चाहिये न।...वैसे बाक़ी बातों के बारे में तुम्हें शाम को लिखूँगा। शाम को ही बतला दूँगा कि क्या कुछ हुआ, और अफ़सरों से क्यों और क्या कहा-सुनी हुई।

आदर और स्नेह से,

तुम्हारा,

मकार-देवुश्किन

जुलाई २८

उफ़ ...वारेन्का... मेरी वारेन्का,

सच पूछो तो शर्म मुझे नहीं, तुम्हें आनी चाहिए। इसका बोझ तुम्हारी आत्मा पर सदा-सदा बना रहेगा। तुम्हारा पिछला पत्र पढ़कर मैं तो जैसे भौचक्का रह गया। लेकिन; ईमानदारी से सोचा तो लगा कि मैं अपनी जगह सही था और बिलकुल सही था।....मैं फ़िलहाल उस रंगरेली का ज़िक्र नहीं करना चाहता....उसकी चर्चा बहुत हो चुकी....अब उसे छोड़ो....मगर, मैं कहना चाहता हूँ यह कि मुझे तुमसे मोह है, और मेरा यह मोह कहीं से भी अनुचित या गलत नहीं है...बिलकुल अनुचित या गलत नहीं है—तुम तो उसके बारे में कुछ भी नहीं जानतीं, प्रिये। अगर तुम सचमुच जानतीं कि मैं तुम्हारा यह मोह सचमुच क्यों नहीं तोड़ सकता, तो तुम वह

सब कुछ न कहतीं, जो तुमने इतनी आसानी से कह डाला है। तुमने तो महज़ दिमाग़ से काम लिया है, दिल से काम लोगी तो अफ़साने की शक्ल कुछ दूसरी ही होगी।

मुन्नी रानी, ईमानदारी की बात यह है कि मुझे तो अब याद भी नहीं कि मेरे और उन अफ़सरों के बीच हुआ क्या! इतना ज़रूर है कि मेरे चारों ओर का वातारण बहुत ही ज़हरीला हो उठा था, और अजीब ही समझो कि कोई एक महीने तक मैं अधभर में लटका रहा था। बहुत ही बुरी हालत थी। यह सभी कुछ मैंने तुमसे भी छिपा रक्खा और अपने पड़ोसियों से भी बचाया। लेकिन, मेरी मकान-मालकिन ने, इसी बीच, एक हंगामा खड़ा कर दिया! पर, मैंने कोई फ़िक्र नहीं की। सोचा चुड़ैल को चिल्ला लेने दो जी भर! मगर, पहिले तो उसका चीखना-चिल्लाना मेरे लिये अपमान की बात थी; दूसरे यह कि उसने जाने कहाँ से हमारे सम्बन्धों के बारे में बहुत कुछ जान लिया और फिर इस तरह बलबलाना शुरू किया कि मुझे अपने कान बन्द कर लेने पड़े। उस पर से दुर्भाग्य यह कि दूसरों ने उसे रोकने के बजाय, पूरे मामले में मज़ा लेना शुरू किया।....मेरी बारबरा, आज तक मेरी गर्दन शर्म से झुकी-झुकी रहती है कि....

इस तरह, वारेन्का, बदक़िस्मतियों की इन घटाओं ने मुझे लगभग तोड़कर रख दिया। उसमें कोढ़ पर खाज कि फ़ेदोरा से मालूम हुआ कि कोई कमीना तुम्हारे यहाँ आया, और उसने तरह-तरह के बेहूदे प्रस्ताव सामने रखकर तुम्हारा अपमान किया! इससे तुम्हें कितनी तकलीफ़ पहुँची होगी, इसका अन्दाज़ा मैं अपनी तकलीफ़ से लगा सकता हूँ। इसी पर तो मैं एकदम बौखला गया, और तेहे में उस गधे के बच्चे के घर की ओर लपका। मैंने आगा-पीछा कुछ न सोचा। मेरी नन्हीं देवदूती, मेरा मन तो सिर्फ़ तुम्हारे अपमान से खौलता रहा। मगर, मुसीबत पर मुसीबत कि मूसलाधार बरखा, और गलियों और सड़कों पर भयानक फिसलन।

बस, तो मैं मायूस होकर, अपना इरादा बदलकर लौटने को हुआ ही कि मेरी भेंट येमेल्या यानी येमेल्यान-इल्यिच से हो गई।

येमेल्यान क्लर्क है, यानी अभी निकाले जाने तक क्लर्क रहा है; मगर, अब रोज़ी-रोटी के लिए क्या करता है, मुझे पता नहीं। सो हम दोनों एक ही दिशा में साथ-साथ बढ़े। और, फिर····मगर, मेरे इस मित्र के दुर्भाग्यों और प्रलोभनों की लम्बी कहानी में तुम्हें सुख भी आखिर क्या मिलेगा!····तो भी सुनो - तीसरे दिन शाम को येमेल्या मुझे उस अफ़सर के पास हाँक ले गया। उसके घर का पता दरबान से चला।

जहाँ तक उस अफ़सर का सवाल है, मुझे बहुत पहिले ही लगा था कि उसमें कहीं-न-कहीं, कोई-न-कोई गड़बड़ी है! उसे मैंने नज़दीकसे देखा था। वह तो कभी मेरे ही घर में रहता था न!

ख़ैर, तो अब लगता है कि मैंने जो भी फ़ैसला किया, सच पूछो तो सोच समझकर नहीं किया, क्योंकि मैं वहाँ गया तो भी मेरा मन अन्दर ही अन्दर अशांत रहा। यही वजह है कि मुझे कुछ भी याद नहीं है। याद सिर्फ यह है कि वहाँ अफ़सर ही अफ़सर नजर आये। ठीक-ठीक तो ईश्वर ही जाने, मगर बिल्कुल हो सकता है कि इस समय एक-एक अफ़सर मुझे दो-दो नजर आया हो।

हाँ, तो मैंने क्या कहा और क्या नहीं, इस समय बिल्कुल ख्याल नहीं है। लेकिन, यह जरूर है कि मैंने उस अफ़सर की जी भर लानत-मलामत की और जो मुँह में आया, वही कहा। इस पर उन्होंने मुझे कमरे से बाहर ही नहीं निकाल दिया, सीढ़ियों से नीचे भी ढकेल दिया। यानी, सीढ़ियों से ढकेल तो क्या दिया, धक्के मार-मारकर घर से बाहर कर दिया। इसके बाद मैं घर तक कैसे पहुँचा, यह तो तुम सुन ही चुकी हो। बस, तो इससे अधिक तुम्हें बतलाने को मेरे पास और कुछ नहीं।

वैसे यह सच है कि इस सिलसिले में मेरी बड़ी बेइज्ज़ती हुई। लेकिन, इसके बारे में कोई कुछ जानता नहीं, यानी दूसरे लोग कुछ भी जानते

नहीं। अब चूँकि यह महज़ तुम्ही जानती हो, इसलिये फ़र्क़ कोई नहीं पड़ता जैसे कुछ हुआ ही नहीं है न, मेरी वारेन्का ? हाँ यह मैं ज़रूर दावे से कह सकता हूँ कि पिछले साल दफ़्तर में अक्सेंती-ओसिपोविच ने प्योत्रपेत्रोविच की सारी इज़्ज़त धोकर रख दी थी। कहने को सब कुछ चुप-चुप किया था और बहुत गुपचुप रक्खा था। तो हुआ यह कि अक्सेंती ने प्योत्र को पहिले दरबान के कमरे में बुलाया—मैंने सभी कुछ दरवाजे की संध से देखा—और वहीं इज़्ज़त से हिसाब-किताब बराबर कर लिया। अब यह है कि मैंने उसके बारे में किसी से कुछ नहीं कहा; और वे दोनों इस तरह रहते आये जैसे कि कहीं तिनका भी खड़का न हो! प्योत्र-पेत्रोविच ने खुद भी अपने सम्मान का पूरा-पूरा ख्याल रक्खा, और किसी के सामने उस घटना को लेकर मुँह नहीं खोला। इसके बाद उन्होने आपस में हाथ मिलाये, और झुककर एक दूसरे के प्रति सम्मान प्रकट किया…।

मैं बहस नहीं करूँगा वारेन्का…बहस करने की हिम्मत मुझमें नहीं है… मैं बहुत गिर गया हूँ… सचमुच बहुत गिर गया हूँ…और, सबसे बुरी बात तो यह है कि अपनी ही निगाहों में मेरी कोई इज़्ज़त नहीं रह गई है…शायद भाग्य में यही लिखा था…और, अगर यही लिखा था तो और चारा भी क्या हो सकता है।

तो, मेरी मुसीबतों और बदक़िस्मतियों की पूरी कहानी तुमने सुन ली न वारेन्का ? फिर, इस लम्बी दास्तान को पढ़ने से भी क्या फ़ायदा ? इसमें ऐसा है भी ऐसा क्या… ?

मेरी तबीयत ठीकठाक नहीं है, प्रिये! मेरी जिन्दगी की सारी हँसी-खुशी जैसे खत्म हो गई है! इस पर भी, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे मन में तुम्हारे लिये वही आदर, वही स्नेह और वही प्यार सदा-सदा बना रहेगा।

तुम्हारा आज्ञाकारी-सेवक,

मकार-देवुश्किन—

जुलाई ३०

प्यारे मकार-अलेक्सेयेविच,

मैंने तुम्हारे दोनों ही पत्र पढ़ लिये। तबीयत बहुत ही परेशान है। बेचारे···बेचारे···मेरे मित्र, या तो तुम्हारी चिन्ता-फ़िक्रें अभी खत्म नहीं हुई हैं, या···मकार-अलेक्सेयेविच, लगता है कि कोई बड़ी तकलीफ़ तुम्हें अब भी है, और उसे तुम मुझसे बचा रहे हो।

देखो, तुम आज मेरे यहाँ आना···और, जरूर आना। अच्छा हो कि खाना भी यहीं खाना।

और, सुनो न, तुमने तो मुझे यह भी नहीं बतलाया कि फ़िलहाल तुम्हारा रोजमर्रा का काम कैसे चलता है, और अब उस मकान-मालकिन से तुम्हारी बन रही है या नहीं! लगता है कि यह सब तुम जान-बूझकर गोल कर गये हो!··· अच्छा; दोस्विदानिया··· लेकिन देखो, आना जरूर-जरूर!··· मैं तो कहती हूँ कि तुम खाना हर दिन यहीं क्यों न खा लिया करो! फ़ेदोरा खासा अच्छा पकाती है···अच्छा दोस्विदानियाँ···।

तुम्हारी,
बारबरा दोब्रोस्योलोवा —

अगस्त १

बारबरा-अलेक्सेयेवना-मेरी बहुत-अपनी,

तुम बड़ी भाग्यवाली हो, प्रियतमे, कि ईश्वर ने तुम्हें कृपा का बदला कृपा से चुकाने का अवसर दिया है। मुझे इसका पूरा विश्वास है, वारेन्का, क्योंकि मैं तुम्हारे हृदय की उदारता से अच्छी तरह परिचित

हूँ। मैं तुम्हें डाँटना-फटकारना नहीं चाहता, मगर, देखो बुढ़ापे में इस तरह सीमा तोड़ने के लिये मुझे झिड़को नहीं।

खैर··· हटाओ ·· तुम्हारी ज़िद है तो मैं मान लेता हूँ कि वह मेरा अपराध था। वैसे तुम्हारे मुँह से यह बात सुनकर मुझे तकलीफ़ बहुत होती है, वारेन्का! अब इतना कहने या लिखने के लिये भी मुझसे नाराज़ न हो जाना। मेरा दिल यों भी बहुत दुखा हुआ है। ग़रीब लोग झक्की होते हैं····शायद पैदायशी झक्की होते हैं····यह तो मुझे पहिले भी लगा है।····शायद कुछ ऐसा है कि जो भी ग़रीब होता है, वह कहीं न कहीं से सन्देहशील होता ही है। वह अपने सामने से गुजरने वाले हर आदमी को कनखी से देखता है और मन ही मन बराबर बिसूरता है कि वह मेरे बारे में जाने क्या सोच रहा है····शायद वह अन्दर ही अन्दर कह रहा है—बेचारा····बेचारा··· कैसा ग़रीब आदमी है? पता नहीं क्या सोच रहा होगा वह? इधर या उधर से कैसा लगता है?····और, वारेन्का यह सभी जानते हैं कि ग़रीब के मानी ही हैं कि आदमी कूड़े-कचरे से भी गया-बीता हो! उसका आदर कोई भी नहीं करता। और, ये लेखक चाहे जो कुछ भी कहें और चाहे कुछ भी लिखें, चीजें जैसे चलती रही हैं, वैसे ही चलती रहेंगी। तुम पूछोगी 'क्यों?' इसलिये कि आशा की जाती है कि ग़रीब बाहर-भीतर से एक हो, झलाझल नजर आये और उसके अन्तर में कुछ भी ऐसा न हो, जो उसके लिये पवित्र और पावन हो। जहाँ तक आत्म-सम्मान का प्रश्न है, यह जैसे उसके लिये बना ही नहीं। अभी उस दिन येमेल्या ने मुझे बतलाया कि उसके लिये चन्दा किया गया; लेकिन, इस प्रकार अगर दस कोपेक भी उसे मिले तो उनकी सरकारी जाँच हुई। यानी, उस बेचारे को लोगों ने भरसक कुछ दिया क्या, उसकी पूरी नुमाइश लग गई; और, जैसे कि इस नुमाइश के टिकिट की रक़म ही अदा की उन सबों ने। दान देने का तरीक़ा भी इन दिनों खूब है!····कौन जाने शायद पहले भी ऐसा ही रहा हो। या तो

लोग दान देना बिल्कुल नहीं जानते, या बहुत ही अच्छी तरह जानते हैं। तो, यही हालत यह है ! मेरी रानी हो सकता है कि दूसरी बातों के बारे में हमें बहुत अधिक जानकारी न हो, मगर इसके बारे में तो है, और इतनी ज्यादा है कि हमारे लिए नुक़सानदेह साबित हो सकती है। अब तुम पूछोगी कि कैसे है ? मैं कहूँगा कि अपने अनुभवों के कारण है... हमें तो किसी भी दिन काफ़े की ओर जाता कोई-न-कोई ऐसा भला आदमी मिल सकता है, जो मन ही मन कहता हो—'देखें, यह फटीचर क्लर्क आज क्या खाता है ? मैं तो खाऊँगा यह और यह और यह....और, वह खायेगा दलिया, और वह भी बिना मक्खन का।'....मैं कहता हूँ कि उसे क्यों फ़िक्र हो कि मैं क्या खाता हूँ और क्या नहीं ? ऐसे लोग दुनिया में कसरत से मिलते हैं ! वारेन्का, इनमें से जो सड़े-गले लेखक होते हैं, वे हमेशा इसी फ़िराक़ में रहते हैं कि कोई लँगड़ाकर चलता है या नहीं, उस विभाग के उस क्लर्क के जूतों के तले और एड़ियाँ घिसी हुई हैं या नहीं, और उसका कोट कुहनियों पर फटा हुआ है या नहीं। और; यह सब देखकर वे घर जाते हैं, सब कुछ कागज़ पर उतार देते हैं और फिर उसे छपवा डालते हैं। मैं पूछता हूँ, 'साहब मेरा कोट कुहनियों से फटा है, जी हाँ, है ...आपसे गरज ?' बेहूदगी के लिए क्षमा कर देना, वारेन्का, मगर किसी भी गरीब आदमी को वैसे ही शर्म उठानी पड़ती है, जैसे किसी क्वाँरी लड़की को। माफ़ी चाहता हूँ, लेकिन, प्रिये जैसे तुम किसी अजनबी के सामने कपड़े उतारना पसंद नहीं करोगी, वैसे ही कोई गरीब आदमी भी यह कभी नहीं चाहेगा कि कोई उसकी माँद में झाँककर देखे या उसके पारिवारिक सम्बन्धों की छानबीन करे। और, बस, यहीं मुसीबत पैदा हो जाती है ! और, बस, यही कारण है कि जिन्होंने मेरे नाम पर कीचड़ उछाला और आत्म-सम्मान के साथ खिलवाड़ किया, उन्हें मैंने अपना दुश्मन समझा और उनके इस तरह के बरताव से मुझे इतनी तकलीफ़ हुई।

यही नहीं, दफ़्तर में भी मैंने उजड्डों और खीरही गौरैयों का-सा व्यवहार किया। यानी, उसका ध्यान आते ही मैं अन्दर ही अन्दर जलने-सा लगता हूँ। भला मैं क्या करूँ कि कपड़ों से झाँकती हुई कुहनियों या डोरों में—घंटियों की तरह—लटकते बटनों के कारण मुझे शर्मिन्दा न होना पड़े? उस पर बदक़िस्मती कि आज तो और भी बात बिगड़ गई, और स्तेयान-कारलोविच तक की निगाह किसी चीज़ पर पड़ गई। किसी बात की चर्चा शुरू करते हुये उन्होंने कहा—'बेचारे··· बेचारे मकार-अलेक्सेयेविच!' और, फिर एकबएक चुप हो गये। लेकिन, इससे कुछ नहीं। मैंने मुँह की बाक़ी बात अनुमान से जान ली और मेरा चेहरा लाज से इस तरह लाल हो उठा कि गंजी खोपड़ी तक नचने लगी। यों कोई बात न थी, मगर फिर भी कुछ तो था ही। मन डरा, कहीं इन लोगों को तो किसी चीज़ का सुराग़ नहीं लग गया? ईश्वर न करे कि ऐसा हो।···· सच पूछो तो एक व्यक्ति है, जिस पर मुझे शुब्हा है।····मगर, इन लेखक नामधारी काग़ज़ गोंचनेवालों के लिये इस सब का कोई महत्व नहीं! उन बदमाशों को तो एक कोपेक-भर दे दो, वे तुम्हारी पूरी की पूरी निजी ज़िन्दगी का सौदा कर देंगे। उनके लिये कोई चीज़ पावन नहीं, कोई चीज़ पवित्र नहीं!

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि यह सब करामात किसकी है। यह करामात सिर्फ़ रताज़्यायेव की है, और किसी की नहीं। वह हमारे मंत्रालय में किसी को जानता है, और वही यह सभी कुछ अपनी ओर से नमक-मिर्च लगाकर उसे बतला सकता है। और, हो तो यह भी सकता है कि उसने सारा क़िस्सा अपने ही मंत्रालय में किसी को बतलाया हो, और वहाँ से बात उड़ते-उड़ते हमारे यहाँ आ गई हो। वैसे मेरे पास-पड़ोस के लोग तो जानते ही हैं। मैंने उन्हें तुम्हारी खिड़की की तरफ़ इशारा करते देखा है। यही नहीं, मैं तुम्हारे वहाँ खाना खाने गया न,

तो वे सभी खिड़कियों से झाँक-झाँककर देखने लगे। मकान-मालकिन ने तुम्हें हज़ार गालियाँ दीं और कहा कि वह बूढ़ा-खूसट उस मुँहबोली छोकड़ी से इश्क लड़ा रहा है! लेकिन, रताज़यायेव ने जिस तरह हम लोगों का वर्णन अपनी पुस्तक में किया, और हम पर बारीकी से व्यंग्य कसे, उसके सामने तो यह सब भी कुछ नहीं है। मेरा सारा धैर्य समाप्त हो रहा है, प्रिये? आखिर हम करें भी क्या? ईश्वर ही हमें दंड दे रहा है जैसे, मेरी देवदूती!

और, हाँ तुमने मेरे समय काटने के लिए पुस्तक भेजने का वायदा किया था। खैर, मारो किताब को। आखिर किसी भी किताब में होता भी क्या है? तमाम क़िस्म की बचकानी बातें, और बस! और, किसी भी उपन्यास में क्या होता है? काहिलों के वक्त काटने के लिये एक से एक बकवास, और बस! इतने दिनों के अनुभव से मैं क्या इतना भी नहीं जानता? अब अगर कोई शेक्सपीयर की चर्चा करता है और कहता है कि साहित्य में तो शेक्सपीयर भी है, तो समझना चाहिये कि बाक़ी चीज़ों की तरह उसकी रचनायें भी घासलेटी ही होंगी····बेकार····बेमतलब····कीचड़ उछालने की निखालिस कोशिश····कीचड़ उछालने वालों भर के इस्तेमाल के लिए।

तुम्हारा,
मकार-देवुश्किन

२ अगस्त

प्रिय मकार-अलेक्सीयेविच,

चिन्ता न करो। ईश्वर की कृपा होगी तो सभी कुछ ठीक हो जायगा। फ़ेदोरा तमाम सारा काम ले आई है, और वह हम दोनों ने ही पूरे मन से शुरू कर दिया है! शायद स्थिति जल्दी ही सम्हल जायेगी।

फ़ेदोरा का ख्याल है कि इधर की सारी मुसीबतों की जड़ अन्न फ़्योदोरोवना ही है । लेकिन, खैर इससे फ़र्क भी क्या पड़ता है ?

वैसे कुछ अजीब ही है कि आज मेरी तबीयत बहुत ही खिली हु है । और, हाँ मैंने सुना है कि तुम फिर रूबल उधार लेने जा र हो । भगवान के लिये ऐसा न करना, क्योंकि अदायगी का सवाल उठेग तो मुश्किल हो जायेगी और जान छुड़ाना दूभर हो जायेगा ।

देखो, याद रक्खो कि तुम हमारे सबसे क़रीबी दोस्त हो, इसीलि मकान-मालकिन की फ़िक्र न कर, तुम्हें तो हमारे यहाँ और भी अकस आना चाहिये, और जहाँ तक बाक़ी दुश्मनों और बदनीयत लोगों क सवाल है, मेरा पूरा विश्वास है कि तुम्हारे मन का डर तुम्हारे अप अन्तर की उपज है, मकार-अलेक्सेयेविच ।

मैंने तुमसे पहिले भी कहा है कि तुम्हारे लिखने का ढङ्ग बड़ा अट पटा है....और, यह बात आज भी अपनी जगह सही है ।--'पंका'...दुबार मुलाक़ात होने तक अलविदा ।

आशा है, तुम जल्दी ही आओगे ।

तुम्हारी,
वा० दो०

३ अगस्त

वारवरा-अलक्सेयेवना—मेरी देवदूती—

मेरी ज़िन्दगी का हुस्न....मैं तुम्हें यह बतलाने को बेचैन हूँ कि मेरे जीवन में आशा हरिया रही है । लेकिन, यह भला तुमने क्या लिखा कि मैं रूबल उधार न लूँ ? यह तो असम्भव है, मेरी देवदूती ! एक तरफ़ तो मेरी जेब में एक कोपेक नहीं है, दूसरी तरफ, ईश्वर न करे, मगर, अगर तुम्हें कुछ हो गया तो क्या होगा ? तुम तो इतनी कोमल हो कि

क्या कहूँ, इसीलिये तो उधार लेना ज़रूरी है और बहुत ही ज़रूरी है। खैर ···छोड़ो···फ़िलहाल पिछली चर्चा फिर छेड़ूँ।

पहिले तो यह जान लो, वारवरा-अलेक्सेयेवना, कि दफ़्तर में मैं येमेल्यान-इवानोविच की बग़ल में बैठता हूँ। मगर, यह येमेल्यान वह नहीं है, जिसका ज़िक्र मैं तुमसे कर चुका हूँ। यह तो छोटी श्रेणी का सरकारी सलाहकार है और उस दफ़्तर में लगभग उतना ही पुराना है, जितना पुराना मैं। आदमी रहमदिल और बेग़रज़ है···मगर मुँह कभी नहीं खोलता और खासा मनहूस लगता है। इस पर भी अपने काम में मँजा हुआ है और लिखता तो क्या है, मोती पिरोता है! सच पूछो तो मुझसे उन्नीस किसी मानी में नहीं है। क़िस्सा-कोता यह कि आदमी लायक़ है। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हम एक दूसरे के मित्र कभी नहीं रहे—सिर्फ़ दोया-सलाम तक बन रही है। स्वभावतया कभी मुझे क़लम बनाने वाले चाकू की ज़रूरत पड़ी तो मैंने कहा—'बड़ी मेहरबानी होगी···ज़रा क़लम बनाने वाला अपना चाकू दे देंगे मुझे?'··· और बस! आज अचानक ही वह मेरी तरफ़ मुड़ा और बोला—'इन दिनों तुम इतने उड़े-उड़े क्यों रहते हो, मकार-अलेक्सेयेविच?' मैंने उसकी सदाशयता समझी और जवाब मे सभी कुछ बतला दिया—यानी सभी कुछ तो नहीं, उसकी तो हिम्मत ही न थी, मगर फिर भी बहुत कुछ! यानी यह कि आजकल बड़ी विचित्र परिस्थितयों में हूँ, आदि-आदि! येमेल्यान इवानोविच बोला—'दोस्त, प्योत्र-पेत्रोविच से थोड़े से रूबल उधार क्यों नहीं ले लेते? वह तो ब्याज पर लेन-देन करता है। फिर यह कि ब्याज भी वाजिब होता है··· ऐसा नहीं कि देते-देते ही न बने।'··· कुछ न पूछो, इतना सुनते ही मेरा कलेजा ख़ुशी से बाँसों उछलने लगा, वारेन्का! शायद ईश्वर उसके कानों में मन्त्र फूंक देगा और वह मुझे थोड़े से रूबल दे ही देगा। मैंने तो अभी से हिसाब-किताब लगाना शुरू कर दिया है कि इतनी रक़म मकान-मलकिन को दूँगा···इतनी तुम्हारी सहायता में लगा दूँगा···और, इतनी की अपनी

ज़रूरत की चीज़ें ख़रीदूँगा। तुम तो जानती ही हो कि इन दिनों मैं देखने में बिल्कुल वहशी लगता हूँ, और दफ़्तर में इस शक़्ल में बैठने पर शर्म से गड़ता रहता हूँ। उस पर यह कि दुश्मन मेरा जी भर मज़ाक बनाते हैं····भगवान उन सबको एक-एक कर समझे !····महामहिम भी अकसर ही हमारी मेज़ों की बग़ल से गुजरते हैं। ईश्वर न करे कि उनकी निगाह भूले-भटके कभी मेरे कपड़ों पर पड़े। वे सफाई के मामले में बड़े ही सख्त हैं। वैसे हो सकता है कि ऐसी स्थिति में भी वे चुपचाप चले जायें और मुँह से कुछ न कहें। लेकिन, मैं तो लाज से धरती में गड़ ही जाऊँगा।

बस तो, यह सब सोचकर ही मैंने ख़ासी वेहयाई बरती और जीते-जी मुर्दा बनकर, लेकिन बड़ी आशा से प्योत्र-पेत्रोविच के पास पहुँचा। मगर, वारेन्का, ज़रा सोचो कि नतीजा कुछ नहीं निकला····बिल्कुल कुछ नहीं निकला।

हाँ, वह फ़ेदोरोइ-इवानोविच से बातें करता रहा कि मैं पास जाकर खड़ा हुआ और उसकी आस्तीन हल्के से खींची, जैसे कि कहा हो—'क्या कहते हो, प्योत्र-पेत्रोविच ?' इस पर वह मेरी ओर मुड़ा तो मैंने रोना रोया और तीस रूबल माँगे। परन्तु, पहिले तो जैसे वह मेरी बात ही नहीं समझा। फिर जब समझा तो हँस दिया, और बस ! किन्तु, इसके बाद भी मैंने अपनी पूरी बात दोहराई और सारी स्थिति समझाई। वह बोला—'तुम्हारे पास ज़मानत के लिये क्या है ?' और, अपने सामने के काग़ज़ात में ऐसे खो गया जैसे कि मेरी हर बात दिमाग़ से उतर गई हो। इससे मेरे क़दम थोड़े डगमगाये। मैं बोला—'ज़मानत के लिये तो मेरे पास कुछ नहीं, लेकिन तनख्वाह मिलते ही मैं आपकी रक़म लौटाल दूँगा····इसमें चूक नहीं होगी····यक़ीन कीजिये, इसमें चूक नहीं होगी।'

मगर, ठीक इसी समय उसे किसी ने आवाज़ दी और वह चला गया।

मैं ज्यों का त्यों खड़ा रहा। वह लौटा तो अपनी क़लम इस तरह छाँटने लगा जैसे कि मेरा कोई अस्तित्व ही न हो! इसीलिये मैंने फिर बात छेड़ी 'किसी तरह यह काम हो नहीं सकता, प्योत्र-पेत्रोविच ?' मगर उसने तो जैसे सुना ही नहीं। दूसरी ओर, मैं खड़ा रहा कि खड़ा रहा। अन्त में मैंने सोचा कि चलो एक बार और कोशिश कर देखो। सो मैंने उसकी आस्तीन फिर खींची। लेकिन, तुम्हारा ख्याल है कि उसके कानों पर जूँ तक रेंगी ? नहीं, बिल्कुल नहीं! उसने क़लम छांटना खत्म कर लिखना शुरू कर दिया, और आखिरकार मैं अपना-सा मुँह लिये लौट आया।

शायद यह सभी लोग बहुत अच्छे हैं, प्रिये! मगर घमंडी ऐसे हैं और हमारे और उनके बीच फ़ासिला इतना है कि कुछ न पूछो। लेकिन, यह सब मैं तुम्हें लिख आखिर क्या रहा हूँ ? ·· इसलिये कि येमेल्यान-इवानोविच बिल्कुल प्योत्र-पेत्रोविच की तरह हँसा और वैसे ही सिर हिलाता रहा! पर आदमी भला है, उसने मेरा दिल बढ़ाया और व्याबोर-ग्स्काया के एक परिचित अफ़सर से मेरा परिचय करा देने का वायदा किया। कल उससे मिलते जाना है। बतलाओ जाऊँ कि नहीं ? ईश्वर करे कि मुझे क़र्ज़ वह दे दे। मकान-मलकिन मुझे घर से निकाल देने की धमकी दे रही है। खाना देना तो बन्द कर ही चुकी है। दूसरी तरफ़, मेरे जूते तार-तार हो गये हैं और कपड़ों के बटन गायब हैं। ···वैसे गायब क्या नहीं है ? ऐसे में मेरा कोई चीफ़ मुझे देख ले तो ग़ज़ब हो जाये! वारेन्का, हमारी मुसीबतों का कोई अन्त नहीं है ·· सचमुच कोई अन्त नहीं है।

मकार-देवुश्किन

अगस्त ४

मेरे दयालु मित्र मकार-देवुश्किन,

ठीक है, तुम जल्दी से जल्दी कहीं से कुछ क़र्ज़ ले लो; और जिन

परिस्थितियों में तुम हो, उनमें मेरी किसी तरह की कोई मदद करने की बात न सोचना। लेकिन, काश कि तुम जानते कि इधर भी हालत क्या है! हमारा अब यहाँ रहना सम्भव नहीं। मैं भी काफ़ी कठिनाइयों में रही हूँ, और बतला नहीं सकती कि कितनी परेशान हूँ!····आज सवेरे एक सयानी उम्र का, लगभग बूढ़ा-सा आदमी फ़ौजी-तमगे-वमगे लगाये मेरे कमरे में आया। मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ, और उसके आने का प्रयोजन समझ में न आया। फ़ेदोरा घर में थी नहीं! सामान लेने बाज़ार गई थी।

हाँ, तो उस आदमी ने मेरी कुशल पूछी और जवाब का इन्तजार किये बिना ही कहा 'मैं उस अफ़सर का चाचा हूँ, अपने भतीजे से बहुत ही नाराज हूँ कि उसने इस तरह का व्यवहार किया, और घर भर को दोनों को लेकर कानाफूसी करने का मौक़ा दिया!'

आगे बोला—'मेरा भतीजा तबीयत से बिल्कुल बच्चा है और हर मानी मे बिल्कुल बेकार का आदमी है। पर मैं तुम्हें पनाह देने को तैयार हूँ।'

सलाह देते हुये कहने लगा—'इन जवानों को मारो गोली। मुझे तुमसे हमदर्दी है, और वैसी ही हमदर्दी है; जैसी किसी पिता को अपनी बेटी से हो सकती है। तुम जिस तरह कहो, मैं तुम्हारी सहायता करूँ।'

इस पर मैं लज्जा से लाल होती खड़ी रही। मेरी समझ में ही न आया कि इस सब के उत्तर में क्या कहूँ! मैंने साधारण रूप से धन्यवाद भी नहीं दिया। पर, उसने, मेरी इच्छा के विरुद्ध, मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया और गाल सहलाते हुये बोला—'तुम बहुत खूबसूरत हो, और तुम्हारे गालों के ये गढ़े तो देखते ही बनते हैं।' फिर, (ईश्वर ही जाने क्यों,) वह मुझे चूमने को आगे बढ़ा। बोला—'मैं तो बूढ़ा आदमी हूँ।'···· (घिनौना बूढ़ा था वह?)

लेकिन, ठीक इसी समय फ़ेदोरा आ गई, तो वह थोड़ा घबड़ा गया। पर, फिर विश्वास दिलाते हुये बोला—'मैं तुम्हारे शील और समझदारी के लिये तुम्हारा बड़ा आदर करता हूँ। पूरी उम्मीद है कि तुम मुझे पराया न समझोगी।'

इसके बाद वह फ़ेदोरा को किनारे ले गया, और बहाने से उसे कुछ रूबल देने लगा। फ़ेदोरा ने इन्कार कर दिया। अखिरकार वह जाने को तैयार हुआ और अपने आश्वासन बार-बार दोहराते हुये बोला—'मैं फिर, आऊँगा; और, इस बार आऊँगा तो तुम्हारे लिये कान के बुन्दे लाऊँगा।'''' पर इस बीच खुद काफ़ी उखड़ा-उखड़ा-सा रहा। अन्त में बोला—'तुम्हें किसी और दूसरे घर में चला जाना चाहिये। घर मेरे दिमाग़ में है, और वहाँ रहने का तुम्हें कुछ देना भी नहीं पड़ेगा।'

लेकिन; बात यहीं खत्म नहीं हुई। फिर कहने लगा—'तुम बहुत ईमानदार और समझदार लड़की हो; और मुझे बहुत पसंद हो! लेकिन, थोड़ा होशियार रहो, और इन बिगड़े हुये जवानों से बचो।'

फिर बोला—'मैं अन्ना-फ़्योदोरोवना को जानता हूँ। उन्होंने कहलाया है, और वे जल्दी ही खुद भी तुमसे मिलने आयेंगी।'

यानी, अब पूरा मामला मेरी समझ में आया; और, आया तो कैसा लगा, कुछ न पूछो। ज़िन्दगी में पहिली बार ऐसी स्थिति मेरे सामने आई। मैं गुस्से के मारे आपे से बाहर हो गई और मैंने बताया कि मैं उसे क्या समझती हूँ। फ़ेदोरा ने मेरा पूरा साथ दिया, और हम दोनो-ने उसे घर से निकाल दिया।'''मेरा पूरा विश्वास है कि यह सब अन्ना फ़्योदोरोवना का किया-धरा है, वरना हमारे बारे में उसे इतनी जानकारी कैसे और कहाँ से होती?

अब तुमसे एक अनुरोध करूँ, मकार-अलेक्सेयेविच! देखो, ऐसी हालत में मुझे कहीं छोड़ न देना। हाँ, लो थोड़े रूबल उधार ज़रूर ले लो,

क्योंकि हमें मकान बदलना है। फ़ेदारो की राय भी यही है। कम-से-कम पच्चीस रूबलों की जरूरत पड़ेगी। मैं रक़म कमाकर लौटाल दूँगी। काम मेरे लिये फ़ेदोरा और ले आयेगी।....इसलिए सूद की चिन्ता न कर, तुम क़र्ज़ ले ही लो। मैं कोपेक-कोपेक अदा कर दूँगी... बस, सिर्फ़ इस समय तुम मेरी थोड़ी मदद कर दो।

यों बहुत ही बुरी बात है कि तुम तो खुद ही मुसीबत में हो, और मैं तुम्हें, ऊपर से, तकलीफ़ दे रही हूँ; मगर, मेरे लिये भी तुम्हारे सिवाय सहारा और किसी का नहीं।—दोस्विदानिया, मकार-अलेक्सेयेविच... फ़िलहाल, मेरी चिन्ता करना, और भरसक कुछ-न-कुछ करने की सोचना.... ईश्वर तुम्हारी सहायता करे!

वा० दो०

अगस्त ४

मेरी रत्ना—मेरी वारवरा—अलेक्सेयेवना,

इन अनचित्ते आघातों से मैं इस तरह हिल उठा हूँ कि कुछ न पूछो! इन तूफ़ानों के बीच मेरी आत्मा किस तरह काँप रही है, तुम्हें क्या बतलाऊँ! लम्पटों और हरामज़ादों की यह भीड़ तुम्हें चूस कर रख देगी....तुम्हारी सारी ज़िन्दगी चौपट कर देगी। और, यह सब मेरी जान लेकर रहेंगे... सचमुच मुझे क़ब्र तक पहुँचाकर दम लेंगे। अब तो तुम्हारे लिये रूबलों कर इन्तज़ाम करना ही होगा। न कर पाऊँगा तो मैं मर जाना बेहतर समझूँगा। लेकिन, फ़र्क़ कोई ज्यादा नहीं पड़ने का... कर पाऊँगा, तो भी अपनी मौत ही बुलाऊँगा, वारेन्का! मौत निश्चित हो जायेगी।... क्योंकि उस स्थिति में तुम चिड़िया की तरह पर लगाकर उड़ जाओगी....करोगी भी क्या? तुम्हारे घोंसले पर उल्लू जो आ-बैठे हैं।.... इस तरह मुझे बड़ी चिन्ता है, मेरी रानी!

लेकिन, मेरे साथ ऐसा व्यवहार करने की बात भी तुम कैसे सोच सकती हो, वारेन्का···आखिर कैसे सोच सकती हो ?···यानी, तुम तक लीफ़ में हो, मन से आहत हो, और यातनाओं पर यातनायें भुगत रही हो, मगर, इन पर भी मेरे कष्ट का तुम्हें इतना ख्याल है ! मुझे इस तरह विश्वास दिला रही हो कि रक़म का कोपेक-कोपेक अदा कर दोगी ! इसका मतलब यह है कि समय पर सूद चुकता करने के लिये अपना बचा-खुचा स्वास्थ्य भी नीलामी पर चढ़ा दोगी !···वारेन्का, ऐसी बात मुँह से निकालने के पहिले ज़रा सोच लिया करो ! तुम भला हज़ार तरह की गुलामियाँ क्यों करो ?.तुम भला अपना दिमाग़ ख़राब क्यों करो ? तुम भला अपनी आखें क्यों फोड़ो ? और. तुम भला अपना शरीर क्यों गलाओ? उफ़··· वारेन्का··· उफ़···मैं खुद बिल्कुल बेकाम और निठाला हूँ, मगर, इससे कुछ नहीं; मैं बरबस कोई-न-कोई काम करूँगा ! किसी भी चीज़ को आड़े नहीं आने दूँगा। ऊपर का काम ले आऊँगा। लेखकों की रचनाओं की नक़लें तैयार करूँगा···खुद उनके पास जाऊँगा, और उनसे आरज़ू-मिन्नत करूँगा। वैसे उन्हें तो एक-एक रचना की कई-कई प्रतियाँ करवाने के लिए किसी-न-किसी अच्छे आदमी की दरकार बनी ही रहती होगी। सो, मैं सब कुछ करूँगा, मगर तुम्हें काम न करने दूँगा कि तुम बीमार पड़ो, तुम अपने को बरबाद करने पर उतारू हो, मैं तुम्हारा यह इरादा किसी तरह पूरा नहीं होने दूँगा। याद रखना ! याद रखना ! मैं चाहे जहाँ से लाऊँ क़र्ज़ लेकर आऊँगा। ला न पाऊँगा तो मर जाना बेहतर समझूँगा।···

तुम कहती हो कि मैं ब्याज की भारी-भरकम दर से डरूँ नहीं··· तो, चिन्ता न करो, रानी, इन्तज़ाम की फ़िक्र करूँगा··· यह ऐसी कोई बड़ी रक़म तो है नहीं ?··· क्यों ? तो, लोग इतने रूबलों के लिए मेरा विश्वास तो कर लेंगे न, और, बिना किसी तरह की अमानत-ज़मानत के दे देंगे न ? मुझे देखकर कोई मेरा यक़ीन तो कर लेगा न ?··· यानी, पहिली

निगाह में ही मैं मोतबर तो जँच जाऊँगा न ?···· बस तो, रानी, तुम मेरे व्यक्तित्व को अपने सामने रखो, और फिर इन तमाम सवालों के जवाब दो ! बताओ कि तुम्हारी राय क्या है ?····मेरे तो, फ़िलहाल, हाथ-पैर फूल रहे हैं····हालत बहुत ही पतली है ।····

और हाँ; उन चालीस रूबलों में से मैं पच्चीस तुम्हारे लिये अलग निकाल दूँगा; दो रूबल मकान-मलकिन के लिये अलग रख लूँगा; और, बाक़ी अपने काम ले आऊँगा ! वैसे यह ठीक है कि मकान-मलकिन को तो इससे कुछ ज्यादा ही मिलना चाहिये । सच पूछो तो वह उसका हक़ है ! लेकिन, जरा मेरी ज़रूरतें भी तो देखो, वारेन्का । दो रूबल से ज़्यादा तो मैं सचमुच दे ही नहीं सकता । इसलिये उसका ज़िक्र भी क्या; और क्यों ? खयाल है कि एक जोड़ी जूता चाँदी के एक रूबल में आ जायेगा । यह पुराने बूट तो शायद कल तक भी न चलें कि इन्हें पहिनकर दफ़्तर जा सकूँ । वैसे मेल का एक रूमाल भी हो जाये तो ऐसा कुछ बुरा नहीं । मेरे पास, फ़िलहाल, जो रूमाल है, वह एक साल पुराना है । मगर, हाँ, तुमने तो अपने ऐप्रन के कपड़े से ऐसा ही दूसरा रूमाल सी देने का वायदा किया है, इसलिये इसकी दरकार नहीं । इस तरह मेरे पास नये बूट भी हो जायेंगे और गले का नया रूमाल भी । लेकिन, मुन्नी, बटनों का क्या होगा ? और, वारेन्का, यह तो तुम मानोगी ही कि बटनों के बिना काम चलने का नहीं मेरी जैकेट के एक तरफ़ के बटन बिल्कुल ग़ायब हैं; और, मैं यह सोचकर ही काँप उठता हूँ कि महमहिम कहीं देख लेंगे तो क्या, कहेंगे । यों जो कुछ वे कहेंगे, वह मैं कभी भी जान न पाऊँगा, क्योंकि इसके पहिले ही शर्म से ढेर हो जाऊँगा ।····इस प्रकार खर्च के लिये और आधा पाउंड तम्बाकू के लिए तीन रूबल मेरे पास बचेंगे ! तम्बाकू के बिना मैं जी नहीं सकता; और नौ दिन तो पाइप होठों से लगाये ऐसे ही हो गये !····कहने को तो हो यह भी सकता है कि मैं खरीद लूँ और तुमसे ज़िक्र भी न करूँ, मगर, ऐसा करने में मुझे खासी शर्म महसस होगी····

कारण कि एक तरफ़ तो तुम कि ऐसी खस्ता हालत में रहो, और, दूसरी तरफ़ मैं कि ऐयाशी में ग़र्क़ रहूँ !····

वारेन्का, मैं यह सारा कुछ तुम्हें लिख रहा हूँ, केवल अपनी आत्मा का बोझ हल्का करने के लिये····प्रिये, सच्ची बात यह है कि इस समय बड़ी मुफ़लिसी है··· शायद ऐसे दिन मैंने ज़िन्दगी में कभी नहीं जाने ! मकान-मालकिन तो मेरी शक्ल देखना तक पसन्द नहीं करती····उसके मन में मेरे लिये किसी तरह का कोई लिहाज बाक़ी नहीं रहा।····यानी, एक तरफ़ ज़रूरत की कितनी ही चीज़ें मेरे पास नहीं हैं, और दूसरी तरफ क़र्ज़ है। कहना न होगा कि दफ़्तर के बाबुओं की हालत तो हमेशा ही अबतर रहती है, मगर इस समय तो खासतौर पर दुर्गत है। मैं तो हर चीज़ को, यहाँ तक कि अपने को भी हर आदमी की निगाह से बचाकर रखने की कोशिश करता हूँ, चोरों की तरह आता-जाता हूँ और अपने-आप में ही सिमटा रहता हूँ। यह तो सिर्फ़ तुम हो, जिससे मैं हिम्मत से, सभी तरह की, सभी बातें कर और कह लेता हूँ····।

मगर, यह तो बतलाओ कि अगर क़र्ज़ न मिला तो क्या होगा ? लेकिन, नहीं, नहीं, वारेन्का ऐसी बात सोचना भी पाप है। फिर इस तरह की आशंकाओं से अपने को सताने से लाभ ? मेरा कहने का मतलब यह है कि तुम बेकार को चिन्तित न होना····लेकिन, हे प्रभु, सचमुच कहीं क़र्ज़ न मिला तो तुम्हारा क्या होगा ? उस स्थिति में सचमुच तुम कहीं आ-जा न सकोगी, और इस पर भी मेरे पास ही रहोगी। मगर, उस हालत में मैं क्या इस जगह लौटने का भी साहस जुटा पाऊँगा ? मैं तो कहीं का नहीं रहूँगा····घुट-घुट जाऊँगा और समाप्त हो जाऊँगा····।

पर, इस तरह लिखते चले जाने से अच्छा तो यह होगा कि मैं उठूँ, दाढ़ी बनाऊँ। दाढ़ी बनाने पर थोड़ा जमने लगूँगा··· तुम तो जानती ही हो कि इस जमाने में जमाऊँ लोगों को ही आमतौर पर इज़्ज़तदार

माना जाता है।····ईश्वर मेरी लाज रखे!····अब भगवान की प्रार्थना करूंगा और चालू हो जाऊँगा।

मकार-देवुश्किन

अगस्त ५

आदरणीय मकार-अलेक्सेयेविच,

तुम कहीं मायूस हो गये, तो हम सबका क्या होगा? नहीं, देखो तुम अपना दिल न तोड़ना! ऐसे ही संकट कौन कम हैं? मैं तुम्हें तीस कोपेक चाँदी के भेज रही हूँ। इससे अधिक भेजना सम्भव नहीं है! हाँ, इस तीस कोपेक में कल के लिये सबसे ज़रूरी चीजें खरीद लाओ!····इधर न मेरे पास कुछ है, और न फ़ेदोरा के पास। पता नहीं, कल काम कैसे चलेगा। यह सब है बड़ा खराब, मकार-अलेक्सेयेविच, मगर इसे लेकर तुम उदास न होना। तुम अपनी कोशिश में कामयाब नहीं हुये, मगर तुमने वश भर प्रयत्न तो किया ही!····फ़ेदोरा का खयाल है कि हमें यहीं बना रहना चाहिये, क्योंकि जगह बदलने से ही फ़र्क़ कुछ न पड़ेगा; और खोजने वाले तो हमें खोज वहाँ भी लेंगे। इस पर भी यहाँ से तो जाना ही होगा।····लिखना तो मुझे और भी विस्तार में चाहिये, मगर मेरा मन इस समय काफ़ी बेचैन है, इसलिये····।

तुम भी कैसे अजीब आदमी हो, अलेक्सेयेविच! छोटी-छोटी बातों पर दुःख मान बैठते हो। इससे हमेशा दुखी ही रहोगे तुम, और तुम्हारे दुख का वारापार कहीं न रहेगा।····मैं तुम्हारे पत्र बहुत ध्यान से पढ़ती हूँ, और अनुभव करती हूँ कि तुम अपने-आपसे अधिक चिन्ता मेरी करते हो। लोग कहते हैं कि मैं स्वभाव से बड़ी दयालु हूँ। मेरी भी राय कुछ ऐसी ही है। वैसे बुरा न मानो तो तुम्हें कुछ मित्र-सुलभ सलाहें दूंगी, मकार-अलेक्सेयेविच!

तुमने मेरे लिये अब तक जो कुछ भी किया है, उसके लिये मैं तुम्हारी बहुत आभारी हूँ ''तुम्हारी ऋणी हूँ। सोचकर कभी-कभी हिल उठती हूँ। ऐसे में कल्पना करो कि मुझे कैसा लगता होगा जब मैं यह सोचती होऊँगी कि तुम्हारे सारे दुख-संकट का कारण मैं हूँ; और; इस पर भी तुम मेरे दुख-सुख में हिस्सा बटाते हो, और जैसे कि मेरे स्नेह के सहारे ही जीते हो! मगर, तुम दूसरों के दुखों को अपना दुख इस तरह मानते हो, तो दुखी तो तुम रहोगी ही। इसमें अस्वाभाविक ऐसा कुछ नहीं!''''आज दफ़्तर के बाद तुम मेरे यहाँ आये तो मैं तुम्हें देखकर ही डर गई। कितने सहमे-सहमे से थे तुम! कैसा उतरा हुआ था तुम्हारा चेहरा! अपनी ही प्रेत-छाया से लग रहे थे; और, यह सब क्यों था? क्योंकि तुम डर रहे थे कि मुझे अपनी असफलता का समाचार दोगे, तो मैं एकदम परेशान हो उठूंगी, और, फिर कैसी राहत-सी मिली तुम्हें, जब तुमने देखा कि मैं मुस्कराने-मुस्कराने को हो रही हूँ! मेरा कहना है कि इतनी चिन्ता न करो, और अपने मन पर इतना बोझ न डालो, मकार-अलेक्सेयेविच! अनुरोध है कि बुद्धि से काम लो! तुम देखोगे कि सारी गुत्थी सुलझ जायेंगी। इसके उल्टे अगर ऐसा न करोगे और इसी तरह सारे जहाँ का दर्द अपने जिगर में पाले रहोगे तो जीना दुश्वार हो जायेगा। अच्छा''''दोस्विदानिया''''मित्र''''मेरे लिये इतनी फ़िक्र करने की जरूरत नहीं''''सचमुच मेरा कहना मानना और अपने को मेरे लिये इतना दुखी न करना।

वा० दो०

वारेन्का—मेरी हँसिनि,

ठीक है; मेरी देवदूती, ठीक है''''तुम कहती हो कि कोशिश करने पर भी क़र्ज़ न मिल सका तो कोई बात नहीं''''चलो, ऐसा ही सही! मुझे दोहरा धीरज बँधा, और तुम्हारे इस रूप को देखकर खासी खुशी

हुई। मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हुआ कि तुम इस बूढ़े को छोड़कर कहीं और जाओगी नहीं, और यहीं बनी रहोगी !

सच पूछो तो तुम्हारा पत्र पढ़कर और तुम्हारी आँखों में अपनी भावनाओं का मूल्य देखकर मेरा जी खिल-खिल गया। मैं यह बात बेकार की ऐंठ से नहीं कह रहा, बल्कि कह रहा हूँ क्योंकि तुम्हें मुझसे सच्चा प्यार है, और तुम मेरे हृदय के भावों को सही ढङ्ग से समझने की कोशिश करती हो। लेकिन, आखिर मैं अपने हृदय की चर्चा क्यों करूँ ? मेरा हृदय, मेरा ही हृदय तो है। लेकिन रानी, तुमने कहा है न कि मुझे अपना दिल, छोटा नहीं करना चाहिये। बिल्कुल ठीक है, प्रिये किसी को भी अपना दिल छोटा नहीं करना चाहिये ! ·· लेकिन, मेरी मुन्नी, इस पर भी बूटों का ख्याल तो आता ही है। कल दफ़्तर जाने को तो बूट चाहिये ही। सारी मुसीबत तो यही है। वैसे इस तरह की चिन्ता आदमी को बरबाद कर सकती है, और बिल्कुल बरबाद करके छोड़ देती है। लेकिन, मैं अपने आपको लेकर घुट नहीं रहा ! मैं तो सख्त से सख्त ठंडक और पाले में भी महज़ कमीज़ पहिन कर, नंगे पैरों आने-जाने को तैयार हूँ। मेरे लिये इससे भला क्या फ़र्क़ पड़ता है ? मैं छोटा-सा आदमी हूँ। पर, सवाल यह है कि लोग क्या कहेंगे ? मुझे बिना कोट के जाता देखेंगे तो मेरे दुश्मन क्या-क्या नहीं उड़ायेंगे ? शायद इसी डर से लोग कोट भी पहिनते हैं और जूते भी। तो देखा न, वारेन्का, इज्ज़त और साख बचाने के लिये ज़रूरत है नये जूतों की ! सच मानो, मेरी रानी, इस बात में सन्देह ज़रा भी नहीं ! सालों के अनुभव के आधार पर ऐसा कह रहा हूँ, इसीलिये अच्छा हो कि तुम दुनिया-देखे इस सीझे हुये बूढ़े की बात मानो और इन क़लम घिसनेवालों और काग़ज रँगनेवालों की एक न सुनो।

लेकिन, रानी, मैंने तुम्हें अभी यह तो बताया ही नहीं कि आज क्या कुछ हुआ ! कहना न होगा कि आज जो कुछ और जितनी कुछ

मुझ पर बीती, वह किसी दूसरे के लिये तो साल भर को काफ़ी होती। हाँ, तो हुआ यह कि मैं सुबह ज़रा जल्दी ही उस व्यक्ति से मिलने को चल पड़ा सोचा कि ऐसा न हो कि वह कहीं और चला जाये या मुझे खुद दफ़्तर पहुँचने में देर हो जाये।

और, उस समय बरस रहा था पानी और क़दम-क़दम पर गढ़ैयाँ-सी भर रही थीं। सो, मैं अपने कोट में सिकुड़ा-सिमटा आगे बढ़ा और इस बीच ईश्वर से प्रार्थना करता रहा—'कृपालु प्रभु, मेरे पाप क्षमा कर और कम से कम एक बार तो मेरी प्रार्थना सुन ले।' और, सहसा गिरजा सामने आया तो मैंने अपने सीने पर क्रॉस बनाया और ईश्वर से फ़िर वही प्रार्थना की। मगर, फिर लगा कि परमपिता से सौदेबाजी ठीक नही! बस, तो अपने विचारों में डूबा, बीच में आने वाली किसी भी विघ्न-बाधा की चिन्ता किये बिना मैं आगे ही आगे क़दम बढ़ाता गया। मुझे हर सड़क और हर गली सूनी मिली। मेरी तरह के दो-चार चिन्तित और परेशानहाल लोग ही जहाँ-तहाँ आते-जाते दीखे। ऐसे मौसम में, ऐसे समय घर से बाहर और भला निकलता भी कौन....!

पर, सहसा ही मेरी भेंट कुछ मजदूरों से हो गई, और उन लफंगों ने मेरा बड़ा मजाक बनाया। इस पर मैं काफ़ी ढीला पड़ा और घबड़ाया। रूबलों की इतनी चिन्ता न रह गई....यह हुआ कि एक धक्का ऐसा और लगा कि मैंने अपना इरादा बदला!

और, मैं वोस्क्रेसेंस्की-पुल तक पहुँचा कि मेरे जूते का तला फटफटाने लगा और चलना मुश्किल हो गया। फिर, ऐसे में मुझे देखा भी किसने?....येरमोलायेव ने....सिर्फ़ कॉपीस्ट है वह....जूनियर-क्लर्क तक नहीं है। बस, तो, वह झटके से तनकर खड़ा हुआ और यों देखने लगा जैसे कि मेरे स्वास्थ्य का जाम पीने के लिए मुझसे ताम्बे के एक सिक्के की आशा कर रहा हो! मैंने सोचा .. 'ओह, तुम मेरे स्वास्थ्य का जाम पियो या

न पियो···अब इसकी चिन्ता किसे है ?'····फिर, अपने को घसीटना मुश्किल लगा, तो मैं साँस लेने को रुका, और, इसके बाद, फिर आगे बढ़ा। अब मैंने इधर-उधर देखना शुरू किया कि कहीं कुछ तो ऐसा दीखे कि मन बदले और हौंसला बँधे। लेकिन, निराशा ही हाथ लगी। उल्टे, एक चहबच्चे में पैर चला गया और मैं कीचड़ से इस तरह नहा उठा कि शर्म से आँखें भर आईं। अन्त में दूसरी मंज़िल का काम देनेवाली अटारी का एक मकान दूर से ही झलका। मैं अपने-आप से बोला—सूद पर क़र्ज़ देनेवाले मारकोव का मकान यही है····येमेल्यान-इवानोविच ने जैसा बतलाया था, बिल्कुल वैसा ही है यह !···पर मैं घबड़ाया हुआ था, इसलिये निश्चय होने पर भी, मैंने दरबान से पूछकर बात पक्की कर लेनी चाही। सवाल किया "यह मकान किसका है, मित्र ?' दरबान ने अपने खास, सूखे ढंग से जवाब दिया—'मारकोव का।'····यह दरवान तो अपने-आप में जैसे जड़-पत्थर होते हैं। वैसे इस खास दरबान की बात ऐसी कुछ नहीं, मगर, फिर भी चित्त तो खराब हो ही गया। तुम तो जानती हो, कभी-कभी एक बात से दूसरी बात निकलती चली जाती है, और छोटी से छोटी चीज़ महत्त्वपूर्ण लगने लगती है।····

खैर, तो मैं तीन बार उस मकान के सामने से गुज़रा, लेकिन हर बार अन्दर घुसना दुश्वार से दुश्वारतर ही होता गया। सोचा—यह आदमी क़र्ज़ नहीं····देगा हरगिज़ नहीं देगा····एक तो वह मुझे बिल्कुल ही जानता नहीं; दूसरे, मैं देखने-सुनने में इतना अजीबोग़रीब लग रहा हूँ; तीसरे, मामला ऐसा नाज़ुक है ! खैर, क़िस्मत तो आज़माई ही जाये···· ताकि पीछे पछतावा न हो कि कोशिश तो करते !···और, वह कोई मुझे खा तो डालेगा नहीं।····इसलिये मैंने हल्के से फाटक खोला और अन्दर घुसा। परन्तु, इसी समय एक नई मुसीबत सामने आ खड़ी हुई कि कुत्ते का एक पिल्ला उछल-उछल कर भूँकने लगा। वैसे यह चीज़ तो है मामूली

सी, अगर फिर भी काफ़ी है कि आदमी पागल हो जाये; डगमगा जाये और उसके सारे फ़ैसले गड़बड़ा जायें।....

यानी, मैं उस घर में घुसा तो ज़िन्दा से ज्यादा मुर्दा-हालत में, और उस पर कि एक नये संकट का शिकार हो गया। अंधेरे में नज़र न आने के कारण, मैं ड्योढ़ी पर ही एक बुढ़िया पर भहरा पड़ा। औरत दूध से भरे कुछ बरतन धर-उठा रही थी। नतीजा यह हुआ कि बरतन उलट-पलट गये। फिर तो वह किस तरह बरसी मुझ पर, कितने ज़ोर से चीखी-आखिर यहाँ क्या धरा है तुम्हारे लिए! ...आदि...आदि....आदि।

वारेन्का, यह समझो कि जब मैं ऐसी परिस्थितियों में होता हूँ, तो मेरे साथ अक़्सर ही ऐसा ही कुछ होता चला जाता है! क़िस्मत की मार की चूक पर चूक होती चली जाती है।

हाँ, तो इस शोरगुल से घिनौनी-छिनाल सी, फ़िनिश-मकान मालकिन खिंच आई। मैंने उससे पूछा—'मारकोव रहते हैं यहाँ?' जवाब में पहिले तो वह साफ़ नकार गई; मगर फिर मुझे सिर से पैर तक ग़ौर से देखने के बाद उसने शायद कुछ और सोचा। पूछा—'काम क्या है?' मैंने उसे सब कुछ बतला दिया और कहा कि येमेल्यान-इवानोविच ने मुझे भेजा है यहाँ। इस पर उस बुढ़िया ने अपनी बेटी को आवाज़ दी।... लड़की ज़रा लम्बे क़द की थी, और उसके पैर नंगे थे।....

औरत बोली—'पापा को बुला लाओ। वे ऊपर किरायेदारों से बात कर रहे हैं।' फिर मेरी ओर मुड़ी—'कृपाकर अन्दर आ जाइये।'....

सो, अन्दर गया—कमरा खासा आरामदेह था। दीवारों पर तस्वीरें थीं, ज्यादातर जेनेरलों की। सोफ़ा था; गोलमेज़ थी, और खिड़की के दासे पर मिगनोनैट और गुलमेंहदी के गमले थे।....

मुझे लगा कि अभी तो भागा जा सकता है, इसलिये फ़िलहाल मैं भाग ही क्यों न जाऊँ! बस, तो मैं भागने-भागने को हो गया; रानी। सोचा-कल दुबारा आ जाऊँगा... शायद तब मौसम साफ़ होगा, दूध लुढ़का नहीं

होगा और ये जेनेरल इस तरह ग़ुस्से से घूरते नहीं मिलेंगे।····और, मैं दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा कि ठीक इसी समय मारकोव आ गया··· मारकोव कि क़द छोटा, उम्र से बूढ़ा, बाल सफ़ेद, आँखें चंचल, बदन पर तेलहा गाउन और कमर में उसकी रस्सी। बोला—'क्या बात है?' मैंने येमेल्यान-इवानोविच का नाम लिया, चालीस रूबल की बात सामने रक्खी और तमाम दूसरी बातें कहीं। मगर, अपने मुँह का अंतिम वाक्य समाप्त करने के पहिले ही उसकी आँखें भरी देखकर मैं समझ गया कि काम बनने का नहीं। वह बोला—'तुम्हें रूबलों की फ़ौरन ज़रूरत है, मगर मेरे पास इस समय रूबल नहीं हैं।····फिर यह तो बतलाओ कि तुम ज़मानत में क्या दोगे?'····मैंने ज़मानत के मामले में अपनी मजबूरी ज़ाहिर की, पर येमेल्यान-इवानोविच का नाम दुबारा लिया और बार-बार कहा कि रूबल फ़ौरन ही चाहिये।

उसने पूछा—'येमेल्यान-इवानोविच का इससे क्या मतलब, मेरे पास रूबल नहीं है।'····मैंने सोचा—बेशक नहीं होंगे। यही तो मैं रास्ते भर सोचता रहा था।····उफ़ वारेन्का··· उफ़, काश कि इस समय धरती फट जाती, और मैं उसमें समा जाता! मेरे पैर जम कर पत्थर हो गये, और ऊपर से नीचे तक झुरझुरी दौड़ गई। इस बीच में मारकोव को देखता रहा और वह मुझे, जैसे कि उसकी निगाहें कह रही हों 'अच्छा, अब तुम जाओ, दोस्त!' ··वारेन्का, सच मानो; कहीं मामला रुपये-पैसे का न होता तो मुझे बहुत ही घबराहट होती।····'मगर इतने रूबल तुम्हें चाहिये किस काम के लिये?' (यह तो उसने सचमुच ही कहा)। उत्तर में मैंने जो-सो-सा कहा, लेकिन उसने जैसे सुना ही नहीं। दुबारा बोला—'नहीं हैं····मेरे पास रूबल नहीं हैं। मुझे दुख है।' लेकिन, मैं तो इस पर भी अरदास और आरज़ू-मिन्नत करता रहा। वायदे पर वायदा करता रहा कि रक़म समय से लौटाल दूँगा ·· समय से भी पहले लौटाल दूँगा····मुँह माँगा सूद देने को तैयार हूँ। इतना न हो सके तो न सही,

क्या थोड़ा-बहुत भी नहीं दे सकते ?····उस समय तुम्हारा, तुम्हारे दिये आधे रूबल का और अपनी तमाम दुख-मुसीबतों का ख्याल आ रहा था मुझे, रानी ।····पर, वह बोला—'नहीं····सूद की बात नहीं, जमानत की बतलाओ कि बदले में क्या रक्खोगे । कुछ-न-कुछ तो रखना ही चाहिये ।··· वैसे, ईश्वर, क़सम रूबल मेरे पास नहीं । मुझे अफ़सोस है ।···· ईश्वर क़सम !····ईश्वर का नाम बीच में बेकार को घसीटा उसने····डाकू कहीं का !

सच मानो, मैं बतला नहीं सकता कि मैं कैसे उस घर से बाहर निकला और मैंने कैसे व्यबोरग्स क़ाया-मार्ग और वोस्क्रेसेंसकी-पुल पार किया । यों भी मैं थककर चूर हो गया था और ठिठुर कर बर्फ बन गया था । नतीजा यह कि दफ़्तर देर से पहुँचा, दस बजे । वहाँ मैंने अपने कपड़े ब्रश कर लेने चाहे; लेकिन स्नेगिरयोव नाम के उस दरबान ने यह भी नहीं करने दिया । डरा कि कहीं दफ़्तर का वह ब्रश मैं खराब न कर दूं ! तो देखा तुमने, रानी, कि लोग किस तरह मुझे घिस रहे हैं ! मेरी जान तो यही सब बातें ले रही हैं वारेन्का ! मैं ग़रीबी से नहीं मर रहा, मैं मर रहा हूँ इन संकटों, इन मुस्कानों. इन मज़ाकों, और इन तीनों के कारण ! ज़रा सोचो कि कहीं यह सारी बातें महामहिम के कानों में पड़ जायें तो क्या हो !····हर तरफ़ से बदक़िस्मती घेर रही है मुझे !····

मैंने आज तुम्हारे सारे पत्र दुबारा पढ़े, प्रिये ! सचमुच सभी कुछ कितना दर्दनाक है !····अच्छा, दोस्विदनिया, रानी····परमपिता तुम पर कृपा करें ।

म० देवुश्किन-

पुनश्च—मैंने तो अपनी इन सारी मुसीबतों की चर्चा मज़ाकिया ढङ्ग से करनी चाही थी, लेकिन बात बनी नहीं । मैं तो तुम्हें थोड़ा हंसाना चाहता था····लेकिन, खैर····मैं आऊँगा तुम्हारे यहाँ, प्रिये····मैं कल निश्चय ही आऊँगा तुम्हारे यहाँ ।

वारवरा-अलेक्सेयेवना-मेरी बाल-हंसिनि,

मैं तो कहीं का नहीं रहा ! हम दोनों ही कहीं के नहीं रहे ! हर चीज़ तार-तार होकर हवा में उड़ गई है—मेरा नाम, मेरी प्रतिष्ठा ! मैं तो बरबाद हो ही गया, मैंने तुम्हें भी मिटाकर छोड़ दिया, मेरी रानी ! तुम्हारे विनाश का कारण मैं हूँ। लोग मुझे सभी तरह की खरी-खोटी सुना रहे, मुझ पर तरह-तरह की तोहमतें लगा रहे, और मेरा मज़ाक बना रहे है। मेरी मकान-मालकिन ने तो आज मुझे गालियाँ तक दीं। मुझ पर जम कर बरसी और मेरे साथ वही व्यवहार किया, जो पैरों के नीचे की धूल के साथ किया जाता है। और, रताज्यायेव की पार्टी में किसी ने मेरे एक पत्र का मसौदा ज़ोर-ज़ोर से पढ़कर सुनाया ! पत्र मैंने तुम्हें लिखा था, और वह ग़लती से जेब से कहीं गिर गया था। बस, फिर तो, लोगों ने हमें क्या-क्या नहीं कहा, और हमारी क्या-क्या हँसी नहीं उड़ाई ! हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये वे, ग़द्दार कहीं के ! इस पर मैं अन्दर घुसा और मैंने रताज्यायेव को दग़ाबाज़ और ग़द्दार-दोस्त, और क्या-क्या नहीं बताया ! लेकिन, वह मुझ पर उलट पड़ा। कहने लगा—'तुम खुद ग़द्दार हो····पुराने छैला हो।····गुपचुप-गुपचुप जाने क्या-क्या करते रहते हो ! मिस्टर-लवलेस हो !····लाम्पट हो बिल्कुल····वदचलन कहीं के !'····

रानी, स्थिति भयानक है; लेकिन, यह सच है कि मेरे-तुम्हारे बारे में जो कुछ भी जानने लायक़ हैं, लोग वह सब कुछ जानते हैं। ज़रा सोचो तो कि फ़ाल्दोनी तक उसी रंग में रंग गया है। मैंने उससे बिसाती के यहाँ से कुछ लाने को कहा। लेकिन, उसने साफ़ इन्कार कर दिया और बोला—'मुझे बहुत काम है।'—इस पर मैं बोला—'लेकिन, यह····

यह भी तो तुम्हारा काम है !'···उसने जवाब दिया—'नहीं; यह मेरा काम नहीं है, क्योंकि तुम किराया अदा नहीं करते ।'

पर, मुझसे इतना अपमान सहा न गया और मैंने कहा- 'तुम जाहिल-किसान हो···बेवकूफ़ हो !'····लेकिन, जानती हो इसके जवाब में उसने क्या कहा ? बोला—'जो ऐसा कहता, वह खुद गधा है···खुद बेवकूफ़ हैं ।'····इस पर मुझे उसके होश-हवास पर विश्वास न हुआ। मैंने कहा—'तुम शराब के नशे में हो, उल्लू देहाती कहीं के !' मगर, उसने उलटकर तड से जवाब दिया—'तुम्हारी रक़म से तो पी नहीं है ! तुम्हारी जेब में तो इतना भी नहीं कि परसों रात की घटना के बाद खुद थोड़ी सी पी लेते और क़ायदे में आ जाते । दस कोपेक उस औरत से गिड़गिड़ाकर वसूले···क्यों ?'····फिर, ज़रा रुक कर बोला—'क्या शरीफ़ आदमी हो तुम ! क्या कहने हैं तुम्हारी शराफ़त के ।'····आज हमारी यह हालत है वारेन्का ! जीने में शर्म महसूस होती है ! मुझे लोग अछूत और बिना पासपोर्ट का आवारा समझते हैं, और उसी तरह पेश आते हैं। कैसी बदक़िस्मती है ! मैं तो खत्म हो गया····और, ऐसा खत्म हो गया कि अब उबरने की कहीं से कोई उम्मीद नहीं ।

म० दे०

अगस्त १३

मुसीबत पर मुसीबत टूट रही है, मेरे आदरणीय, मकार-अलेक्सेयेविच ! मेरी समझ में नहीं आता कि करूँ तो करूँ क्या ? आखिर तुम्हारा हश्र क्या होगा ? आखिर मैं तुम्हारी भलाई के लिये क्या करूँ ?····

आज लोहे से मेरा हाथ जल गया ·· लोहा उंगलियों से फिसल गया, और मैं जल गई । सवाल है कि अब मैं क्या करूँ ? ऐसे में काम कर

नहीं सकती; और फ़ेदोरा है, सो वह भी पिछले तीन दिनों से बीमार है। मेरी चिन्ता का अन्त नहीं है।

फ़िलहाल, चाँदी के तीस कोपेक भेज रही हूँ। बस, कुल इतना है ही मेरे पास! ईश्वर गवाह है कि मुझसे हो सकता, तो मैं तुम्हारे लिये जाने कितना करती! हालत ऐसी है कि मायूसी से आँखों में आँसू आ-आ जाते हैं।....ख़ैर.... दोस्विदानिया, मित्र।

आ सकना तो आज किसी समय यहाँ आ जाना, मुझे बड़ी राहत मिलेगी।

वा० दो०

अगस्त १४

मकार-अलेक्सेयेविच,

आखिर तुम्हें हुआ क्या है? क्या तुम्हारे मन में भगवान का डर ज़रा भी नहीं रहा? तुम तो मेरा दिमाग़ ख़राब करके दम लोगे! तुम्हें शर्म आनी चाहिये कि अपने को इस तरह बरबाद कर रहे हो....ज़रा अपनी नेकनामी-बदनामी का तो ख़याल करो! आखिर को तुम इज़्ज़तदार आदमी हो....प्रतिष्ठित व्यक्ति हो....तुमने इतना सब होने कैसे दिया? अगर उड़ते-उड़ते सारी बात तुम्हारे दफ़्तर तक पहुँच गई तो क्या होगा? चुल्लू भर पानी में डूब मरोगे! ज़रा अपने सफ़ेद बालों का लिहाज़ करो और ईश्वर से डरो!....फ़ेदोरा इन्कार करती है। वह आगे से तुम्हारी कोई सहायता न करेगी। और, मैं भी नही करूँगी। तुम्हारा विचार है कि तुम जो इस तरह का व्यवहार करते हो, उसका मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता? तुम नहीं जानते कि तुम्हें लेकर मैं कितना दुखती हूँ! मैं सीढ़ियों पर खड़े होने की हिम्मत भी जैसे-तैसे ही जुटा पाती हूँ, क्योंकि हर निग़ाह मुझ पर आकर गड़ जाती है, और लोग जाने क्या-क्या बकने लगते हैं। कहते हैं 'ज़रा इसको देखो। पियक्कड़ से

इश्क लड़ा रही है! ''''और, जब तुम लादकर घर लाये जाते हो तो कानों मे पड़ता है 'आज फिर लोग उस क्लर्क को लादकर लाये हैं।' और लज्जा से मेरी गर्दन झुक जाती है, मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं। मैं क़सम खाती हूँ कि यही सब चलता रहा तो मैं चली जाऊंगी यहाँ से'''' जहाँ सींग समायेगा, वहाँ जाकर नौकरानी बन जाऊँगी, कपड़े धो-धोकर रोटी कमाउगी''''मगर, यहाँ नही रहूँगी।''''

मैंने तुम्हें बुलाया था, मगर तुम आये नहीं। मेरी मिन्नतों और मेरे आँसुओं की तुम्हारी निग़ाह में कोई कीमत नहीं, मकार-अलेक्सेयेविच! और, ताज्जुब तो यह है कि तुम्हें पीने के लिये रक़म कहाँ मिलती है? ज़रा अपनी ओर देखो '' अपनी चिन्ता करो तुम''''तुम अपने को बुरी तरह तबाह कर रहे हो! और, आखिर तुम क्यों कर रहे हो ऐसा?''''मैंने सुना कि तुम्हारी मकान-मालकिन ने तुम्हें घर में घुसने नही दिया, और तुम्हें रात गलियारे में गुज़ारनी पड़ी! कितनी बेइज़्ज़ती की बात है! यह जरा सोचो कि इतना-सब सुनकर मुझे कैसा-कैसा-सा लगा होगा!

देखो, यहाँ आना ज़रूर। आने पर खुश होगे तुम। हम साथ-साथ कुछ लिखें-पढ़ेगे और गुज़रे हुये ज़माने की यादें करेंगे, फ़ेदोरा अपनी तीर्थ-यात्राओं की चर्चा करेगी। मगर, देखो, तुम इस तरह अपनी और मेरी ज़िन्दगी तीन-तेरह न करो! मैं तो सिर्फ़ तुम्हारे लिये ही यहाँ रह रही हूँ, और यहाँ टिकी हुई हूँ। संकट में भी हर व्यक्ति की तरह शान से जियो और याद रक्खो कि ग़रीबी कोई ऐसा गुनाह नहीं है! और, यह कि तुम इस तरह मायूस आखिर क्यों होते हो? ईश्वर बड़ा दयालु है। हमारी यह मुसीबतें भी देर-सबेर कट ही जायेंगी। लेकिन फ़िलहाल, ज़रूरत है धीरज से काम लेने की और सहने की।''''

मैं बीस कोपेक भेज रही।हूँ ! इससे तम्बाकू या ज़रूरत की दूसरी चीज़ें खरीद लेना, मगर इसे किसी भी बुरी चीज़ पर खर्च न करना।··· और, आना ज़रूर-ज़रूर। शायद मेरे यहाँ आने में तुम्हें शर्म लगती है। लेकिन, सच मानो, इसकी कोई ज़रूरत नहीं। अपना मिथ्याभिमान त्यागो, और अब तक जो कुछ ग़लत कर चुके हो, उस पर पश्चाताप करो। ईश्वर पर विश्वास रक्खो। वह जो कुछ भी करता है, हमारी भलाई के लिये ही करता है।

वा० दो०

अगस्त १६

मेरी मधुर और बहुत-मधुर वारवरा-अलेक्सेयेवना,

तुमसे अधिक मेरा कौन है ? मगर, सच मानो, मुझे इतनी लज्जा का अनुभव होता है कि हाथ से चेहरा ढंक लेने का मन करता है। लेकिन, प्रिये, सचमुच कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़ा है हमें। इसलिये सोचता हूँ, कभी-कभी यह सब भूलकर क्षण-दो क्षण को मस्ती अनुभव क्यों न की जाये ? ऐसे में मै भूल जाता हूँ कि मेरे जूते के तले बिल्कुल बेकार हो गये हैं····क्योंकि तले आखिर को तले हैं··· वे कटे-फटे, सडे-गले और गंदे ही रहेंगे····उनमें कुछ बदलेगा तो है नहीं ! अगर यूनान के मनीषी नंगे पैरों चल सकते थे, तो हमें ऐसी कुछ नहीं-सी चीज़ों को लेकर भला क्यों सिर खपाना चाहिये ? फिर, सवाल यह उठता है कि अगर हालत यह है कि तो लोगों को मेरे जूतों को लेकर मेरा मज़ाक क्यों बनाना चाहिये····मेरा अपमान क्यों करना चाहिये ?····

मेरी मुन्नी, चर्चा के लिये कोई दूसरा और इससे अच्छा विषय नहीं मिला तुम्हें ? और देखो, फ़ेदोरा से कह दो कि वह खुशामदी है, बेसिर-

पैर की बातें करती है, बेकार के तूफ़ान खड़े करती है, और अक़्ल के नाम पर नखालिस काठ का उल्लू है····रंडी कहीं की! और, जहाँ तक मेरे सफ़ेद बालों का सवाल है, रानी, तुम्हारा ख्याल ग़लत है। मैं उतना बूढ़ा नहीं हूँ।

येमेल्या तुम्हें स्नेह भेजता है।····तुमने लिखा है कि मेरे कारण तुम्हारा दिल चूर-चूर हो गया और तुम बहुत रोईं। और, अब सुनो कि तुम्हारे कारण मेरा दिल छलनी हो गया और मेरे आँसू रोके न रुके।···· ख़ैर····।

अन्त में कामना है कि तुम स्वस्थ और प्रसन्न रहो। मैं ठीक हूँ—स्वस्थ! मेरी नन्हीं-देवदूती, मैं हूँ—

तुम्हारा स्नेहाकांक्षी,
मकार-देवुश्किन

अगस्त २१

प्रिय बारबरा—अलेक्सेयेवना—मेरी आदरणीया-सखी,

मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ, रानी! पर, इससे लाभ कुछ नहीं, क्योंकि इन करतूतों के लिये जितना अपराधी मैं अपने को इस समय अनुभव करता हूँ, इससे कम इनके पहिले भी नहीं करता रहा हूँ। मगर, इसके बावजूद मुझे गिरना था और मैं गिरा। मेरी अपनी-रानी, मैं न तो मन का बुरा हूँ और न दिल का पत्थर! तुम्हें नुकसान पहुँचाने के लिये तो, बच्ची, आदमी के पास ख़ूँख़ार चीते का दिल होना चाहिये; और, तुम तो जानती हो कि मेरे पास दिल मेमने का है; उस पर भयानक हो सकना तो जैसे मेरे स्वभाव में ही नहीं! इसलिये, प्रियतमे, अपराध न सिर्फ़ मेरा है, और न केवल मेरे दिल या दिमाग़ का। फिर अपराध किसका है, यह बतलाने की सामर्थ्य मुझमें नहीं। प्रिये, वह अपराधी तो

सात पर्दों के पीछे रहने वाला है।··· तुमने पहिले मेरे लिये तीस कोपेक चाँदी के भेजे और फिर बीस कोपेक ताँबे के; और, मैं किसी ग़रीब-यतीम की उस थाती को फटी-फटी-सी आँखों से देखता बैठा रहा। मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े होता रहा। सोचता रहा कि तुम्हारा हाथ जल गया है, तुम काम नहीं कर सकतीं और भूखों मरने की नौबत आने में अब बहुत देर नहीं हैं; पर, इस पर भी तुमने मेरी तम्बाकू वग़ैर: के लिये रक़म भेजी। ज़रा सोचो कि ऐसे में भला क्या करता मैं ? बिना सोचे-समझे किसी निर्धन, अनाथ को लूट लेता ? रानी, मन बहुत ही दुखा ! यानी, पहिले तो मुझे ऐसा लगा कि मैं बिल्कुल निकम्मा हूँ—अपने जूतों के तलों से भी गिरा हुआ। बस, तो अपने को महत्त्व देना, मुझे खासा मज़ाक लगा। इसके साथ ही मैंने अपने को मान लिया बिल्कुल महत्त्वहीन और बिल्कुल अशोभन—बिल्कुल अभद्र ! इस प्रकार जब आत्म-सम्मान ही समाप्त हो गया तो अपने को गुणवान या योग्य मानने का सवाल ही नहीं रहा; और, बस, फिर तो मैं बेरोक-टोक गिरने लगा। और तो क्या, इसे भाग्य ही कहो ! यानी पहिले तो मैंने अपना मन थोड़ा बदलना चाहा, मगर फिर एक बुराई से दूसरी बुराई पैदा होती गई।····यह समझो कि प्रकृति में घुली हुई उदासी, मौसम ठंडा, मूसलाधर बरखा, और ऐसे में राह में येमेल्या से मुलाक़ात उसका सभी कुछ रेहन हो चुका था, रक़म फूंक चुकी थी, और दो दिन से दाना मुँह में न गया था। सो, वारेन्का····अब वह गिरवीं न रखने लायक़ हर चीज़ भी गिरवीं रखने पर आ गया था ! बस, तो मुझे उस पर ऐसा रहम आया और मेरे मन में उसके लिये ऐसी हमदर्दी जगी कि लाख न चाहने पर भी मैंने उसके सामने हथियार डाल दिये। और, यहीं से गुनाह शुरू हुआ। उफ़, हम दोनों किस तरह रोये और किस तरह तुम याद आईं। येमेल्या ·· आदमी नेक, कोमल और ऐसा दयावान है कि हद है।

और, यह सभी कुछ मैं अनुभव करता हूँ····यही कारण है कि मुझे

इतना भोगना पड़ता है ·· सचमुच इसका कारण यही है।····मैं जानता हूँ कि मुझ पर तुम्हारा कितना ऋण है, रानी! मैंने तुम्हें जाना क्या, अपने को और गहराई से पहिचाना ··· प्यार तो तुमसे हो ही गया! मगर; मेरी देवदूती, इसके पहिले मैं दुनिया में जैसे बिल्कुल अकेला था····जीता क्या था, बिल्कुल नींद में ज़िन्दगी गुज़ारता था। उन दिनों हरामज़ादे मेरे शरीर तक को भद्दा बतलाते थे और मुझसे नफ़रत करते थे। इसका नतीजा यह हुआ कि मैं खुद अपने को नफ़रत की निगाह से देखने लगा। यही नहीं, उन्होंने मुझे बेवकूफ़ कहना शुरू किया तो मैं खुद अपने को बेवकूफ़ मानने लगा. लेकिन, तुम मेरे जीवन में आईं तो जैसे कोई सपना स्वर्ग से धरती पर उतर आया। तुम आईं तो मेरे अस्तित्व, मेरी आत्मा और मेरे हृदय का अन्धकार प्रकाश से भर उठा। जाने कैसे से सुख और चैन का अनुभव हुआ। पहिली बार लगा कि मुझमें और दूसरों में कोई खास फ़र्क़ नहीं····शायद व्यक्तित्व में वह मँजाव नहीं है, शायद वह धार नहीं है, शायद वह चमक नहीं,····लेकिन, इसमें कुछ नहीं, है मैं भी इन्सान हूँ और मेरे पास भी दिल है, दिमाग़ है····।

लेकिन, यह इस बार जो दुर्दिन ने घेरा और रेले पर रेला आया, तो मुझे ऐसा लगा जैसे कि मैं लावारिस जानवर हूँ हर मानी में अछूत हूँ। बस तो खुद अपनी निगाह में मेरी कोई इज़्ज़त न रह गई, और बोझ इतना आ पड़ा कि दिल टूट-टूट गया।

खैर····तुमसे कोई पर्दा नहीं, और मैंने सभी कुछ तुम्हारे सामने ज्यों का त्यों रख दिया। लेकिन, मेरी आँखों के यह आँसू तुमसे बार-बार मिन्नतें करते हैं कि देखो, अब इस बात का ज़िक्र दुबारा मुँह पर न लाना! ···मैं यों भी बड़ा दुखी हूँ··· चूर-चूर हूँ····दिल तार-तार है····!

रानी, आदर सहित,

मैं हूँ तुम्हारा—चिरंतन-मित्र,

मकार-देवुश्किन

सितम्बर ३

मेरा पिछला पत्र अभी तक पूरा नहीं हो पाया, मकार-देवुश्किन, लिखना मुश्किल हो गया। जीवन में कभी-कभी ऐसे भी क्षण आते हैं, जब एकान्त मुझे सुख देता है, और उदासी का अन्त नहीं रहता। यही नहीं यह हालत तो इन दिनों अकसर ही रहती है। ऐसे में पुरानी बातें इस तरह उमड़-उमड़ कर आती हैं कि 'क्या और क्यों' के उत्तर देना सम्भव नहीं होता। यानी, कुछ ऐसी सी बाढ़ आती है और मुझे अपने साथ इस तरह बहा ले जाती है कि घन्टों किसी चीज़ का होश ही नहीं रहता। वैसे किसी सुख की या दुख की याद इस समय ऐसी कोई ख़ास नहीं, मगर, फिर भी कुछ यादें तो हैं ही; और, इनमें भी अपने सुनहरे-बचपन की याद तो अकसर ही आ-जाती है। और, फिर उसके बाद मन में अजीब उदासी-उदासी-सी घुल जाती है, कमज़ोरी का अनुभव होने लगता है, और सपने चूर-चूर कर देते हैं। नतीज़ा यह है कि तन्दुरुस्ती दिन-ब-दिन गिरती ही जा रही है।

लेकिन, आज की सुबह, पतझर के इस मौसम के लिये, अपवाद ही रही। जैसे बड़ी ताज़गी लेकर आई। वैसे बड़ी शक्ति मिली। बड़ी प्रसन्नता का अनुभव हुआ। ग़रज़ यह कि पतझर आ गया। गाँव में थी तो इस मौसम से मुझे कितना प्यार था। उस समय मैं थी तो बच्ची ही, किन्तु अनुभूति की तीव्रता का बोध तब भी होता था।····पतझर के मौसम की शामें मुझे सुबहों से ज़्यादा भातीं थी। हमारे घर से ज़रा फ़ासिले पर, पहाड़ी के पार एक झील थी··· इस समय भी मेरी निगाहों के सामने जैसे है वह····झील चौड़ी थी और रवों की लम्बी-चौड़ी चादर की तरह चमाचम करती थी। किसी दिन शाम को अगर सन्नाटा रहता तो बेचारी ऐसी शांत पड़ी रहती कि पानी की सतह पर झुके पेड़ों में पत्ता तक न खड़कता, हवा में तरी घुली रहती, और उसके झोंके साँसों को

रह-रहकर सहलाते। फिर, ओस की बूँदें घास की पत्तियों पर आ जमतीं, खपरैली-छतों के नीचे की खिड़कियों में रोशनी हो उठती, और ढोरों के झुण्ड घरों को लौटते। ठीक इसी समय, हर चीज़ की सुध-बुध बिसरा कर, सबकी निगाहें बचाकर झील के किनारे जा-पहुँचना मुझे बहुत ही भला लगता। और, वहाँ पहुँचकर मैं किनारे के मछुवों के अलावों की आग की लपटों को लहरों पर लहराते देखती, और आकाश के शीतल-नीलम के साये में बुझती ललाई को देखकर आहें भरती। फिर, होते-होते चाँद उग आता; और, क्या किसी चिड़िया के पंखों की फड़फड़ाहट, क्या झाड़ियों की हल्की से हल्की सरसराहट, और क्या किसी मछली के पानी में छपाके की आवाज़, झलाझल हवा, चाँदी के घन्टे की तरह, हर ध्वनि को ले-उड़ती, और दूर-दूर तक गुंजाती चली जाती। फिर, संवराती सतह के ऊपर पतली, और पारदर्शी धुन्ध के बादल छाते, दूर की हर चीज़ पहिले धुँधली पड़ती, और फिर अंधेरे में खो जाती। लेकिन, पास की हर चीज साफ़, टँकी हुई सी नज़र आती—क्या नाव, क्या पानी का सिरा, क्या कोई नन्हीं द्वीप, क्या पानी के बीच पड़ा रह गया पीपा, और क्या झाड़ों के बीच फँसा रह गया पीली झाड़ू का एक तिनका। इसी बीच सहसा ही पीछे रह गई कोई चील पानी में डुबकी लगाती, और फिर उभरकर आसमान में पर तोलने लगती। मैं किनारे खड़ी इन सभी चित्र-विचित्र अद्भुत दृश्यों को आँखों से देखती, कानों से सुनती और आत्मा से अनुभव करती····बड़ा आश्चर्य होता····उस समय उम्र भी क्या थी मेरी।

हाँ, शरद् और, विशेष-रूप से, पतझर के अन्तिम दिन मुझे बहुत ही प्यारे लगते! अब कटाई हो चुकी होती और सारे काम खतम हो गये होते। ऐसे में लोग किसी-न-किसी झोपड़ी में जमा होते, तरह तरह की गपशप करते, नाचते-गाते और जाड़े का इन्तज़ार करते। इस समय नीचे

उतर आते आकाश के नीचे हर चीज़ और उदास हो उठती; बराबर साँवले पड़ते और नीलम में नहाते जंगलों के सिरों पर पीली पत्तियाँ जमा हो जातीं। यह सँवराहट और नीलिमा शामों को खास तौर पर गहराती, क्योंकि उस समय पाला पड़ता और पेड़ लम्बे-चौड़े भूतों और विशालकाय दैत्यों में बदल जाते।

कभी-कभी ऐसा होता कि मैं देर तक बाहर रह जाती या दूसरों के साथ बाहर जाती मगर पिछड़ जाती। ऐसी स्थिति में मैं सहसा ही अकेलापन अनुभव करती, डर से रोंगटे खड़े हो जाते और घबड़ाते हुये घर की ओर लपकती। इस बीच मैं पत्ती की तरह काँपती और किसी पेड़ के कोटर से किसी के अपने को एकटक घूरने की कल्पना करती। फिर जंगल के बीच हवा सरसराती, गरजती और कराहती, पेड़ों की बची-खुची पत्तियाँ उड़ाती और उन्हें ऊपर उछाल-उछालकर नचाती कि नचाती चली जाती। अचानक ही सँवराते आसमान के बीच कलरव करती चिड़ियों के बड़े-बड़े दल उड़ते दीखते। मेरा मन एक अन-कहे से डर से काँप उठता और कोई फुसफुसा कर कहता-सा लगता — भागो ···बच्ची····भागो····जल्दी ही जंगल काटने को दौड़ेगा··· भागो यहाँ से! और, मैं जान छोड़कर दौड़ती। आखिरकार घर पहुँचती तो हर ओर हँसी-खुशी और उमंग मिलती। हम सभी बच्चे मटर की छीमियाँ या पोस्ते के सिरे छीलने में जुट जाते। दूसरी ओर, चूल्हे में लकड़ियाँ कड़कड़ातीं, माँ काम-काज में जुट जातीं और बूढ़ी आया उल्याना हमें जादूगरों या प्रेत-बैतालों की पुरानी कहानियाँ सुनाती। हम एक दूसरे से और सटकर बैठ जाते, लेकिन बराबर मुस्कराते रहते। सहसा ही कोई आवाज होती। सवाल उठता कि किसी ने दरवाज़ा खटखटाया क्या? लेकिन, नहीं, मालूम होता फ्रोलोवना-दादी का चर्खा घरघरा रहा है; और हम सभी ठठाकर हँस पड़ते। लेकिन, रात को सपने के डर से नींद नहीं आती। आधी रात होती तो मैं चौंक-चौंक

उठती, लेकिन हिलने-डुलने की हिम्मत न करती, और तड़का होने तक आँखें खोले ज्यों की त्यों पड़ी रहती। मगर, इस पर भी सुबह उठती तो फूल की तरह खिली हुई लगती। फिर खिड़कियों से झांक कर बाहर नजर दौड़ाती तो खेतों को ठण्ड के पंजों में जकड़ा पाती; और पेड़ों की टहनियों को पाले की पतली परतों से मढ़ा देखती। ताल का पानी बर्फ से ढका नजर आता और चहचहाती चिड़ियाँ खुशी से इधर-उधर फुदकती मिलतीं। लेकिन सूरज की किरनों के धरती पर उतरते ही ताल की बर्फ़ देखते-देखते पिघल जाती। दुनिया जैसे फिर उजागर हो उठती और प्रकाश और प्रसन्नता से भर जाती। हम समोवार के पास आ जमा होते कि चूल्हा फिर जग जाता और हमारा काला कुत्ता पोलकान, अब भी रात की ठड से सिकुड़ा-मुकुड़ा आशा से दुम हिलाने लगता। सहसा ही लकड़ी के लिये जंगल जाते हुये किसी किसान की गाड़ी सड़क पर खड़-खड़ाती।····सचमुच वे दिन कैसे सन्तोष से भरे और हँसी-खुशी से हरे थे।

इन स्मृतियों से आँखों में आंसू आ जाते हैं कि अतीत ऐसा भव्य और मुदमय और वर्तमान ऐसी उदासी और ऐसे अन्धकार से भरपूर। हे भगवान, पता नहीं अंत क्या होगा? जानते हो, मुझे लगता है कि इस साल का यह पतझर मुझे अपने साथ ले जायगा। मुझे पूरा विश्वास है इस बात का! मेरी तबीयत बहुत ही खराब है, बहुत ही खराब। मुझे अपनी मौत का ध्यान रह-रह कर आता है। मगर, मैं यहाँ दम तोड़ना नहीं चाहती। यहाँ दफ़न होना नहीं चाहती। शायद पिछले बसंत की तरह मैं इस बार भी चारपाई पकड़ लूँगी। तुम तो जानते ही हो कि पिछली बीमारी के बाद पूरी तरह ठीक तो मैं अब तक हुई ही नहीं। सो, इन दिनों फिर तबियत बहुत गिर गई लगती है।

फ़ेदोरा सारे दिन बाहर रही है, और मैं बिल्कुल अकेली हूँ। वैसे कभी-कभी ऐसा होता है कि मुझे अकेलेपन से डर लगता है। अनुभव

होता है कि कमरे में कोई है और मुझसे बातें कर रहा है। यही कारण है कि मैंने इतना लम्बा पत्र लिखा है ! बात यह है कि कुछ भी लिखने लगती तो डर दूर भाग जाता है। ख़ैर, तो अलविदा····और, पत्र भी अब ख़त्म ही करूँ क्योंकि क़ाग़ज ख़त्म है। और समय भी नहीं है।····

अब मैंने अपने कपड़े और टोप बेचकर जो रक़म जुटाई थी, उसमें से चाँदी का एक रूबल भर बाक़ी बचा है। मैं सचमुच बहुत खुश हूँ कि तुमने चाँदी के दो रूबल मकान-मालकिन को दे दिये हैं। इससे अब थोड़े समय तक तो जान बची ही रहनी चाहिये।

देखो, कोशिश कर अपने कपड़े ठीक करा लो। अच्छा, दोस्ति-दानिया, मित्र ! मैं बहुत ही कमज़ोर हो गई हूँ, और बहुत ही जल्दी थक जाती हूँ। यानी, ज़रा-सी भी मेहनत की कि शरीर की नसें ढीली पड़ीं। ऐसे में सोचो कि काम आ भी जाये तो मैं करूँगी कैसे ? और इस स्थिति की कल्पना-मात्र से सामने की सारी आस-उम्मीद ख़त्म हो जाती है।

वा० दो०

सितम्बर ५

प्रिय वारेन्का,

आज कई-कई घटनायें घटीं। पहिले तो, सिर दर्द हुआ; और इसे दूर करने के लिये मैं फ़ॉन्तेका के किनारे टहलने चला गया।····शाम नम-नम सी थी और चारों ओर अँधेरा था····तुम जानती हो, पाँच के ज़रा बाद ही अँधेरा घिरने लगता है··· यों पानी तो न बरसा था; मगर कोहरे ने हालत उससे भी बदतर कर रक्खी थी। आसमान के आर-पार छोटे-छोटे बादल उमड़-घुमड़ रहे थे, और लोग बाँध के किनारे लपकते चले जा रहे थे। इसमें भी अजीब बात यह है कि सभी

कि चेहरे भयानक और उतरे हुये थे। इनमें थे क़ायदे से ढाले हुये, नुकीली नाकों और नंगे सिरों वाले किसान; लाँग बूट पहिने फ़िनिश-औरतें; गाड़ीवान; मेरी तरह के दफ़्तरी बाबू; ग्रीज़ से काला चेहरा किये, धारीदार कुरतो पहिने और हाथ में एक बड़ा-सा ताला लिये एक रँगरूट; और ताड़ की तरह लम्बा, फौज से अलग कर दिया गया एक फौजी; शायद यह सब रोज़ इसी समय इधर से निकलते रहे हों।....खुद नहर की हालत भी अपने आप में देखने लायक़ थी। इतने बजरों के लिये उसमें जगह आखिर कहाँ से निकल आई!...पुल पर कुछ बिमरिहा मैली-कुचैली औरतें बैठी सड़े हुये सेब बेच रही थीं।

यों फ़ान्तेका चहलक़दमी के लिये बहुत साफ़-सुथरी जगह नहीं है। वहाँ जाओ तो पैरों के नीचे गीले पत्थर और चारों ओर ऊँचे-ऊँचे, धुआँ से मकान। और, इस समय तो खास तौर पर धुन्ध ही धुन्ध थी कि दायें धुन्ध, बायें धुन्ध, नीचे धुन्ध, ऊपर धुन्ध।

सो, मैं गोरोखोवाया में मुड़ा तो अँधेरा हो चुका था और लोग लैम्प जलाने लगे थे। मैं आज इधर एक ज़माने बाद आया था! हर तरफ़ खासी चहल-पहल थी! छोटी-बड़ी खूबसूरत दुकानें थीं। सभी तरह-तरह के समानों से भरी थी और फूलों और रिबनदार टोपों से खिल रही थीं। कोई भी साधारण दर्शक देखता तो समझता कि शायद नुमायश लग रही है। ऐसी सड़क पर मालदार लोग ही आते होंगे; ज़रा सोचो कि यहाँ लोग आते हैं, और अपनी-अपनी पत्नियों के लिये कैसी-कैसी चीज़ें खरीदते हैं!....यहाँ कुछ जर्मन-बेकर भी रहते हैं। अवश्य ही वे धनी लोग होंगे। फिर सवारियाँ कि बेशुमार....मैं तो चिन्ता में हूँ कि यह सड़क इतना-सारा बोझ पता नहीं सम्हालती कैसे है! और, सवारियाँ भी कैसी-कैसी शानदार कि चमचमाती हुई खिड़कियाँ, हर ओर रेशम और मखमल की फिसलन, और तलवारों और झब्बों वाले अर्दली।

सो, मैंने पास से गुज़रने वाली हर गाड़ी में झाँक-झाँककर देखा और

सोचा कि हो न हो, अन्दर बैठी महिला या तो कोई काउंटेस है, या कोई राजकुमारी है। हाँ, समय शायद बॉल-नृत्यों या शाम की पार्टियों का रहा होगा।....अब तक मेरा ख्याल था कि किसी बड़े घर की बड़ी महिला को पास से देखना दिलचस्प तो होता ही होगा....इससे ख़ुशी भी खासी हासिल होती होगी। मगर, इस वक़्त तक ऐसा मौक़ा मुझे कभी न मिला था कि इसका प्रत्यक्ष अनुभव करता।.. सो, वह आज हुआ। इस समय मुझे तुम्हारा भी ख्याल आया और ख्याल आया तो बहुत ही तकलीफ़ हुई रानी! लगा, वारेन्का, कि आख़िर तुम ही इतनी दुखी और परेशान क्यों हो? मेरी प्रियतमे, मेरी नन्हीं; देवदूती तुम इन सारी औरतों से उन्नीस किस मानी में हो? तुम कितनी हमदर्द, सुन्दर और पढ़ी-लिखी हो! तुम्हारी क़िस्मत में इतनी-इतनी मुसीबतें आख़िर क्यों हैं? ऐसा क्यों है कि नेक और भला आदमी इस तरह दिक़्क़त में, ठुकराया हुआ-सा रहता है, जबकि कुछ लोगों के यहाँ सुख-समृद्धि बेबुलाये पहुँच जाती है? मैं जानता हूँ कि ऐसे विचार मेरे मस्तिष्क में नहीं आने चाहिये, क्योंकि इनसे क्रांति की बू आती है। लेकिन, कोई न्याय की बात करे और बतलाये कि क्यों ऐसा होता है कि एक जगह तो बच्चा पेट में आया कि सुख-सौभाग्य उसके नाम लिख गया, और कहीं किसी का जन्म हुआ तो वह धरती पर साँस लेते ही यतीम हो गया कि बेचारा अब ज़िन्दगी भर भोगे! हाँ, परीकथाओं की तरह कभी-कभी यह भी होता है कि ईश्वर मूर्ख-इवानुश्का जैसे किसी आदमी को सभी कुछ छप्पर फाड़कर दे देता है। फिर तो वह अपने पुरखों की तिजोरी खखोड़-खखोड़कर जीता है, और जी भर खाता-पीता और मौज उड़ाता है। वहीं एक दूसरा ग़रीब उसे ललचाई आँखों से देखता है और मुँह में पानी भर-भर लाता है, जैसे कि उसका यही महत्त्व है, और वह इसी के लिये पैदा हुआ है।....रानी, यह सब सोचना पाप है, मगर कुछ पाप ऐसे भी तो होते हैं जो अनजाने ही; चोरी-चोरी मन में घर कर जाते हैं। मैं पूछता हूँ कि ऐसा क्यों नहीं है

कि हम छोटे-लोगों की चिन्ता न कर तुम जेनेरलों के साथ ऐसी ही किसी गाड़ी पर सवार होकर निकलतीं, और लोग तुम्हारी हल्की मुस्कान के लिये राह में पलकें बिछाये रहते ? अगर कहीं ऐसा हो सकता तो तुम चाँदी-सोने से लदी रहतीं—इस तरह फटे-पुराने लिनेन के कपड़े न पहिनतीं। तब क्या तुम ऐसी ही कमज़ोर और दुबली-पतली होतीं ? नहीं, ऐसा कुछ न होता ! इसके उल्टे तुम होतीं गुड़िया-सी स्वस्थ और मोटी-ताज़ी। उस समय तुम्हारी छाया भर पाने के लिये तुम्हारी चमाचम खिड़कियों में झाँकना, और तुम्हें स्वास्थ्य और हँसी-खुशी से भरा देख पाना सचमुच ही कितना सुखद होता, मेरी प्यारी-प्यारी, नन्हीं गौरैया ! लेकिन आज····आज की सोचो··· आज असलीयत क्या है ? बुरे और गंदे लोगों ने तुम पर दुख पर दुख ढाये हैं, और, कोढ़ में खाज ही कहो कि, वह गलमुच्छों वाला आदमी तुम्हें इस तरह सता रहा है।··· और, सो भी इसलिये कि वह फ्रॉक-कोट पहिने घूमता-फिरता है और, अपने सोने की कमानी वाले चश्मे से तुम्हें ताक सकता है। उल्लू का पट्ठा समझता है कि वह मनमानी-घरजानी कर सकता है, और हर आदमी मजबूर है कि वह जो भी अल्लम-ग़ल्लम बके, वह उसे सुने और मुँह सिये रहे ! मगर, कोई उसकी बकवास क्यों सुने और क्यों चुप रहे ? इसलिये कि तुम अनाथ हो और तुम्हारी रक्षा करने को सच्चे मित्रों के मज़बूत हाथ नहीं हैं ! भला कौन इन्सान होगा जो ऐसी बेसहारा छोटी बच्ची का मन इस तरह दुखायेगा ?··· मैं तो कहता हूँ कि वह अपने को इन्सान कहने का अधिकारी नहीं··· वह इन्सान नहीं होगा····कूड़ा होगा, निखालिस कूड़ा··· देखने-सुनने में ही आदमी होगा, और बस ! देखो न, गौरोखोवाया, सड़क पर मुझे जो बाजा बजाने वाला मिला था, वह भी उस आदमी से बेहतर कहा जायेगा। इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है कि वह सारे दिन कोपेक, दो कोपेक की उम्मीद में पटरी पर बैठा रहता है ! वह अपना मालिक है, आप और रोटी आप कमाता है ! उसे भिखारी भी क्यों कहो।····वह तो लोगों को आनन्द

देता है, और उसी के लिये अपने ढंग से चक्की पीसता है, जैसे कि कहता है—'मैं यहाँ हूँ ! आओ और आनन्द लूटो।'····शायद भिखारी कोई उसे भी कहेगा।····मगर, वह भिखारी भी है तो सच्चा भिखारी है····इज्जतदार भिखारी है। थकान से चूर और खाली पेट होने पर भी अपना काम करता रहता है··· यानी, कोई न कोई काम तो करता ही है। रानी ! दुनिया में ऐसे लोग कितने ही मिलेंगे, जो छोटे-मोटे काम करते हैं, और थोड़ा-बहुत कमाते हैं, पर वे झुकते किसी के सामने नहीं, हाथ किसी के सामने नहीं फैलाते ! तो, मैं भी उसी भिखारी की तरह ही हूँ··· वैसे तो उसकी तरह कहीं से भी नहीं हूँ बिल्कुल नहीं हूँ; पर शोभा और सम्मान का प्रश्न हो तो उसमें और मुझमें कोई फ़र्क़ भी नहीं है। मैं भी भरसक मशक़्क़त करता हूँ। इससे ज़्यादा और कर भी क्या सकता हूँ····?

तुम कहोगी कि तुम्हें उस बाजा बजाने वाले का ख्याल कैसे आ गया ? रानी ख्याल इसलिए आया कि अपनी ग़रीबी आज मुझे कुछ ज़्यादा खली।··· बस, तो, चित्त थोड़ा बदलने और इधर-उधर के विचारों से बचने के लिये मैं चलते-चलते ठिठक गया और उसे देखने लगा। कुछ गाड़ीवान, एक जवान औरत और एक छोटी बच्ची भी उसका बाजा सुनती दीखी। वह आदमी किसी मकान की खिड़की के नीचे खड़ा था।

ज़रा देर में कोई दस साल का एक लड़का नज़र आया ·· लड़का ऐसा कि दुखिया और रोगिहा न होता तो देखने-सुनने में खासा कहा जाता। सो, वह बदन पर खाली कमीज डाले, लगभग नंगे पैरों खड़ा, मुँह बाये—बाजा सुनने लगा। देखो न, लड़के तो आखिर को लड़के ही होते हैं !···

तो, ठण्ड से ठिठुरते और अपनी आस्तीन चूसते उस लड़के की निगाह बाजे पर थिरकती गुडिया के ऊपर से हटाये न हटी। उसके हाथ में एक क़ाग़ज़ रहा।····आखिरकार फ्रांसीसियों और उनकी मेमों के नाचवाले

उस खिलौने के बक्से में किसी शरीफ़ ने तांबे का एक सिक्का डाला दिया। सिक्के की खनक से लड़का चौंक उठा और कातरता से चारों ओर देखने लगा। शायद उसे लगा कि सिक्का मैंने गिराया है। इसीलिए वह मेरे पास दौड़ा आया, और कँपकँपाती हुई उगलियों से क़ाग़ज मुझे थमाते हुए उसे पढ़ने का अनुरोध करने लगा। मैंने क़ाग़ज खोला तो वही आम बात कि मेरी माँ मरने-मरने को हो रही है ·· तीन बच्चे भूखों मर रहे हैं··· आप दयावान, कृपालुजनों से आग्रह है कि कृपाकर सहायता करें। माँ मरने पर, स्वर्ग पहुँचने पर परमपिता से आपके लिए आशीर्वाद माँगेगी।··· यानी, बात समझ में आ गई····उसमें समझने को ऐसा क्या था? मगर, ज़रा सोचो कि मैं देता भी तो आखिर देता क्या! मेरे पास था ही कुछ नहीं। मगर, मेरा दिल दुखा बहुत कि बेचारा, इतना छोटा लड़का····ठण्ड से इस तरह अकड़ा हुआ····शायद भूखा भी····शायद क्या, सचमुच ही भूखा भी! वह झूठ नहीं बोल रहा था··· वह झूठ बोल ही नहीं सकता था! लेकिन, एक बात और भी तो है। दुनिया मे ऐसी गई-गुजरी माँओं की भी तो कमी नही, जो इस तरह कटे-फटे कपड़े पहिनाकर, अधनंगी हालत में, बच्चो को ठंडक में बाहर निकाल देती हैं। मैं सोचने लगा ·· मगर, इस बच्चे की माँ शायद हर ओर से टूट गई है····शायद उसे मदद देने वाला कोई नहीं है····शायद वह करती-धरती कुछ नहीं····शायद वह सचमुच ही बीमार है! लेकिन ऐसा है, तो भी उसे उचित अधिकारियों से लिखा-पढ़ी करनी चाहिये! लेकिन शायद वह अपने इतने छोटे, कमजोर, भूखे लड़के को इस तरह सड़कों पर भेज कर लोगों की हमदर्दी पाना चाहती है। परन्तु, इस तरह के क़ाग़ज लेकर दर-दर भटकने के बाद इस बच्चे के संस्कार आखिर क्या बनेंगे ····?

बेचारा लड़का था कि इधर-उधर दौड़ता और खीसें बाता फिर रहा था, मगर, लोग थे कि उन्हे उसकी ओर ध्यान देने की फुर्सत ही नहीं

थी ! उनके दिल पत्थर के थे, और शब्द निर्ममता से भरे—'भागा जा····भाग······बदमाश कहीं का ! यहाँ तेरी हरामजादगी नहीं चलने की !'

मुझे लगा कि घोंसले से गिरे चिड़िया के बच्चे की तरह यह लड़का भी ठण्ड में ठिठुरते-ठिठुरते कड़ा पड़ जायेगा····उसके हाथ सुन्न हैं और जमा कर बर्फ़ बना देने वाली हवा में वह साँस कठिनाई से ले पा रहा है····बेचारा अगर एकदम खाँसने लगा और बीमारी रपटैले साँप की तरह उसके सीने में सरक गई तो मौत सामने ही खड़ी समझो····ग़रीब किसी अँधेरे, सीलन से भरे कमरे में दम तोड़ देगा क्योंकि उसकी चिन्ता या मदद करने वाला तो कहीं कोई है नहीं····यानी, इस तरह ज़िन्दगी का सारा खेल कि चुटकी बजाते भर में ख़त्म।

वारेन्का, कुछ ज़िन्दगियों के चिराग़ अक़सर यों ही गुल होते हैं। आसान नहीं है कि कोई रिरियाये कि ईसा के नाम पर मेरी सहायता करो; और, दूसरा आदमी बिना कुछ दिये उधर से गुज़र जाये कि ठीक ईश्वर तुम्हारी मदद करेगा।····वैसे कभी-कभी यह ईसा के नाम पर उतना भयानक नहीं लगता ! कहा भी अलग-अलग ढंग से जाता है, मेरी रानी ! पर, भिखारी यही बात काफ़ी मशीनी ढंग से कहते हैं, और उन्हें इसके जवाब में कुछ न देना प्राय: इतना अखरता नहीं। भिखारी, उसके अन्दर भावना का अनुभव नहीं करता, मगर 'ईसा के नाम पर, बड़ा अजीब, भद्दा और डरावना अनुभव होता है। बिल्कुल ऐसा ही मुझे आज लगा। यानी, मैं उस बच्चे के हाथ का काग़ज पढ़ने में लगा रहा कि बाड़ के ठीक पास पास, चुपचाप खड़ा एक आदमी बोला—'ईसा के नाम पर एक कोपेन दे दें, श्रीमान् !'····सच मानो आवाज़ ऐसी फटी हुई थी कि मैं चौंक उठा। लेकिन, फिर सवाल वही कि मैं देना भी चाहता तो देता क्या ? मेरे पास था क्या ? उस पर यह ख्याल अलग से आया कि ग़रीब अपनी क़िस्मत का रोना रोते हैं तो धनी लोग बिगड़ खड़े

होते हैं, कहते हैं —'यह लोग विल्कुल मुसीबत हैं। वड़े वेहया होते हैं! ...रानी, मैं कहता हूँ, आहें-कराहें रातों को इन अमीरों की नींद में किसी तरह की कोई बाधा डालती हैं?'....

मेरी-अपनी रानी, सच पूछो तो यह सब मैंने तुम्हें लिखा है, एक तो, अपना मन हल्का करने के लिये, दूसरे अपनी लेखन-शैली का एक उदाहरण तुम्हारे सामने रखने के लिये!....देखती हो न, प्रिये! मेरी शैली इधर वरावर एक निश्चित साँचे में ढलती रही है! और इधर तो मैं हर ओर से इतना निराश और टूटा हुआ रहा हूँ कि मेरे मन में अपने ही विचारो के प्रति वरबस सम्वेदना से होना-जाना कुछ नहीं; पर, अपने साथ थोड़ा न्याय करना सुख देता है। फिर यह सुख और बढ़ जाता है, जब अपने साथ आप हमदर्दी दिखलाने वाला आदमी अपने आप को फटे रूप में पेश करने का आदी हो, अपना कोई महत्त्व न समझ पाता हो, और अपने को लकड़ी के चैले से अधिक मूल्यवान न मानता हो!

अगर तुलना का प्रश्न हो तो कहना चाहूँगा कि मैं भी उतना ही दुखी और कुचला हुआ हूँ, जितना कि भीख माँगने वाला वह छोटा लड़का।....क्षमा करना, वारेन्का, अपनी बात स्पष्ट करने के लिए एक रूपक का सहारा ले रहा हूँ—सुनो, मैं सुवह तड़के दफ़्तर जाता हूँ और कभी-कभी पूरे नगर, हर ओर से उठते धुयें, और उमड़ते हुये शोर-शरावे को देखता हूँ तो अपनी ही आँखों में ऐसा छोटा हो जाता हूँ, जैसे कि मेरी इधर-उधर सूँघ-साँघ करने वाली नाक के ठीक नीचे किसी ने उँगलियाँ तोड़ दी हों!...और इसके साथ ही मेरी अकड़ समाप्त हो जाती है; और मैं चूहे की तरह, बिना चूँ-चपड़ के, क़दम बढ़ाने लगता हूँ। लेकिन, मेरी तुम, आओ, जरा नजदीक से देखें कि इन बड़ी लेकिन गंदी इमारतों में आखिर होता क्या है!...अब बतलाओ कि केवल उन्हें देखकर इस तरह घवड़ा जाना और अपने को छोटा मान लेना, कहीं

से उचित भी है क्या ? यों ध्यान रखना, वारेन्का, कि यह सब मैं सीधे-सीधे न कह कर आलंकारिक भाषा में कह रहा हूँ। हाँ, तो सवाल है कि क्या नज़र आता है उन इमारतों में ? वहाँ किसी गीले हॉल के किसी सीलन से भरे कोने में कोई मेहनतकश नींद से जागता है ! इस आदमी के जूते कल खराब हो गये थे, और वह सपने में सारी रात उन्हीं को देखता रहा है ! ज़रा सोचो कि कोई आदमी और सारी रात ऐसी कुछ नहीं-सी चीज़ सपने में देखे ! मगर वह मेहनतकश शायद मोची है, और इसीलिये ऐसी बात के लिये सहज रूप से क्षमा कर दिया जायेगा। फिर आँखें खुलते हीउसे अपनी पत्नी रिरियाती मिली होगी, और बच्चे भूख से बिलबिलाते नज़र आये होंगे !····मगर जूतों की मरम्मत करने वाले मोची ही हर आये दिन इस तरह नहीं जागते, कितने हो दूसरे लोगों की भी हर सुबह लगभग इसी तरह होती है। उस पर यह कि इस बात का भी इतना महत्व न हो, अगर इसके साथ एक दूसरी परिस्थिति घुली-मिली न हो। वह परिस्थिति यह है कि हो सकता है कि उसी घर में ऊपर की मंज़िल में कोई धनी व्यक्ति रहता हो और वह भी सोने से मढ़े अपने सोने के कमरे में सारी रात उसी तरह जूते के सपने देखता रहा हो। हो सकता है कि बिल्कुल वैसे ही जूते न रहे हों, मगर जूते तो जूते !···मेरी रानी, इस अर्थ में हम सभी कमोबेश मोची हैं।·· मैं तो कहता हूँ कि इतना होने पर भी बात टाली जा सकती है, मगर कठिनाई यह है कि कोई ऐसा नहीं है जो इस अमीर के कानों के पास मुँह ले जाकर कह दे— 'श्रीमान्, महज़ अपनी ज़िन्दगी की बात सोचना बन्द कीजिये ! आप मोची नहीं हैं। आपके बच्चे हर तरह स्वस्थ हैं। आपकी पत्नी का पेट भूख से ऐंठ नहीं रहा ! आप क्यों न ज़रा अपने चारों ओर निगाह दौड़ाइये और देखिये कि आपको जूतों से कोई बेहतर चीज़ चिन्ता के लिये मिल सकती है या नहीं !'····

यही बात रूपक के सहारे कहना चाहता था मैं, वारेन्का ! हो सकता है कि यह अपने आप में कोई बड़ा क्रांतिकारी विचार हो, पर ऐसा मुझे अक्सर महसूस होता है, और महसूस होता है तो दिल से उमड़कर शब्दों में बँधता चला जाता है। यानी, मेरे ख्याल से अपने को छोटा समझने और हर उबलती और भड़भड़ाती चीज से भड़कने की ऐसी कोई ज़रूरत नहीं !····रानी, तुम शायद कहोगी कि मैं लम्बी हाँक रहा हूँ, या मेरा चित्त अशांत है, या मैंने किसी किताब से यह उतार लिया है। लेकिन, नहीं, मैं दुबारा विश्वास दिला दूँ कि लम्बी हाँकने से ज़्यादा नफ़रत मुझे और किसी चीज़ से नहीं, मेरा चित्त अशांत बिल्कुल नहीं, और नक़ल मैंने कहीं से किसी की नहीं की है। समझीं न !····हाँ तो···· मैं बड़े उदास मन से घर आया; चाय की केतली स्टोव पर रक्खी और एक प्याला चाय बनाने लगा कि सहसा मेरा खस्ताहाल पड़ोसी गोर्शकोव मेरे कमरे में आया।····मैंने आज सवेरे ही उसे अपने से और साथ ही दूसरे पड़ोसियों से कतराते देखा था। यहाँ लगे हाथों तुम्हें यह बतला दूँ कि उसकी ज़िन्दगी तो मुझसे भी गई-बीती है, और पत्नी-बच्चों और घर-परिवार के साथ ऐसा कुछ अजब भी नहीं। यह तो गोर्शकोव ही है····उसकी जगह अगर मैं होता तो समझ ही न पाता कि करूँ तो करूँ क्या !

हाँ, तो वह मेरे कमरे में आया और हमेशा की तरह उमड़ी-उमड़ी आँखें लिये अभिवादन में झुककर सामने चुपचाप खड़ा हो गया। कोई दूसरी साबित कुर्सी न होने के कारण मैंने अपनी टूटी कुर्सी उसकी ओर बढ़ाई और थोड़ी-सी चाय उसे पीने को दी। वह काफ़ी देर तक तो नाहीं-नूँहीं करता रहा, पर अन्त में उसने चाय ले ली। मगर, चीनी लेने से इन्कार करने और माफ़ी माँगने लगा। इस पर मैंने बहुत आग्रह किया तो काफ़ी बहस करने के बाद उसने चीनी का सबसे छोटा क्यूब छाँट लिया और बार-बार इत्मीनान दिलाया कि चाय तो यों भी इतनी मीठी है

कि ताज्जुब होता है ! उफ़···ग़रीबी भी आदमी को किस तरह तोड़ देती है·· !

ख़ैर, तो मैंने पूछा—'कहो, क्या हाल-चाल हैं ?'

वह बोला—'चिन्ता के लिये धन्यवाद ! ···मगर मकार-अलेक्सेयेविच, ईश्वर के नाम पर मेरी सहायता कीजिये और मेरे अभागे परिवार को मरने से बचा लीजिये । आप तो जानते ही हैं, मेरी पत्नी और बच्चे भूख से तलफ रहे हैं । मैं पति हूँ, मैं पिता हूँ, मगर टुकुर-टुकुर देखता रहता हूँ और कुछ कर नहीं सकता । जवाब में मैंने कुछ कहना चाहा, पर वह बीच में ही बोल उठा—'मुझे यहाँ रहने वाले हर आदमी से डर लगता है, मकार-अलेक्सेयेविच !···यानी, डर तो क्या लगता है, बात करने में शर्म महसूस होती है । वे काफ़ी लिये-दिये, दूर-दूर रहते हैं । जहाँ तक आपका सवाल है, आप मेरे मित्र और सहायक हैं, पर मैं आपको भी तकलीफ़ देने की बात सोचना नहीं चाहता । मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आप खुद भी संकट में रहते हैं और चाहकर भी मेरी उतनी सहायता कर नहीं सकते ! पर, जैसे भी हो, कुछ तो उधार दे ही दें । इसके लिये आपके पास मैं काफ़ी कठिनाई के बाद ही आया हूँ । लेकिन, मैं जानता हूँ कि आप बड़े दयालु हैं और स्वयं दुखी रहने के कारण दूसरों का दुख समझ सकते हैं । इसके बाद इस प्रकार के दुस्साहस और धृष्टता के लिये उसने बार-बार माफी माँगी ।' मैंने कहा—'मुझे आपकी मदद करने में बड़ी ही खुशी होगी···मगर मेरा हाथ तो बिल्कुल ख़ाली है····। सचमुच बिल्कुल ही ख़ाली है ।'

वह दुबारा घिघियाते हुये बोला · 'मकार-अलेक्सेयेविच, आप बड़े ही दयावान हैं । मैं कुछ ज्यादा आपसे नहीं चाहता, लेकिन··· ' और उसका चेहरा लज्जा से लाल हो उठा—'मेरी बीबी-बच्चे भूखों मर रहे हैं, क्या फिलहाल, दस कोपेक भी नहीं दे सकते आप ?'

इस पर मेरा मन एकदम दुखी हो गया कि सचमुच इसकी हालत तो मुझसे भी खराब है ! और, मेरे पास थे कुल बीस कोपेक, और कल की वक़्त-ज़रूरत के ख्याल से मैं इनमें से एक-एक कोपेक को दाँतों से पकड़ रहा था। सो, मैंने पूरी स्थिति स्पष्ट करते हुये कहा—'नहीं, भाई, मैं सचमुच ही कुछ नहीं दे सकता।' परन्तु गोर्शकोव बिल्कुल रुआँसा हो गया—'मकार-अलेक्सेयेविच, आप चाहे जो करें और चाहे जहाँ से लायें, जैसे भी हो, दस कोपेक का तो इन्तज़ाम करें ही।' ...मैंने बीस कोपेक का अपना बचा-बचाया सिक्का उठाया, और उसे दे दिया। और बीस कोपेक ही सही, मगर इतना भी दे सकना मेरी उदारता ही तो कही जायेगी न. वारेन्का ?... हाय रे, ग़रीबी....!'

तो, फिर हम बातें करने लगे। अन्त में मैंने पूछा—'लेकिन, यह तो बतलाओ कि ऐसी ग़रीबी है, मगर तुमने कमरा पाँच रूबल वाला क्यों ले रक्खा है ? उसने बात साफ़ करते हुये कहा—'मैं छः महीने पहिले ही यहाँ आया हूँ, और तीन महीने का किराया पेशगी दे चुका हूँ।....मगर इस बीच ही सब कुछ ऐसा ऊबड़-खाबड़ हो गया है कि इस समय रास्ता नहीं सूझ रहा है। ख्याल था कि मामले का फैसला जल्दी ही हो जायेगा।'

बात यह है कि वह खज़ाने के साथ गोलमाल करने वाले एक व्यापारी पर मुक़दमा चला रहा है। हुआ यह कि जब बात खुली तो उस व्यापारी ने उल्टे गोर्शकोव को फाँस दिया। मगर, सच्चाई यह है कि सिर्फ़ उसकी नज़र चूक गई, और यही उसका अपराध रहा। यह सही है कि इससे सरकार का खासा नुक़सान हुआ।... हाँ, मुक़दमा सालों से चल रहा है, और बेचारा गोर्शकोव खाई से उबरता है तो खन्दक़ में जा गिरता है...।

इस सम्बन्ध में वह बोला—'मेरे ऊपर कलंक लादा जाता है, मगर मामले में सचमुच ही मेरा कोई हाथ नहीं। जाल और चोरी में मेरा

किसी तरह का कोई हिस्सा नहीं। मैं बिल्कुल निरपराध हूँ। मगर इस पर भी इससे मेरी बड़ी बदनामी हुई है। मैं नौकरी से अलग कर दिया गया हूँ, और जुर्म साबित न होने पर भी अभी तक संकट से पूरी तरह उबर नहीं पाया हूँ। मामला साफ़ हो जाता तो मुझे उस व्यापारी से एक बड़ी रक़म हक़्क़ान हरजाने के रूप में मिलती।'

वारेन्का, मैं गोर्शकोव की बात का पूरा यक़ीन करता हूँ, लेकिन अदालत तो नहीं करती। मामला ऐसा उलझा हुआ है कि सौ वर्ष में भी सुलझ जाये तो ग़नीमत समझो! कारण कि एक गाँठ खुलती है तो वह व्यापारी दूसरी गाँठ लगा देता है। मुझे गोर्शकोव से बड़ी हमदर्दी है, और बड़ा दुःख है। वह कहीं काम नहीं करता, और बदनामी के कारण कोई उसे किसी तरह का कोई काम-धाम देता भी नहीं। दूसरी तरफ़, उसके पास की हर बिकने लायक़ चीज़ बिक चुकी है। उस पर एक बच्चे ने भी क्या बुरा वक़्त चुना कि मुक़दमे के दौरान ही जन्म लेकर परिवार में आ गया। इस सबसे भी खर्च बढ़ा। फिर, बच्चा बीमार पड़ा तो खर्च…और वह मर गया, तो फिर खर्च। पत्नी बीमार है, सो अलग से; खुद तो पुराना मरीज है ही। संक्षेप में यह कि बड़ा कष्ट भोगा है बेचारे ने! अब उसका कहना है कि मुक़दमा कुछ ही दिनों में खत्म हो जायेगा, और फ़ैसला तो उसके हक़ में होगा ही।

मुझे बड़ा सन्ताप हुआ गोर्शकोव को लेकर, वारेन्का! मैंने उसे भरसक धीरज बँधाया। आदमी हर तरह बरबाद हो चुका है, और उसे ढाढ़स की बड़ी ज़रूरत है। सो मैंने उसे वश भर ढाढ़स दिया।

अच्छा, दोस्विदानिया, मेरी अपनी वारेन्का। ईश्वर तुम पर कृपा करे और तुम्हें स्वस्थ रखे। तुम्हारी मात्र कल्पना ज़ख्मों पर मरहम का काम करती है, और तुम्हारे लिये सन्तप्त होने से आत्मा को शान्ति मिलती है।

तुम्हारा सच्चा मित्र,
मकार-देवुश्किन

सितम्बर ९

मेरी अपनी वारवरा-अलेक्सेयेवना,

इधर एक ऐसी भयानक घटना घट गई है कि मेरा दिमाग़ ख़राब हो गया है, सिर चक्कर खा रहा है, और सामने की हर चीज़ घूमती नज़र आ रही है। मैं तुम्हें जो कुछ बतलाने जा रहा हूँ, वह तुम्हारे अनुमान में भी नहीं आ सकता। हमने तो कभी कल्पना भी न की थी इसकी! लेकिन, नहीं, मैंने कल्पना ही नहीं की थी, उसका अनुभव तक किया था। अभी उस दिन ऐसा ही कुछ सपने तक में देखा था।

हाँ, तो जो कुछ हुआ, उसका वर्णन मैं सहज भाव से किये दे रहा हूँ····बिना शैली आदि की चिन्ता किये।····आज सवेरे मैं बदस्तूर दफ़्तर गया और अपनी जगह बैठकर काम करने लगा।····यहाँ रानी, यह बतला दूँ कि बिल्कुल यहीं मैंने कल भी किया कि ज़रा देर बाद तिमोफ़ी-इवानोविच ख़ुद मेरे पास आया और तुरन्त ही एक ख़ास काग़ज़ की नक़ल तैयार कर दिये जाने की बात करते हुये बोला—'इसकी साफ़ सुथरी नक़ल जल्दी से जल्दी कर दो! इस पर बड़े साहब के दस्तख़त होंगे।'

मगर रानी, कल तो जैसे मैं अपने आपे में हो न था। मन बड़ा उदास था। बहुत अकेला-अकेला-सा लग रहा था। अन्तर में बड़ा अँधेरा था, और भावनायें जैसे ठंड से ठिठुर गई थीं। तुम्हारी ख़ासी चिन्ता थी।

उस पर भी मैं काम में जुट गया, और मैंने भरसक ठीक-ठीक नक़ल तैयार कर दी। लेकिन, शैतान की करनी कहो या भाग्य का लेखा कहो और चाहे होनी कहो, जाने कैसे एक पंक्ति छूट गई कि अर्थ ही बदल गया··जैसे कि उसमें कुछ अर्थ था भी! नतीजा यह हुआ कि देरी हो गई और बड़े साहब के दस्तख़त उस काग़ज़ पर आज हो सके।

लेकिन, मुझे यह सब क्या पता, मैं आज बाक़ायदा दफ़्तर गया और येमेल्यान-इवानोविच की बग़ल में बैठ गया।

यहाँ यह कह दूँ रानी, कि इधर कुछ समय से मैं बहुत ही लज्जा का अनुभव करता रहा हूँ, किसी से आँख मिलाने की भी हिम्मत नहीं कर सका हूँ, और किसी कुर्सी के चरमराने तक पर काँप-काँप उठता रहा हूँ। सो, यही हालत आज भी रही कि ज़िन्दा से ज़्यादा मुर्दा हालत में मैं कछुये की तरह गर्दन गड़ाये बैठा रहा। दूसरी ओर अपने मज़ाक से क़रीब-क़रीब मार डालने वाले दुनिया के सबसे बड़े हँसोड़ यफ़ीम-अकीमोविच ने सबको सुनाकर ज़ोर से कहा—'मकार-अलेक्सेयेविच, तुम इस तरह क्यों बैठे हो जैसे कि …' और, इसके साथ ही उसने ऐसा चेहरा बनाया कि सभी ठठाकर हँस पड़े, और काफ़ी देर तक ठहाके लगाते रहे। लेकिन, मैंने अपनी आँखें मूँद लीं, कान बन्द कर लिये, और ऐसे बन गया जैसे कि मैंने न कुछ देखा, न कुछ सुना। यही सबसे अच्छा तरीक़ा लगा कि बाबा, मेरी जान छोड़ो ! इसी बीच सहसा ही दूर, कहीं हलचल हुई और मेरा नाम लिया गया। मुझे विश्वास न हुआ। मगर, नाम मेरा ही लिया गया, यानी पुकार मेरी ही हुई। मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा और मैं बुरी तरह आशंकित हो उठा। जीवन में इसके पहिले इतना मैं कभी नहीं सहमा। अपनी कुर्सी पर जैसे कील उठा और इस-तरह जमा बैठा रहा, जैसे कि आवाज़ किसी और को दी जा रही हो। मगर, आवाज़ें बराबर पास आती गईं और आख़िरकार मेरे सिर पर आ धमकीं 'देवुश्किन… देवुश्किन….कहाँ है देवुश्किन ?' मैंने निगाहें ऊपर उठाईं तो येवस्ताफ़ी-इवानोविच को पास खड़ा देखा। वह बोला—'बड़े-साहब ने तलब किया है तुम्हें, मकार-अलेक्सेयेविच।….तुमने काग़ज चौपट कर दिया है।'… यानी, कहा केवल इतना, मगर इतना भी क्या कुछ कम था ? मेरी तो नसों का जैसे ख़ून ही जम गया और होश उड़ गये। इसके बाद मैं कैसे उठा और कैसे क़दम आगे बढ़ाये, कुछ नहीं

जानता ! इस समय कैसे-कैसे विचार सामने आये, यह भी अब याद नहीं। याद सिर्फ़ इतना है कि एक कमरा पार किया, फिर दूसरा कमरा पार किया, फिर तीसरा कमरा पार किया और इसके बाद मैं एक बड़े कमरे में पहुँचकर जड़-पत्थर की तरह खड़ा हो गया। वहाँ बड़े-साहब के अलावा दूसरे लोग भी सामने बैठे दीखे। मगर, मेरी दहशत की तो हालत यह रही कि झुककर अभिवादन करने तक का ध्यान न रहा। बस, होंठ थरथराने और घुटनों के जोड़ जवाब देने लगे—कारण कि पहिले तो दाईं ओर के शीशे में अपना चेहरा देखा तो लगा कि कोई भी इसे देखे तो एकदम बौखला उठे; दूसरे, ख्याल आया कि दफ़्तर में तो अब तक मेरा रहना न रहने के बराबर रहा है, बड़े साहब कैसे समझेंगे कि मैं भी काम करता रहा हूँ यहाँ ?····हो सकता है, मन्त्रालय में उन्होंने कभी मेरा नाम सुना हो, मगर इसके आगे जानने की कुछ कोशिश तो उन्होंने कभी की नहीं।

तो, बड़े-साहब गुस्से से तमक कर बोले—'इसके मानी आखिर क्या हैं ? तुम और ध्यान से काम क्यों नहीं करते ? बड़ा जरूरी काग़ज़ था, और तुमने उसे बिगाड़ कर रख दिया !'····और, इसके बाद वे येवस्ताफ़ी-इवानोविच की ओर मुड़े तो बीच-बीच के शब्द-भर मेरी पकड़ में आये।—'ऐसी लापरवाही····ज़रा थोड़ी और तकलीफ़····!' इस बीच मैंने कई बार क्षमा माँगने के लिए मुँह खोला। मगर, गले से आवाज ही न निकली। अरे, मेरा बस चलता तो मैं भाग खड़ा होता, मगर हिम्मत ही न पड़ी। लेकिन, इसके बाद भयानकतम क्षण सामने आया और जो कुछ हुआ, उसे लिखने में मेरे हाथ की क़लम काँपती है।····यानी, मेरे कोट का-तागे के सहारे लटकता-एक बटन अचानक ही टूट गिरा और झनझनाते और लुढ़कते हुये बड़े-साहब के पैरों के पास जा गिरा।····रानी, ज़रा सोचो कि एक ओर तो कमरे में ऐसा सन्नाटा, और दूसरी ओर ऐसी आवाज़ !····उफ़, कहाँ तो क्षमा-याचना का प्रयत्न

श्रौर कहाँ यह वज्रपात ! इसका परिणाम जो निकला, उसे शब्दों में व्यक्त करना सम्भव नहीं।

बड़े-साहब मेरी तरफ़ घूमे श्रौर मेरे साथ-साथ मेरे लिवास को भी ऊपर से नीचे तक ग़ौर से देख गये। सहसा ही मुझे शीशे के श्रपने रूप का ख़्याल श्राया, श्रौर मैं बटन उठाने को झुका! पता नहीं क्यों मेरे दिमाग़ में श्राई यह बात! बटन हाथ ही न श्राया, श्रौर हाथ से रपटता ही गया। मेरे होश ग़ायब होने लगे कि सभी कुछ गया, क्या नाम श्रौर क्या श्रौर कुछ! श्रौर, श्रब उसका चारा भी कुछ नहीं!··· इस समय, दिमाग़ी, तूफ़ान की इस हालत में फ़ाल्दोती श्रौर तेरेज़ा की चीख़-पुकार के साथ हज़ार दूसरी ज़बानों की बकवास मेरे कानों में पड़ी। श्राख़िरकार मैंने किसी तरह लपककर बटन उठाया; सीधा हुश्रा श्रौर तनकर खड़ा हो गया। श्रौर, सुनो, मुझे तो खड़ा होना चाहिये था दोनों हाथ क़ायदे से गिराकर मगर, मैं उस बटन को लेकर तागे से यों उलझता रहा, जैसे कि वह श्रपनी जगह यों ही लग जाता। उस पर, इस बीच में मुस्कराता श्रौर खुलकर मुस्कराता रहा।

इस बीच बड़े-साहब दूसरी श्रोर मुड़े, फिर मुझ पर एक निगाह डाली श्रौर येवस्ताफ़ी-इवानोविच से बोले—'इसके क्या मतलब? ज़रा इस श्रादमी को देखो! इसके साथ गड़बड़ी क्या है?' प्रियतमे, ज़रा सोचो—इसके साथ गड़बड़ी क्या है? दूसरे ही क्षण येवस्ताफ़ी-इवानोविच ने जवाब दिया—'इसकी नौकरी के रेकार्ड में कहीं कोई गड़बड़ी नहीं है····व्यवहार दूसरों, के लिये मिसाल है··· तनख़्वाह निश्चित दर के हिसाब से मिलती है।····बड़े साहब बोले—'ख़ैर··· जैसे, भी हो, इसकी मदद करो····थोड़ी बहुत रक़म पेशगी दे दो इसे।··· येवेस्ताफ़ी-इवानोविच बोला—'मगर श्रपना पावना तो यह पूरे का पूरा ले चुका है। परिस्थितियों ने इसे ऐसा बना दिया है। वैसे इसके रेकार्ड में कहीं कुछ भी ख़िलाफ़ नहीं है··· ज़रा भी नहीं है।'

और, मैं जैसे नर्क की आग में झुलसने लगा रानी। बड़े-साहब बोले—'खैर···हटाओ···जल्दी से जल्दी इसकी दूसरी प्रति तैयार करवा लो। देवुश्किन, इधर आओ···देखो, इसे फिर नक़ल कर लो···और, इस बार ग़लती कोई न हो···और सुनो···—इसके साथ ही बड़े-साहब ने बाक़ी लोगों को बाहर जाने का संकेत किया। अब हम दोनों ही बाक़ी रह गये, तो उन्होंने झटके से मनी-पर्स जेब से निकाला, सौ रूबल का एक बैंक-नोट बाहर खींचा और मेरे हाथ में ज़बरदस्ती थमाते हुये बोले—'यह लो···फ़िलहाल, अगर यों न ले सको तो इसे क़र्ज़ समझो। मैं तुम्हारी बहुत कुछ सहायता करना चाहता हूँ।'····

प्रियतमे, मेरी देवदूती, मैं एकदम चौंक उठा, गूँगा हो गया और सामने की स्थिति समझने पर भी जैसे मेरी समझ में न आई। मैंने प्यारे प्यारे बड़े-साहब का हाथ चूम लेना चाहा, लेकिन उनका चेहरा एकदम लाल हो उठा।···रानी, इसमें अतिशयोक्ति ज़रा भी नहीं···उन्होंने खुद मेरा गंदा हाथ अपने हाथ में ले लिया और यों झकझोरने लगे, जैसे कि मैं उनके बराबर का कोई आदमी हूँ। बोले—'अच्छा, अब जाओ··· अफ़सोस है कि इस समय मैं तुम्हारे लिए इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता। अब आगे ग़लतियाँ बचाना। इस बार जो भूल हुई है, उसकी ज़िम्मेदारी मैं अपने ऊपर ले लूँगा।'

देखा न! अब तुमसे और फ़ेदोरा से अनुरोध है कि तुम दोनों मेरे बड़े साहब के सुख-स्वास्थ्य के लिये हर दिन परमपिता से प्रार्थना करो। और, अगर मेरे बच्चे होते तो मैं उनसे कहता कि देखो, तुम मुझसे अधिक मेरे बड़े-साहब के लिये प्रभु से वरदान माँगो···और, एक बात और मैं पूरी गम्भीरता से कहना चाहता हूँ, मुन्नी··· पूरी ईमानदारी से कहना चाहता हूँ, रानी, कि भले ही मैंने अनन्त यातनायें सही हों और भले ही तुम्हारी विपिन्नता के समय तुम्हारी सहायता न कर सकने की लज्जा ढोई हो, पर सच पूछो तो इन सौ रूबलों से कहीं अधिक महत्त्व मेरे लिये है बड़े

साहब के मुझसे हाथ मिलाने का····मुझ तीन टके के शराबी से हाथ मिलाने का। उन्होंने मुझे दुबारा आदमी बना दिया है, मेरी आत्मा को एक बार फिर जगा दिया है, और सदा-सदा के लिये मेरे जीवन में अमृत घोल दिया है। मेरा पूरा विश्वास है कि पापी होने पर भी मैं प्रभु से बड़े-साहब के लिये जो अरदास करूँगा···वह खाली नहीं जायेगी···।

वारेन्का, इस समय मेरा चित्त बहुत ही अस्थिर है····मैं बिल्कुल हतबुद्धि हो गया हूँ····दिल उछला पड़ रहा है····बुरी तरह कमज़ोरी महसूस हो रही है।

मैं तुम्हें पैंतालीस रूबल भेज रहा हूँ, बीस रूबल मकान-मालकिन को दे दूँगा, इस तरह मेरे पास पैंतीस रूबल बाक़ी रह जायेंगे। इन पैंतीस रूबलों में से बीस कपड़ों पर ख़र्च कर दूँगा और पन्द्रह दूसरी ज़रूरतों के लिये रख लूँगा····।

आज सुबह की घटनाओं ने मुझे बिल्कुल झकझोर कर रख दिया है, अच्छा हो कि मैं थोड़ा लेट लूँ। मगर, इससे कुछ नहीं। मैं सन्तुलित हूँ और मेरा मन शान्त है। केवल आत्मा रह-रहकर टीस रही है, और उसका यह कम्पन मैं साफ़-साफ़ सुन रहा हूँ।··· बाद में आऊँगा तुम्हारे यहाँ। इस समय तो मैं जैसे चौंधियाया-चौंधियाया-सा हूँ।····ईश्वर सबको देखता है, मेरी रानी, मेरी अमूल्य नन्हीं !

तुम्हारा मित्र,
मकार-देवुश्किन

सितम्बर १०

प्रिय मकार-अलेक्सेयेविच,

तुम्हारे सौभाग्य के समाचार से बड़ी ही प्रसन्नता हुई। तुम्हारे बड़े-साहब सचमुच ही बड़े दयावान और नेक हैं। अब तुम अपनी चिन्ताओं से

मुक्त हो जाओगे, पर। देखो, ईश्वर के लिये हाथ की रक़म खर्च समझ-बूझकर ही करना। सादगी से रहना और हर दिन कुछ न कुछ बचाना ताकि वक़्त-ज़रूरत कठिनाई न हो। हमारी फ़िक्र न करना। फ़ेदोरा और मैं यानी हम दोनों मिलजुल कर जैसे-तैसे काम चला लेंगे।....और, हाँ तुमने इतने रूबल मेरे पास क्यों भेज दिये, मकार-अलेक्सेयेविच ? हमें सचमुच इतने रूबलों की ज़रूरत नहीं। हमारा तो काम ज्यों-त्यों कर चलता ही है, और उससे हम सन्तुष्ट हैं। वैसे मकान बदलने के सिलसिले में खर्च तो होगा ही, लेकिन फ़ेदोरा ने किसी को क़र्ज़ दे रक्खा है, और आशा है कि तब तक वह रक़म मिल जायेगी ! फ़िलहाल, मैं ज़रूरत के लिये बीस रूबल रखकर बाक़ी वापिस भेज रही हूँ। गाँठ की रक़म सम्हाल कर रखना, मकार-अलेक्सेयेविच !....दोस्विदानिया....ईश्वर तुम्हें चिन्ता-मुक्त करे और स्वस्थ और प्रसन्न रक्खे। मैं थक जाने के कारण अब और अधिक लिख नहीं सकती। कल तो बिस्तरे पर ही पड़ी रही। प्रसन्नता की बात है कि तुम आओगे यहाँ। ज़रूर आना !

वा० दो०

सितम्बर ११

वारवरा-अलेक्सेयेवना—मेरी रानी-मुन्नी,

अब जब मैं इतना प्रसन्न और सन्तुष्ट हूँ, तब तुम यहाँ से कहीं और जाने की बात सोच रही हो ! ऐसा न करो ! फ़ेदोरा की बात मत सुनो, प्रिये ! तुम जो भी कहोगी, मैं करूँगा; और, किसी के कारण नहीं, तो बड़े-साहब के प्रति आदर के कारण ही मैं अब क़ायदे से रहूँगा। हम फिर एक दूसरे को आनन्द-भरे पत्र लिखेंगे, और सुख में तो हिस्सा बटायेंगे ही, दुख मुसीबत आयेगी तो उसमें भी एक दूसरे के साझीदार होंगे। हम चैन और शान्ति से रहेंगे, एक बार फिर साहित्य की चर्चायें करेंगे। ज़िन्दगी के हर पहलू ने खुशी का मोड़ ले लिया है, वारेन्का ! मक

मालकिन पहिले से कहीं अधिक स्नेह का व्यवहार करने लगी है, तेरेज़ा और ज्यादा अक़्ल से काम लेने लगी है, और फ़ाल्दोनी बात सुनने और मानने लगा है। रताज़्यायेव से सुलह हो गई है। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि मैं खुद ही उसके पास गया। आदमी दिल का अच्छा है, प्रिये। और लोगों ने जो कुछ उसके बारे में उड़ा रक्खा है वह सब ग़लत है। उसने हमें बदनाम करने की कोशिश कभी नहीं की। उसने खुद इसका विश्वास मुझे दिलाया, और अपनी कुछ नई रचनायें सुनाईं। जहाँ तक उसके मुझे फ़तवा देने और 'एयाश' कहने का सवाल है, उसने बतलाया कि यह ऐसा कोई बुरा या गन्दा शब्द नहीं है। शब्द किसी विदेशी भाषा का है, और इसका अर्थ होता है 'चालाकी से जीवन में रस लेने वाला।' दूसरे शब्दों में इसका मतलब है 'तेज क़िस्म का जवान आदमी,' और बस! यह तो मामूली-सा एक मज़ाक रहा, मगर मै गँवार कि इसे भी ग़लत समझ बैठा। खैर, तो मैंने माफ़ी माँग ली है। और, देखो न, आज तो मौसम भी कितना सुहाना रहा है! वैसे यह ठीक है कि सुबह थोड़ी बूँदा बाँदी हुई और हल्का पाला पड़ा, मगर इमसे भी हवा में ताज़गी ही आई है ··।

मैंने शानदार जूतों की जोड़ी खरीद ली है।····और, हाँ, नेव्स्की में टहलने गया तो रुककर 'सेवेरनाया—पचेला' ('उत्तरी शहद की मक्खी' नामक समाचारपत्र) पढ़ने लगा।····मगर, उफ़····तुम्हें खास बात बतलाना तो भूल ही गया।····आज सुबह येमेल्यान-इवानोविच और अक्सेन्ती-मिखाइलोविच से बड़े-साहब के बारे में बातें हुईं। पता चला कि उन्होंने एक-अकेले मुझ पर ही इस तरह का अनुग्रह नहीं किया है, वे तो अपनी दया-मया के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके प्रशंसकों की सूची लम्बी है। कितनों की ही आँखें उनके प्रति आभार से भर चुकी है! कहते हैं कि एक बार उन्होंने एक अनाम-बच्ची को गोद लिया, उसे पाला-पोसा, और फिर अपने ही एक बड़े अधिकारी के साथ उसका व्याह

रचा दिया। यह भी सभी जानते हैं कि एक बार उन्होंने एक बेवा के बेटे के लिये खास तौर पर जगह निकाली। ऐसी ही तमाम कहानियाँ उनकी उदारता और शराफ़त के बारे में कही-सुनी जाती हैं। ऐसे में अपनी कथा की कड़ी इस लम्बे सिलसिले में जोड़ देना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा और उन लोगों को सब कुछ साफ़-साफ़ बतला दिया, शर्म-वर्म मैंने रख दी ताक़ पर। ऐसे मौक़ों पर इसका सवाल ही नहीं उठता। मैंने कहा—बड़े-साहब के सुकृत्य की गाथा सब सुनें और सराहें। मैंने पूरी कहानी बडे उत्साह से एक खास रौ में बहकर, अभिमान के साथ, सुनाई। बतलाने से बाक़ी कुछ नहीं रक्खा। लेकिन, तुम्हारी चर्चा ज़रूर ही नहीं की। मकान-मालकिन का ज़िक्र किया; फ़ाल्दोनी, रताज़्यायेव और अपने जूतों की बात चलाई; और, मारकोव का प्रसंग उठाया। संक्षेप में यह कि कोई बात बाक़ी नहीं छोड़ी। इस पर कुछ लोग हँसे या, कह सकते हैं कि, सभी लोग हँसे। शायद मेरे व्यक्तित्व या मेरे जूतों में हँसने को कुछ मिल गया उन्हें! ओ, हाँ, अब मैं निश्चित-रूप से कह सकता हूँ कि वे मेरे जूतों पर ही हँसे। लेकिन, उनका मतलब ऐसा-वैसा न था, सिर्फ़ इतना है कि वे सब खाते-पीते जवान-लोग हैं। उनकी नीयत बुरी नहीं थी। आखिर उड़ाते भी तो बड़े-साहब की हँसी वे कैसे उड़ाते? ठीक है न, वारेन्का?....

वैसे उन घटनाओं से मैं अब तक उभर नहीं पाया हूँ, रानी, उन्होंने मुझे परेशान करके रख दिया है।....तुम्हारे यहाँ ईंधन तो काफ़ी है न? देखो, परवाह से रहना, वारेन्का, और अपने को ठंड से बचाना। उफ़....मेरी रानी, तुम्हारे दर्द भरे विचारों से मुझे बहुत चोट पहुँचती है, और मैं ईश्वर से तुम्हारे लिए प्रार्थना करता रहता हूँ।.... सुनो, ऊनी मोज़े या दूसरे ऊनी कपड़े तो हैं न तुम्हारे पास? देखो, मुझ बूढ़े-आदमी पर रहम करो और बतला दो कि जरूरत की क्या-क्या चीज़ें तुम्हारे

पास नहीं हैं। सचमुच मुझ पर रहम करो। रानी-मेरे दुर्दिन, लद गये····भविष्य और प्रकाश से जगमग है।

वारेन्का, सचमुच वे सब बुरे दिन थे, जो आये और हमेशा-हमेशा के लिये चले गये। दो-चार साल बाद उनका ध्यान भी नहीं रहेगा। मुझे अपनी जवानी का ख्याल है। उस समय कभी-कभी जेब में एक कोपेक भी न होता था, मगर इससे मस्ती में कोई अन्तर न पड़ता था। सुबह-सुबह नेव्स्की में कोई हसीन चेहरा नज़र आ जाता था, तो दिन भर उसका खुमार रहता था। खैर, यह एक दूसरे ज़माने की बातें है।····

वारेन्का, रहना तो संत-पीतर्सबुर्ग में ही ठीक होगा। मैंने कल परम-पिता से प्रार्थना की और भरी हुई आँखों से संकट के समय के पापों, शिकवा-शिकायतों, इधर-उधर के विचारों और बहकावों के लिये क्षमा माँगी। साथ ही तुम्हारा ध्यान बड़े ही स्नेह और बड़ी ही ममता से किया आखिर तुम ही तो हो, जिसने मेरी रक्षा की, मुझे धीरज बँधाया और नेक सलाह दी! मैं इसे कभी भूल नहीं सकता, मेरी रानी! आज तो मैंने तुम्हारा एक-एक पत्र चूमा, मेरी-अपनी। अच्छा··· दोस्विदानिया मेरी वारेन्का।····

मैंने सुना है कि पड़ोस में एक फ़ौजी-कोट बिकाऊ है····ज़रा पूँछ-ताँछ करूँ····देखूँ कि मिल सकता है क्या····क्यों?····

अच्छा····अलविदा····मेरी नन्हीं-देवदूती, अलविदा।

तुम्हारा अपना-ही,

मकार-देवुश्किन—

सितम्बर १९

प्यारे मकार-अलेक्सेयेविच,

मैं बहुत ही परेशान हूँ, बड़े बुरे आसार नज़र आ रहे हैं। अब

तुम खुद ही फ़ैसला करो । बात यह है कि वाइकोव संत-पीतर्सबुर्ग में है और फ़ेदोरा से उसकी बातचीत हुई है ।····वह बग्घी में जा रहा था; मगर फ़ेदोरा को देखते ही उतर पड़ा, पास आया और उसका पता-ठिकाना पूछने गया । पर, फ़ेदोरा ने कुछ भी बतलाने से इन्कार किया, तो वह हल्के से हँसा और बोला—'मैं जानता हूँ तुम किसके साथ रह रही हो !' (हो-न-हो, अन्ना-फ़्योदोरोवना ने ही उसे सब कुछ बतलाया है ।····) इस पर फ़ेदोरा आपे से बाहर हो-गई और उसे लताड़ते हुये बोली 'तुम बहुत ही गिरे हुये आदमी हो, और वारेन्का की बरबादी के लिये पूरी तरह ज़िम्मेदार हो ।'···उत्तर में वह बोला—'पास में कोपेक न होगा, इसीलिये शायद वह सचमुच दुखी होगी ।'····फ़ेदोरा बोली—'वैसे तो वह कोई काम-धन्धा कर रोटी चला लेती, शादी कर किसी के साथ चली जाती, या कोई और सूरत निकाल लेती, मगर धन्य हो तुम कि वह तुम्हारे कारण बीमार है और उसका एक पैर क़ब्र में है ।' वह बोला—'वह अभी कम उम्र है, हाथ की बेहाथ हो गई है, और उसकी सारी अच्छाइयों पर कालिख की एक-एक परत चढ़ गई है ।···देखा न, यह उसके अपने शब्द हैं ।····'

फ़ेदोरा और मैं यानी हम दोनों ही समझते थे कि वह हमारा ठिकाना नहीं जानता; लेकिन कल मैं गोस्तिनी-द्वोर में कुछ खरीद फ़रोख्त करने गई कि वह सहसा ही हमारे कमरे में आया । ख्याल है कि मेरे न रहने पर यहाँ आने का वक्त उसने जान-बूझकर चुना । हाँ, तो उसने मेरे और मेरी ज़िन्दगी के बारे में तरह-तरह के सवाल पूछे, हर चीज़ घूम-घूमकर देखी, मेरे हाथ का काम देखा और अन्त में पूछा—'यह क्लर्क आखिर कौन है, जिससे तुम लोगों की इतनी दोस्ती है ?'

इसी समय तुम अहाता पार कर रहे थे । सो, फ़ेदोरा ने तुम्हारी तरफ़ इशारा किया । उसने तुम्हें देखा और मुस्कराया । फ़ेदोरा बोली—'तुम जाओ यहाँ से ! तुम्हारे कारण ही वारेन्का इतनी-इतनी मुसीबतों

में फँसी हुई है। वह तुम्हें यहाँ देखेगी तो उसका चित्त बेकार को खराब होगा।' इसका उत्तर तो उसने कुछ नहीं दिया, पर, यों बोला—'मैं तो यों ही चला आया था इधर, इसके बाद उसने फ़ेदोरा को पच्चीस रूबल देने चाहे, पर उसने इन्कार कर दिया।····

भला इस सबका क्या मतलब ? वह क्यों आया यहाँ ? हमारे बारे में इतनी सारी बातें उसे किसने बतलाईं ?····मैं तो सोच-सोचकर ही परेशान हूँ !····फ़ेदोरा की भाभी अक्सीनिया कभी-कभी यहाँ आती है। फ़ेदोरा का कहना है कि वह नस्ताशिया नाम की एक धोबिन को जानती है। उस धोबिन का चचेरा भाई मंत्रालय में दरबान है, और वहीं फ़्योदोरोवना के भतीजे के जान-पहिचानी काम करते हैं। शायद इस तरह ही अन्ना-फ़्योदोरोवना को इस सब का सुराग मिला।····लेकिन, हो सकता है, फ़ेदोरा ग़लत कहती हो। हमारी समझ में नहीं आता कि करें तो करें क्या।···वह दुबारा तो नहीं आयेगा यहाँ ? मेरा तो सोचकर ही कलेजा काँपने लगता है ! कल फ़ेदोरा ने पूरी कहानी सुनाई तो मैं तो बेहोश होते-होते बची। पता नहीं, वह मुझसे चाहता क्या है। मैं इन सारे लोगों का मुँह तक नहीं देखना चाहती। भला मुझे ग़रीब-लड़की को इस तरह क्यों छेंक रहा है वह ? मेरे मन का डर एक क्षण को नहीं निकलता। कहीं वह बाइकोव इसी क्षण यहाँ आ जाये तो क्या हो ?···· मेरी क़िस्मत में क्या है आखिर ? तुम फ़ौरन यहाँ आओ, मकार-अलेक्सेयेविच !····तुरन्त आओ यहाँ —ईश्वर के लिए।

वा० दो०

सितम्बर १६

वारवरा-अलेक्सेयेवना-मेरी रानी,

आज हमारे घर में एक विचित्र-सी, अप्रत्याशित घटना घटी। हमारा

गोर्शकोव अदालत से साफ़ छूट गया है। फ़ैसला तो पहिले ही हो चुका था। वह सुनने आज गया। सब कुछ उसके हक़ में हुआ। थोड़ी-बहुत लापरवाही का अपराध क्षमा कर दिया गया है। व्यापारी को मुआविज़े में अच्छी खासी रक़म देनी पड़ी है। इस तरह उसकी ग़रीबी दूर हो गई है····बदनामी तो धुल ही गई है; यानी, उसकी सारी आशायें पूरी उतरी हैं।

सो, वह तीसरे पहर कोई तीन बजे लौटा। उसका चेहरा पूरी तरह उतरा रहा और होंठ थरथराते रहे, गोकि चेहरे से खुशी टपकती रही। उसने मुस्कराते हुये अपनी पत्नी और बच्चों को हृदय लगाया और हम सभी लोग उसे बधाई देने गये। वह बहुत ही द्रवित दीखा, आदर से बार-बार झुका और उसने हममें से हर एक से कई-कई बार हाथ मिलाये। लगा कि जाने कैसे उसका क़द थोड़ा बढ़ गया है, रीढ़ की हड्डी थोड़ी तन गई है, और आँखों की आम नमी पर लगाकर उड़ गई है। बेचारा कितना उत्तेजित-सा रहा! एक मिनट एक जगह खड़ा रहना उसे कठिन लगा। वह चीजें उठाता-धरता, मुस्कराता, आदराभिवादन में झुकता, रह-रहकर बैठता-उठता और रह-रहकर अपनी प्रतिष्ठा और अपने बच्चों के सम्मान की बात करता रहा। उसकी आँखों से आँसू तक निकल आये। हममें से ज़्यादातर लोगों की भी पलकें गीली हो गईं। शायद उसे साधने के ख्याल से रताज़्यायेव बोला 'मित्रवर, खाने को रोटी न हो तो इस झूठी प्रतिष्ठा सम्मान को कहाँ धरो-उठाओ। सबसे बड़ी चीज़ है धन····और तुम्हें इसके लिये ईश्वर को बार-बार धन्यवाद देना चाहिये····।' और, उसने उसका कंधा थपथपाया। मेरा ख्याल है कि गोर्शकोव को यह अच्छा नहीं लगा। यानी, उसने मुँह से तो ऐसा कुछ नहीं कहा, लेकिन रताज़्यायेव की ओर अजीब निगाहों से देखा और उसका हाथ कंधे से हटा दिया! शायद ऐसा पहिले वह कभी न करता। वैसे आदमी-आदमी में फ़र्क़ होता है। मिसाल के लिये ऐसी खुशी के अवसर पर मैं तो इस तरह अभिमान से

कभी न फूलता ! जीवन में अकसर ऐसे अवसर आते हैं, जब आदमी कुछ अधिक विनम्र हो उठता है; और, और कुछ नहीं तो, सद्भावना और सौजन्य के कारण ही विनीत हो जाता है। लेकिन, खैर यहाँ मैं अपनी चर्चा ही क्यों करूँ।

हाँ, तो गोर्शकोव बोला 'ठीक है'''धन भी अच्छी चीज़ है, ईश्वर को इसके लिये धन्यवाद।' और, फिर बार-बार कहता रहा—'ईश्वर को इसके लिये धन्यवाद !''''ईश्वर को इसके लिये धन्यवाद''''

इसके बाद उसकी पत्नी ने शानदार खाने का हुक्म दिया और मकान-मालकिन ने खुद खाना पकाया !''''मकान-मालकिन अपने ढंग की, भली औरत है। तो, जब तक खाना पका-पका. तब तक गोर्शकोव खासा बेचैन रहा, और बुलाये बेबुलाये, क़रीब-क़रीब सभी कमरों का चक्कर काट आया। जिस कमरे में भी गया, मुस्कराया, बैठा, कभी कुछ कहा और कभी कुछ नहीं कहा, और उठकर चला आया। नौ-अधिकारी के कमरे में उसे चौथे पार्टनर के रूप में एक बाज़ी खेलने की दावत दी गई। नतीजा यह हुआ कि उसने पूरा खेल ही चौपट कर दिया, तीन चार बेहूदे पत्ते चले और यह कहता हुआ चला आया कि मैंने तो सोचा था कि एक-दो हाथ खेलूँगा'''।

फिर, मुझे गलियारे में मिला तो बड़े अजीब ढङ्ग से मेरी आँखों में आँखें डालीं, मेरे दोनों हाथ दुबारा दबाये, और बेजान-ढंग से ज़बरदस्ती मुस्कराता हुआ चला गया। उसकी पत्नी हर्ष के आँसू बहाती रही, और उसके कमरे की हर चीज जैसे सज उठी।''''खाने के बाद गोर्शकोव अपनी पत्नी से बोला—'अब थोड़ा आराम कर लूँ,' और, अपनी बेटी के सिर पर हाथ फेरता कुछ देर तक लेटा रहा। इसके बाद अपनी पत्नी की ओर मुड़ा और बोला—'हमारी पेतेन्का कहाँ है ? पत्नी ने बीच में ही बात काट दी। कहा—'तुम्हें याद नहीं, पेतेन्का तो कभी की मर चुकी।' वह बोला—ठीक''' ठीक 'पेतेन्का स्वर्ग में है।'

पत्नी ने उसे इस प्रकार अस्थिर होते देखा तो उससे थोड़ा सो लेने का आग्रह किया। वह बोला—'ठीक····सो जाऊँ · थोड़ा सो जाऊँ मैं। ··· फिर वह कुछ देर तक एक ओर पड़ा रहा और इसके बाद दुबारा यों मुड़ा, जैसे कि कुछ कहना चाहता हो ! पत्नी ने कुछ न समझा और उसके मुँह की बात जाननी चाही, मगर जवाब कुछ न मिला। वह उसे सोता समझकर मकान-मालकिन के यहाँ चली गई और कोई एक घंटे तक वहाँ रही। लौटने पर भी वह सोता ही समझ पड़ा तो वह कुछ काम करने बैठ गई और आधे घंटे तक उसी में भूली रही। पर, सहसा ही कुछ ऐसा हुआ कि वह कुछ समझकर एकदम चौंक उठी। आदमी मुर्दे-सा अस्थिर दीखा। पलंग ग़ौर से देखा तो लगा कि गोर्शकोव जिस करवट लेटा था, उसी करवट अब तक है।

औरत ने पति को देखा तो सारा खेल खत्म मिला, जैसे कि उस पर बिजली गिर गई हो। मौत का कारण किसी की समझ में न आया।

मैं इससे बुरी तरह परेशान हूँ, और मन को समझाये, समझा नहीं पा रहा हूँ। आदमी इस तरह कैसे मर सकता है ? बेचारा गोर्शकोव इस तरह कैसे मर गया ? क्या ज़िन्दगी थी उसकी ··· सचमुच क्या ज़िन्दगी थी उसकी····!

उसकी पत्नी की आँखों से आँसू की धारा बह चली। मन की दहशत का तो कहना ही क्या ! छोटी बच्ची जाकर एक कोने में दुबक गई। चारों ओर हाहाकार मच गया। सुना है कि लाश का पोस्टमॉर्टम होगा। मुझे तो इतना दर्द है कि कह नहीं सकता ····आगम का ज्ञान भला किसे होता है ?··· आज यहाँ हैं, और कल दुनिया से रुखसत !

तुम्हारा,
मकार-देवुश्किन

सितम्बर १९

वारवरा—अलेक्सेयेवना—मेरी प्राणों की प्राण,

तुम्हें तुरन्त ही सूचना देनी है कि रताज़्यायेव ने मेरे लिये कुछ काम ढूँढ़ निकाला है। काम किसी लेखक का है। वह खुद पांडुलिपि लेकर रताज़्यायेव के पास आया। मगर, पांडुलिपि ऐसी है कि हे प्रभु!····और लिखावट ऐसी भगवान की बनाई है कि कुछ न पूछो! उस पर काम जल्दी होना है। दूसरी तरफ़, समझ में कहीं कुछ आता ही नहीं।

'खैर····मज़दूरी चालीस कोपेक फ़ी ताव तय हुई है। हाँ, यह लिखा तुम्हें सिर्फ़ यह वतलाने के लिये कि मुझे इस तरह अलग से भी थोड़ी आमदनी हो जायेगी।

अच्छा, रानी—मेरी, दोस्विदानिया·······अब काम पर बैठ जाना चाहिये····।

तुम्हारा चिरन्तन-मित्र-
मकार-देवुश्किन

सितम्बर २३

मित्रवर मकार-अलेक्सेयेविच,

मैंने पिछले तीन दिन से तुम्हें कोई पत्र नहीं लिखा, और इस बीच खा़मी मुसीवतें और परेशानियाँ रहीं। परसों वाइकोव मुझसे मिलने फिर आया। जिस समय वह आया, मैं अकेली थी। फ़ेदोरा कहीं गई थी। सो, मैंने दरवाज़ा खोला तो मैं वाइकोव को देखकर बुरी तरह डर गई। शायद मेरा चेहरा एक दम उतर गया। वह हमेशा की तरह ज़ोर से हँसता हुआ अन्दर घुसा और कुर्सी खींचकर बैठ गया। अन्त में मैंने भी अपने को सम्हाला और कोने में बैठकर काम करने लगी। पर, उसने मुझे ज़रा पास से देखा तो उसकी मुस्कान उड़नछू हो गई।····

शायद इधर मैं बहुत ही भटक गई हूँ · मेरे गाल बैठ गये हैं, और आँखें धँस गई हैं । शायद मेरा चेहरा चादर की तरह सफ़ेद पड़ गया है। हो सकता है कि पिछले साल मुझे देखने वाले इस साल देखें तो आसानी से पहिचान न पायें ।

हाँ, तो कुछ देर तक बाइकोव मुझे ग़ौर से देखता रहा । फिर खिल गया और कुछ बोला । उसे जवाब मैंने क्या दिया, मुझे याद नहीं ! मगर, वह दुबारा हँसने लगा और कोई एक घन्टे तक तरह-तरह की बातें और हेर-फेर के सवाल करता रहा अन्त में चलने को हुआ तो मेरा हाथ अपने हाथ में लेते हुये बोला —'बारबरा-अलेक्सेयेवना, बात अपने तक रखना, लेकिन तुम्हारी यह रिश्तेदार अन्ना-फ़्योदोरोवना घिनौनी औरत है''''औरत क्या है, जानवर है !''''फिर, और साफ़ शब्दों में बोला – 'उसने तुम्हारे चचेरे-भाई साशा को कहीं का नहीं छोड़ा, और तुम्हें बरबाद करके रख दिया । जहाँ तक मेरा सवाल है, मैंने भी लाचारों का सा ही जीवन बिताया है । इन्सान की यह खास कमज़ोरी है ।' और, वह ठठाकर हँस पड़ा । इसके साथ ही उसे बोलने के मामले में अपनी कमज़ोरी का एहसास हुआ । पर, आत्म-सम्मान की भावना से विवश होकर उसने खास बात तो कह ही दी । जो बाक़ी बचा, वह संक्षेप में समझा दिया । बोला —'मैं तुम्हारा हाथ सदा-सदा को थाम लेना चाहता हूँ । यह मेरा कर्त्तव्य है, और मेरी अपनी प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक है। मेरे पास धन की कोई कमी नहीं । शादी के बाद मैं तुम्हें स्तेपी-मैदान के अपने गाँव ले चलूँगा, और फिर हम खरगोशों का शिकार करेंगे । पीतर्स बुर्ग फिर कभी नहीं आऊँगा । बड़ा ही गन्दा शहर है । यहीं मेरा एक नालायक़ भतीजा भी रहता है । उसे मैं टके-टके को मुहताज कर देना चाहता हूँ, और विवाह कर लेना चाहता हूँ कि मेरी संतान मेरी वारिस बन सके ।''' और, तुम इस तरह ग़रीबी में दिन काट रही हो और इस तरह घुल्ल म रह रही हो । ऐसे में अगर तुम बीमार हो

तो ऐसा ताज्जुब भी क्या ! मैं तो कहता हूँ कि एक महीना भी तुम यहाँ और रह गई तो अपनी मौत गोया तुमने आप बुला ली। सन्त पीतर्सबुर्ग के मकान यों भी मैले-कुचैले हैं! अच्छा, तुम्हें किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं ?'

लेकिन, शादी के इस प्रस्ताव से ही मेरा दिमाग़ ऐसा ख़राब हुआ कि मैं फूट-फूटकर रोई। कारण साफ़ ज़रूर नहीं हुआ। दूसरी ओर उसने मेरे आँसुओं के ग़लत अर्थ लगाये, उन्हें कृतज्ञता की तरलता माना और बोला—'मैं तो तुम्हें हमेशा से ही स्नेही, भावनाभीनी, पढ़ी-लिखी लड़की समझता रहा हूँ। परन्तु, इस पर भी वाजिब पूँछ-ताँछ करने के बाद ही यह क़दम उठाने की हिम्मत कर पाया हूँ।'····

पर, बात यहीं ख़त्म नहीं हुई। उसने तुम्हारे बारे में कुछ सवाल किये; और फिर बोला—'मैंने सुना है कि वे ऊँचे सिद्धान्तों वाले आदमी हैं और तुम पर उनका बड़ा ऋण है। पर, मैं यह ऋण उतार देना चाहूँगा। कुल के एवज़ में पाँच सौ रूबल काफ़ी होंगे न ?··· मैंने कहा—'उन्होंने जो कुछ भी किया है, उससे उऋण होना सम्भव नहीं।' उस पर वह बोला—'यह सब बकवास है। कथा-कहानियों की बातें हैं। अभी तुमने दुनिया नहीं देखी है, और शायद तुम्हें कवितायें पढ़ने का शौक़ है। यह उपन्यास और कवितायें तो जवान लड़कियों की ज़िन्दगी बरबाद करके छोड़ती हैं। वैसे तो आम तौर पर पुस्तकों का ही प्रभाव चरित्र पर बुरा पड़ता है, इसीलिए तो मुझे इनसे सख्त नफ़रत है। वैसे तुम अगर मेरी उम्र की होतीं तो तुम्हें आदमी की पहिचान और अच्छी होती और तुम ज़्यादा गहराई से जान-समझ सकतीं। ख़ैर, मेरा आग्रह है कि तुम मेरे प्रस्ताव को खूब सोच-समझ लो और तभी कोई फ़ैसला करो। जल्दबाज़ी में कोई क़दम उठा लेना, बड़े दुर्भाग्य की बात होगी। जल्दबाज़ी और विचारहीनता ने ही हमेशा जवानों की ज़िन्दगियाँ

चौपट की हैं। जहाँ तक मेरी बात है, मैं तो तुमसे अनुकूल उत्तर की ही आशा करता हूँ। लेकिन, अगर तुम नहीं मानीं तो मुझे विवश होकर मास्को के एक खास सौदागर की बेटी से शादी करनी होगी, क्योंकि मै क़सम खा चुका हूँ, और अपने उस हरामज़ादे भतीजे को अपनी ज़मीन-जायदाद का मालिक किसी तरह बनने नहीं दूँगा।'

और मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे कसीदाकारी के फ्रेम पर अपने शब्दों में मिठाई के लिये—पाँच सौ रूबल छोड़ गया। जाते-जाते बोला—'गाँव में तुम डबल रोटी की तरह फूल जाओगी, और खुली· प्रकृति के हवा-पानी में हर तरह स्वस्थ रहोगी।...फ़िलहाल, मैं चला...इस समय बहुत, ही व्यस्त हूँ, और सारे दिन इधर-उधर दौड़ता रहा हूँ...' इसके साथ ही वह चला गया।

प्रिय मित्र, मैंने इस विषय पर काफ़ी सोचा है, और मन ही मन काफ़ी दुखी हूँ। पर, आखिरकार मैंने फ़ैसला कर किया है, और मैं उससे शादी करने जा रही हूँ मुझे उसका प्रस्ताव स्वीकार कर ही लेना चाहिये। मुझे तो इस समम उसी आदमी की जरूरत है जो मुझे इस अपमानजनक स्थिति से छुटकारा दिलादे, फिर पुरानी प्रतिष्ठा दिला दे, ग़रीबी काटे और इस दरिद्रता और दुख-मुसीबत के काले बादल छाँटे। भविष्य से इससे अधिक की आशा और मैं क्या कर सकती हूँ? भाग्य इससे अधिक मुझे और क्या दे सकता है?... फ़ेदोरा का कहना है कि मुझे चूकना नही चाहिये, और घर-आये सुख को दरवाजे से लौटालना नहीं चाहिये। और सुख अगर यह नहीं है तो फिर और क्या है?

जहाँ तक मेरी बात है, मुझे कोई और रास्ता नज़र नहीं आता, मित्र! इधर मैंने काम इतना किया है कि मेरी सारी तन्दुरुस्ती पानी हो गई है। सवाल सामने है कि मैं गवर्नेस बन जाऊँ या किसी के यहाँ कोई और नौकरी कर लूँ। लेकिन, ऐसा करने पर तो मैं अकेलेपन से घुटकर

मर जाऊँगी, और खुश किसी को भी न रख पाऊँगी। फिर, बीमार मैं यों भी रहती हूँ, यानी किसी न किसी के लिये बोझ हमेशा ही बनी रहती हूँ। ···यों मैं जानती हूँ कि किसी स्वर्ग में रहने मैं नहीं जा रही, लेकिन फिर और करूँ भी क्या? तुम्हीं बतलाओ कि आखिर करूँ भी क्या? कोई दूसरा चारा है?

सच पूछो तो मैं सलाह चाहती नहीं थी, फ़ैसला खुद ही करना चाहती थी, और वह मैंने किया। अब यह मेरा निश्चय बदलने वाला नहीं बाइकोव को भी यह जल्दी यह बतला दूँगी। वह बड़ा ज़ोर डाल रहा है मुझ पर। उसका कहना है कि स्थिति कुछ यों है और परेशानियाँ कुछ ऐसी हैं कि वह शादी टाल नहीं सकता। ईश्वर ही जाने कि इससे मेरा जीवन सुखी भी होगा या नहीं, लेकिन खैर, मैं प्रभु के हाथों सौंपे दे रही हूँ अपने को और अपने जीवन को। कहते हैं कि बाइकोव बड़ा दयावान है। शायद वह मेरा आदर करेगा और शायद मैं भी होते-होते उसे मानने लगूँगी? विवाह से इससे अधिक की आशा भी कोई क्या करेगा?

काम की बातें मैंने तुम्हें सारी बतला दीं, मकार-अलेक्सेयेविच! पूरी आशा है कि तुम कोई बात कहीं से ग़लत नहीं समझोगे। लेकिन, देखो, मुझे मेरे निश्चय से डिगाने की कोशिश न करना। तुम्हें सफलता मिलेगी नहीं। लेकिन, इस फैसले के पीछे की बातों को ज़रा अपने मन की तराज़ू पर तोल कर देखना। इससे पहिले तो मैं खुद काफ़ी चिन्तित थी पर, अब मन कहीं अधिक शान्त है। मैं नहीं जानती कि भविष्य के गर्भ में मेरे लिये क्या है? सभी कुछ अज्ञात है। अब जो होगा, देखा जायेगा। हरि इच्छा बलवान····!

बाइकोव अभी-अभी आ गया है। अब यह पत्र अधूरा ही रहेगा···· वैसे कहने को तो अभी बहुत कुछ है।

वा० दो०

सितम्बर २३

मेरी अपनी वारवरा—अलेक्सेयेवना,

मैं तुम्हारे पत्र का उत्तर तुरन्त ही दे रहा हूँ, और स्वीकार करता हूँ कि इस सबसे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है। कुछ गड़बड़ है कहीं।... अभी कल ही हमने गोर्शकोव को दफ़नाया है।

हाँ, वाइकोव ने निश्चय ही बड़ी महानता का परिचय दिया है। लेकिन, तुम...तुम क्या सचमुच ही राज़ी हो गई हो, प्राणों की प्राण? सभी कुछ ईश्वर के हाथ है...वही सभी कुछ करता है। यह सत्य है और इस फ़ैसले के पीछे भी अवश्य ही ईश्वर की प्रेरणा होगी। विधना और भाग्य के विधान को भला कौन जान सकता है? इसके खिलाफ़ उँगली भी कौन उठा सकता है?

तो, फ़ेदोरा भी सहमत है इससे! यानी; अब तुम सुख और सन्तोष से भरा जीवन बिताओगी, मेरी नन्हीं सोनचिरैया, मेरी देवदूती। लेकिन कितनी जल्दी और सचमुच कितनी जल्दी हो गया यह सब कुछ, वारेन्का?...और हाँ, वाइकोव को कुछ अपनी परेशानियाँ हैं... किसे नहीं होतीं? हर एक के अपने काम-धन्धे होते हैं... मैंने उसे तुम्हारे घर से निकलते देखा था। आदमी अपना प्रभाव डालता है, और खासा प्रभाव डालता है। लेकिन, फिर भी कोई तार कहीं ढीला है।...बात यह महत्त्व की नहीं कि उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है, बात महत्त्व की यह है कि मेरा दिमाग़ इस समय बिल्कुल खराब है।...अब आखिर हम कैसे एक-दूसरे को पत्र लिखेंगे...और, मैं अकेले कैसे जिऊँगा?

वैसे तुमने जैसा कहा है; मैं तुम्हारे सारे तर्क अपने मन की तुला पर तोल रहा हूँ। मैं यहाँ बैठे-बैठे केवल यही कर रहा हूँ...।

यह समाचार मुझे अभी-अभी मिला...मैं तो उस पांडुलिपि का बीसवाँ पृष्ठ नक़ल कर रहा था...तो रानी, तुम जा रही हो...यानी,

अब तुम्हें फ्रॉक, जूते और दुनिया की तमाम चीज़ें खरीदनी होंगी····सुनो, मेरे जान-पहिचानी की एक दूकान गोरोखोवाया में है। उसकी चर्चा मैं तुमसे पहिले भी कर चुका हूँ, याद है? लेकिन, इतनी ज़ल्दी तुम कैसे जा सकती हो?····क्या बात है, अभी नहीं जा सकतीं तुम! असम्भव है···· बिल्कुल असम्भव है! तमाम चीज़ें खरीदनी होंगी··· फिर, सवारी भी तो चाहिये। उस पर, मौसम इतना खराब है··· ज़रा देखो कि पानी कैसा बरस रहा है; आसमान जैसे बालटियों पर बालटियों उड़ेल रहा है····मूसलाधार वर्षा हो रही है। इसके अलावा तुम्हें सर्दी लग जायेगी। तुम्हारी सारी उमंगें और भावनायें ठंडी पड़ जायेंगी। और, तुम्हें इस तरह किसी अजनबी के साथ जाने में डर नहीं लगेगा? और, तुम चली जाओगी तो मेरा क्या बाक़ी बचेगा?··· फ़ेदोरा तुम्हें बहुत क़िस्मतवर बतलाती है···· लेकिन, वह गाल बजाने वाली पतुरिया भर है, और बस! वह सिर्फ़ मेरी बरबादी के सामान जुटाती रहती है।····तुम गिरजे की शाम की प्रार्थना में तो हिस्सा लोगी न? लोगी तो मैं तुम्हें एक नज़र देखने को आऊँगा। वैसे रानी, यह तो सच ही है कि तुम पढ़ी-लिखी, नेक और भावनाशील लड़की हो।··· लेकिन, तुम्हारा वह बाइकोव उस सौदागर की बेटी से ब्याह क्यों नहीं कर लेता? क्या ख्याल है, प्रिये! क्या यह अच्छा न होगा कि वह उस सौदागर की बेटी से ही ब्याह कर ले?····मैं रात होने पर आधे घंटे के लिये तुम्हारे यहाँ आऊँगा। आजकल तो अँधेरा ज़रा जल्दी ही हो जाता है। बस, तो अँधेरा हुआ कि मैं पहुँचा। यानी, दिन डूबा कि मैं तुम्हारे यहाँ! अभी तो तुम बाइकोव की प्रतीक्षा में हो। उसके जाने के बाद ही मैं आऊँगा!····राह देखना, मेरी रानी; मैं आऊँगा अवश्य!

मकार-देवुश्किन

कि कोई ग़लती हो जाये। भूलना नहीं··· ज़रदोज़ी चाहिये, रेशमी टाँके नहीं।

वा० दो०

सितम्बर २७

प्रिय वारवरा-अलेक्सेयेवना,

मैंने बहुत ही ध्यान से तुम्हारे हर आदेश का पालन किया है। मदाम-शीफ़ो ज़रदोजी का वह काम अपने हाथ से करेगी। वह फबेगा भी ज़्यादा···या ऐसा ही कुछ और कहाउसने····मैं भूल गया; बस, याद इतना ही है कि उसने झालर को लेकर पूरी दास्तान सुना डाली····चुड़ैल ऐसी बातून है कि आदमी का दिमाग़ ख़राब कर दे! और, भला क्या कहा उसने? वह खुद ही बतला देगी तुम्हें!··· मैं तो दौड़ते-दौड़ते अधमरा हो गया हूँ·· आज तो दफ़्तर भी नहीं गया। लेकिन, मेरी चिन्ता न करना, रानी, मैं तुम्हारे सुख के लिए शहर की दूकान-दूकान में दौड़ने को तैयार हूँ।····तुम कहती हो कि तुम्हें आँख उठाकर भविष्य की ओर देखने में डर लगता है····लेकिन, आज सात बजे तो तुम्हें सब कुछ मालूम हो ही जायेगा।···मदाम-शीफ़ा ने आने का वायदा किया है। पर, तुम अपनी तबीयत इस तरह गिराओ नहीं, मुन्नी।····शायद जो कुछ होगा, अच्छे के लिये ही होगा। यह है बात! भाड़ में जाये, वह हत्यारी झालर····मेरे दिमाग़ से निकलती ही नहीं····उफ़····झालर झालर····झालर···!····मैं तुमसे मिलने आऊँगा, रानी, ज़रूर आऊँगा। कहने को तो मैं दो बार तुम्हारे दरवाज़े के सामने से निकल चुका हूँ, लेकिन बाइकोव····मेरा मतलब गैस्पदीन बाइकोव, हमेशा इतने ग़ुस्से में रहते हैं कि मैं सचमुच····ख़ैर····और, हो भी क्या सकता है?····

मकार देवुश्किन

सितम्बर २८

प्यारे मकार-अलेक्सेयेविच,

सुनो, कृपा कर फ़ौरन ही जौहरी के यहाँ दौड़ जाओ और उससे कह दो कि मोती और पन्ने के कनफूल बनाने की ज़रूरत नहीं। गेस्पदीन बाइकोव का कहना है कि क़ीमत इतनी आसमानी है कि हद है। वे काफ़ी नाराज़ हैं। कहते हैं कि इन तमाम चीज़ों पर काफ़ी खर्च बैठ चुका है मैं तो जैसे लुटा जा रहा हूँ।····कल भी उन्होंने कहा कि इतने सबका अन्दाज़ पहिले हो जाता तो मैं हामी ही न भरता। बोले— 'शादी के बाद ही हम यह शहर छोड़ देंगे। कोई एहसान-मेहमान नहीं बुलायेंगे। तुम्हें नाच-नाचकर लोगों के स्वागत-सत्कार की आशा जल्दी नहीं करनी चाहिये। फ़िलहाल, अभी तो उत्सव-समारोह की कोई गुँजाइश नहीं!····ऐसी बातें करते हैं वे! वैसे ईश्वर साक्षी है कि इन सारी चीज़ों की मुझे कोई जरूरत नहीं···इनके ऑर्डर तो उन्होंने खुद ही दिये हैं।····मगर; खैर, मैंने उन्हें कोई जवाब नहीं दिया। वे बहुत ही जल्दी चिढ़ जाते है।····आखिर क्या है मेरे भाग्य में?

वा० दो०

सितम्बर २६

वारवरा-अलेक्सेयेवना, मेरी मुँहबोली बच्ची—

मैं··· यानी जौहरी से कह आया। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं पहिले ही कहना चाहता था कि मेरी तबीयत खराब है और मैंने चारपाई पकड़ ली है।····ज़रा क़िस्मत की बात देखो कि एक तरफ़ इतना काम, और दूसरी तरफ़, इसी वक़्त बीमारी।··

फिर, यह कि मेरी मुसीबत का अंत यहीं नहीं। बड़े साहब इधर

वहुत विगड़े और येमेल्यान-इवानोविच पर जी भर वरसे....वेचारा-वेचारा !....यह वतलाना था तुम्हें ।....मैं तो और कुछ भी लिखना चाहता हूँ, लेकिन तुम्हें अनुचित कष्ट देना ठीक नहीं ।....

देखो न, मैं सीधा-सादा आदमी हूँ....कोई वहुत चालाक भी नहीं हूँ...जो जी में आता है, गोंच देता हूँ। इसीलिए वहुत-सी वातें क़ायदे से लिख नहीं पाता ।....लेकिन, खैर, इससे कोई खास फ़र्क़ नहीं पड़ता ।....

तुम्हारा
मकार-देवुश्किन

सितम्बर २६

वारवरा-अलेक्सेवना-मेरी प्यारी-प्यारी,
नन्हीं-नन्हीं विटिया—

आज फ़ेदोरा से मुलाक़ात हुई थी, रानी। उसने वतलाया कि कल तुम्हारी शादी हो जायेगी और परसों तुम विदा हो जाओगी....गैस्पदीन वाइकोव ने तो गाड़ी तक किराये पर ले ली है।... वड़े साहव के वारे में वह खवर तो मैं तुम्हें दे ही चुका हूँ और, क्या वतलाऊँ ? और, हाँ, गोरोखोवाया की उस दूकान के विल मैंने देखे हैं। सव कुछ ठीक है... मगर, रक़म वहुत ज्यादा है । लेकिन, गैस्पदीन वाइकोव तुमसे नाराज़ क्यों होते हैं ?'' हो सकता है कि इस सम्वन्ध से तुम सदा-सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट रह सको, मेरी प्राण ! मुझे तुम्हारी प्रसन्नता के समाचार से वड़ा ही सुख मिलेगा। यदि मेरी पीठ का दर्द साथ दे गया, तो मैं तुम्हारे विवाह के समारोह में हिस्सा जरूर लूँगा।.... फिर पत्रों का सवाल आ गया....पत्र कौन ले जायेगा ? फ़ेदोरा... तुमने उसके साथ वड़ा स्नेह वरता है ! तुम वहुत ही रहमदिल हो, इसके लिये

ईश्वर तुम्हें आशीर्वाद देगा। सद्कार्य पुरस्कृत होते ही हैं, और सद्गुण पर स्वर्गीय न्याय का वरदान बरसता ही है। मेरी रानी, मेरी अलवेली रानी, मैं तो तुम्हें हर घन्टे और हर मिनट पत्र लिखना चाहता हूँ… चाहता हूँ कि लिखता रहूँ, लिखता रहूँ, और बस लिखता ही रहूँ।… तुम्हारी पुस्तक 'इवान वेल्किन की कहानियाँ' मेरे पास है। उसे मेरे पास ही रहने दो, प्रिये! कहानियाँ के पढ़ने या न-पढ़ने का उतना सवाल नहीं है…लेकिन, तुम तो जानती ही हो कि जाड़ा आ रहा है और अब शाम उदास और लम्बी होगी। उस समय पढ़ूँगा उन्हें।…मैं अपना फ़्लैट छोड़कर फ़ेदोरा वाले तुम्हारे, पुराने फ़्लैट में चला जाऊँगा। उस ईमानदार औरत को मैं सदा-सदा अपने पास ही रक्खूँगा… वह तो बड़ी मेहनती भी है! कल मैं तुम्हारे खाली कमरे में गया और इधर-उधर टहलता और चीज़े देखता रहा। कोने में तुम्हारी क़सीदाकारी का फ्रेम देखा। उसमें कुछ अधूरा काम भी था।… काम मैं बड़ी देर तक ग़ौर से देखता रहा। साथ ही कुछ और चीज़ों पर भी निगाह पड़ी। मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि तुमने मेरे एक पत्र को मोड़कर उससे कील का काम लिया है, और उस पर रेशम का तागा लपेटा है।…मेज़ पर रक्खी पर्ची भी मिली। उस पर लिखा दीखा— 'मेरे प्यारे मकार-अलेक्सेयेविच, मैं जल्दी में हूँ और…—पर, लगता है कि उसी समय किसी ने बाधा डाल दी और वाक्य पूरा नहीं हो पाया।…

कोने में, पर्दे के पीछे, तुम्हारा पलंग भी देखा।… मेरी नन्हीं-मुन्नी सोनचिरैया, मेरी बालहसिनि… खैर… दोस्विदानिया… दोस्विदानिया कृपा कर उत्तर जल्दी ही देना।

मकार-देवुश्किन

सितम्बर ३०

मकार-अलेक्सेयेविच,

मेर सबसे सच्चे, चिरन्तन-मित्र !—

जो होना था सो हो चुका । पाँसे पड चुके । मैं नहीं जानती कि भविष्य में मेरा क्या होगा। फ़िलहाल, अपने को उसी परम पिता पर छोड़ दिया है ····कल हम दोनों यहाँ से चले जायेंगे····यह पंक्तियाँ ही मेरी विदाई समझो, मेरे निकटतम मित्र, मेरे संरक्षक मेरी आत्मा ! ·· मुझे लेकर दुखी न होना । प्रसन्न रहना और मुझे भूलना नहीं । ईश्वर तुम पर अपनी कृपा-दृष्टि रखे । मैं तुम्हें सदा याद रक्खूंगी, और हर दिन तुम्हारे लिये प्रभु से प्रार्थना करूँगी । यानी, इस प्रकार यहाँ के जीवन का यह अध्याय समाप्त हो जायेगा । भविष्य में विगत जीवन जिस रूप में मुझे याद आयेगा, उससे मुझे कष्ट ही होगा··· लेकिन, इसमें भी तुम्हारी स्मृति मैं सदा अपने कलेजे से लगाकर रक्खूंगी । तुम्हीं मेरे एक मात्र मित्र हो। एक तुम्हीं हो, जिसने मुझे स्नेह और प्यार दिया है। मैंने तुम्हारे इस प्यार का अनुभव किया और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पाया। मैं जानती हूँ कि मेरी महज़ एक मुस्कान या मेरी क़लम की मात्र एक पंक्ति तुम्हारे सुख और संतोष के लिए काफ़ी रही है। लेकिन, अब तुम्हें मुझे भुला देना होगा । सचमुच कितना अकेला-अकेला लगेगा तुम्हें ! कौन धीरज बंधायेगा तुम्हें, मेरे एक मात्र करुणामय मित्र ? यह पुस्तक, क़सीदाकारी का वह फ्रेम और वह अधूरा पत्र, मैं यह सभी कुछ तुम्हारे पास छोड़ जाऊँगी ।····ज़रा उस पत्र की शुरू की पंक्तियों को पढ़ो और आगे की पंक्तियों की कल्पना करो । ईश्वर ही जानता है कि मैं उस समय लिख पाती, तो क्या लिखती !····देखो, अपनी इस ग़रीब वारेन्का को भुलाना कभी नहीं । उसने तुम्हें कितना स्नेह और कितना प्यार किया है !····

तुम्हारे सभी पत्र फ़ोदोरा की ड्रेसिंग-टेबिल के ऊपर वाले खाने में हैं।....तुमने लिखा है कि तुम्हारी तबीयत खराब है !....मगर, गैस्पदीन बाइकोव मुझे आज यहाँ से कही जाने नहीं देंगे। पत्र तो तुम्हें लिखूँगी ही... लेकिन, कौन जानता है कि क्या होगा, इसलिये अलविदा, मेरे प्रिय, मेरे वैभव ! क्या ही अच्छा होता कि तुम्हें एक बार हृदय से लगा सकती ? अच्छा, दोस्विदानिया....मित्र दोस्विदानिया। सदा स्वस्थ और प्रसन्न रहो। मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगी तुम्हारे सुख, सन्तोष के लिए.... बतला नहीं सकती कि मेरा दिल अन्दर से कितना भारी है ?... फ़िलहाल, गैस्पदीन बाइकोव आवाज़ दे रहे हैं।

तुम्हारी स्नेहमयी,
वा० दो०

पुनश्च, मेरा हृदय बहुत ही भर आया है, आँसुओं से नहा उठा है। यह आँसू घोट रहे हैं मुझे। दोस्विदानियाँ... हे प्रभु !....याद रखना अपनी मजबूर वारेन्का को !

वारेन्का—मेरी सोनचिरैया, मेरी रानी,

तुम्हें मुझसे दूर ले जाया जा रहा है....और, तुम जा रही हो ! इससे तो अच्छा यह होता कि लोग मेरा कलेजा ही निकाल लेते। तुम आखिर राज़ी कैसे हुईं ? तुम बिलख-बिलख कर रो रही हो, मगर फिर भी जा रही हो।....तुम्हारा आँसुओं से तर पत्र मुझे अभी-अभी मिला है। यानी, तुम जाना नहीं चाहतीं, मगर तुम्हें मजबूर... यानी, तुम मेरे कारण दुखी हो....यानी, तुम मुझे प्यार करती हो !.. अब तुम्हारी चिन्ता भला कौन करेगा ? तुम्हारा नन्हाँ-सा दिल कितना उदास और कितना मुर्दा-मुर्दा-सा रहेगा। उसे दर्द खा जायेगा और उदासी तोड़ देगी। ऐसे में अकेले में तुम्हें कुछ हो-होवा गया तो लोग तुम्हें मुर्दा धरती में दफ़ना देंगे। क़ब्र पर आँसू बहाने वाला कोई न होगा। गैस्पदीन बाइकोव तो खरगोशों का

शिकार ही करते रहेंगे !....उफ़....मेरी रानी ...उफ़... ऐसा क़दम आखिर तुमने उठाया कैसे ? यह आखिर क्या किया तुमने ! तुमने इतना घातक-व्यवहार अपने साथ किया कैसे ? दुनिया के यह लोग तो तुम्हें क़ब्रगाह पहुँचाकर ही दम लेंगे, तुम्हें दुनिया से रुख़सत करने के बाद ही चैन की साँस लेंगे।....और, मैं... आखिर मैं कहाँ था अब तक ? मैं क्या कर रहा था ? मैंने देखा कि बच्ची उड़ी-उड़ी रहती है....बच्ची बीमार है....मुझे तो....लेकिन, नहीं....मैंने तो बुद्धुओं का-सा बरताव किया....न कुछ सोचा-समझा और न कुछ देखा-सुना, जैसे कि इस सबसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।...हे भगवान् ! मैं झालर के पीछे दौड़ा-दौड़ा फिरता रहा।....नहीं, वारेन्का, नहीं... मैं बिस्तर से उठ-खड़ा होऊँगा....मैं कल तक ठीक हो जाऊँगा, और यहाँ से चल दूँगा....तुम्हारी गाड़ी के पहियों के नीचे लेट जाऊँगा !...मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा ! यह तो सरासर लूट है ! इसका क्या अधिकार है उन्हें ! मैं तुम्हारे साथ चलूँगा और नहीं ले चलोगी तो तुम्हारी गाड़ी के पीछे-पीछे दौड़ूँगा... और, तब तक दौड़ूँगा जब तक कि बेहोश होकर गिर नहीं पड़ूँगा... तुम जा रही हो मेरी हथेली की तरह नंगे स्तेपी के मैदान में !... अब सवाल है कि वहाँ तुम्हें कौन-कौन लोग देखने को मिलेंगे ? वहाँ तुम्हें देखने को मिलेंगी मशक़्क़त से चूर किसान औरतें और नशे में धुत्त, बेहूदे किसान ! वहाँ तो पेड़ तक बरसात और ठंडक से साफ हो जाते हैं। यानी, ऐसी जगह जा रही हो तुम। गैस्पदीन बाइकोव तो अपने खरगोशों में उलझे रहेंगे, मगर तुम ?....तुम ज़मींदार की पत्नी बनना चाहती हो, मेरी रानी ?...अगर, हाँ, तो ज़रा अपने को एक नज़र देखो, मेरी फ़रिश्ता ! लगती हो कहीं से ज़मींदार की पत्नी ?....इसका तो सवाल ही कहीं से नहीं उठता, वारेन्का ! ...और, ज़रा बतलाओ कि अब मैं पत्र किसे लिखूँगा ?....ज़रा रुको और क्षण भर सोचो....अब मैं किसे लिखूँगा पत्र ? अब मैं किसे बुलाऊँगा 'वारेन्का' कहकर ? इस मीठे नाम से अब किसको सम्बोधित

करूँगा मैं ? तुम चली जाओगी, तो मैं तुम्हें कहाँ पाऊँगा, मेरी नन्हीं देवदूती ? मैं तो मर ही जाऊँगा, वारेन्का ! ऐसी गहरी चोट के बाद मैं जी नहीं सकता। मैंने तुम्हें प्यार किया है, जैसे कोई प्रभु के प्रकाश को प्यार करता है, जैसे कोई अपनी सगी बेटी को प्यार करता है ! मैंने तुम्हारे हर कण और तुम्हारे आसपास के हर कण को प्यार किया है।.... प्रिये, मैं तो केवल तुम्हारे लिये जीता रहा हूँ।... मैंने काम किया, मैंने नक़लें तैयार कीं; मैंने घूम-फिर कर जो कुछ देखा, उसे प्यारे-प्यारे पत्रों का रूप दे दिया....सिर्फ इसलिये कि तुम पास रहीं। शायद तुमने उसका अनुभव कभी नहीं किया ...लेकिन है सच्चाई यही ! ...अब बतलाओ ... अब ज़रा बतलाओ कि इतना सब होने पर भी तुम यहाँ से कैसे जा रही हो ?...तुम जा नहीं सकतीं। तुम बिल्कुल ही कहीं जा नहीं सकतीं।.... सवाल ही बेतुका है ! ...पानी बरस रहा है....ठंडक लग जायेगी—तुम इतनी कमज़ोर हो, इतनी दुबली-पतली हो ! ... फिर पानी गाड़ी की छत से चुयेगा... सवारी बैठ जायेगी... शहर के बाहर पहुँचते-पहुँचते सवारी ही बैठ जायेगी।....सचमुच ही कुछ कहा नहीं जा सकता—पीतर्स-बुर्ग के ग़ाड़ी बनानेवाले भयानक हैं ! ऐसी जुल-जुल गाड़ियाँ बनाते हैं कि बस ! वे तो केवल नये से नये फ़ैशन के पीछे दीवाने रहते हैं, और गाड़ी के लिये एक से एक झालरें बनवाते रहते हैं। लेकिन, कोई ठोस, मजबूत चीज़ बनायें, इसकी फ़िक्र उन्हें नहीं.... क़सम खाकर कह सकता हूँ कि यह बात ही जैसे उनके दिमाग़ में नहीं आती।....मैं गैस्पदीन बाइ-कोव के सामने घुटने ठेक कर बैठ जाऊँगा....मैं उन्हें समझाने की कोशिश करूँगा....सभी को सच्चाई समझाने की कोशिश करूँगा, रानी ! और तुम, मेरी मधुरे, तुम भी उनसे बहस करना। कहना कि तुम यहीं रहोगी... यहाँ से कहीं जाओगी नहीं !... उफ़, उन्होंने मास्को के उस सौदागर की बेटी से शादी क्यों नहीं की आखिर ? उनके लिये तो वह शादी इससे कहीं अच्छी रहती।... उस सौदागर की वह बेटी कहीं अधिक

लायक है····सचमुच कहीं ज़्यादा लायक़ है। मैं यह बात पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ ···हाँ, अगर गैस्पदीन बाइकोव उससे शादी कर लेते, तो तुम यहाँ इसी तरह मेरे साथ रही आतीं।····और, तुम्हें गैस्पदीन बाइकोव की ऐसी ज़रूरत भी क्या है? किस बात से उन्होंने तुम्हें इस तरह जीत लिया है? इस झालर-वालर से जीत लिया हो उन्होंने, ऐसा मुझे नहीं लगता। यह झालर-वालर चीज़ भी ऐसी क्या हुई? इसका तो ज़िक्र तक आखिर क्यों किया जाये?····यह तो बकवास है, रानी, बकवास! यहाँ मामला ज़िन्दगी और मौत का है, झालर-वालर का नहीं! झालर-वालर तो महज़ कपड़ा होता है····चिथड़ा····और कुछ नहीं!··· ज़रा रुक जाओ, तनख्वाह मिल जाये, मैं तुम्हें जी भर झालरें खरीद दूँगा रानी! और उस दूकान से खरीद दूँगा····दूकान की याद है तुम्हें? बस, ज़रा रुक जाओ····तनख्वाह भर मिल जाये, मेरी मधुरतम देवदूती····!

लेकिन, नहीं, हे भगवान!····वारेन्का, तुम गैस्पदीन बाइकोव के साथ जाओगी ही? और, जाओगी तो हमेशा-हमेशा के लिये चली जाओगी? उफ़, वारेन्का, उफ़····! नहीं, नहीं, तुम पत्र लिखो···· कम से कम एक पत्र तो और लिखो! और, फिर स्तेपी में पहुँचने के बाद दुबारा लिखना। अगर, तुमने नहीं लिखा तो इस पत्र को मेरा अन्तिम पत्र समझना! मगर, यह असम्भव है। यह पत्र अन्तिम पत्र आखिर कैसे हो सकता है? एकबएक सहसा ही यह तार टूट कैसे सकता है? मैं तो तुम्हें चिट्ठियाँ लिखता ही रहूँगा तुम भी लिखती रहना··· अब तो मेरी शैली ने एक साँचे में ढलना शुरू किया है ·· लेकिन, क्या शैली····कैसी शैली?····मैं नहीं जानता कि मैं क्या कह रहा हूँ, और किस चीज़ के बारे में लिख रहा हूँ····मगर, उससे तब तक कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, जब तक मेरी क़लम चलती जाती है, चलती जाती है····मेरी नन्हीं सोनचिरैया, मेरी एकमात्र प्राणों की प्राण! ···